पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षाचर्या विधीयते॥
वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेव च।

—पराशरमाधव २ अ० आ० का० पृ० ४८५

(ऋगथर्वसूक्तसंग्रहः। संस्कृतभूषणशुचिव्रतलक्षणपालेन शास्त्रिणा संगृह्य सम्पादितः। रईसेआज़मश्रीभाईमनोहरलालमहोदयेन प्रकाशितः। विक्रमसंवत् १९८५ सप्तमं संस्करणम् २०००) पृ० ५०।

(ग) **ततः शैलवरः सोपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम्।**
कार्यामास सोत्साहं वेदमन्त्रैः शिवस्य च॥ १॥ —शिव० रुद्र० पार्व० अ० ४७

(घ) **प्रावृतां यज्ञोपवीतनीमभ्युदानयञ्जपेत्। सोमोऽदद् गन्धर्वायेति॥**

—गोभिल० २।१।१८

(ङ) [1]**यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी।**
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना॥ ३०॥ —वाल्मी० युद्ध० स० ८१

(च) **श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्॥ २॥**

—ब्रह्मवै० प्रकृति० अ० ८१

भाषार्थ—(क) इसलिए हारीत ने कहा है—स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं—ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू। उनमें से ब्रह्मवादिनियों के लिए यज्ञोपवीत, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने घरों में भिक्षा माँगना तथा सद्योवधू के लिए विवाह के उपस्थित होने पर किसी प्रकार से यज्ञोपवीत करके विवाह कर देना चाहिए।

(ख) तथा यम ने भी कहा है—पहले कल्प में स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत का विधान था। वेदों का पढ़ना तथा गायत्री का बोलना भी। पिता वा भाई वा चाचे का लड़का उसे पढ़ावे, और कोई न पढ़ावे। अपने ही घरों में कन्या का भिक्षा माँगना ठीक है और चर्मधारण, जटाधारण और वल्कल धारण नहीं करने चाहिएँ। [ये दोनों प्रमाण ऋगथर्वसूक्तसंग्रह जोकि लाहौर के भाई मनोहरलालजी रईसेआज़म ने संवत् १९८५ में सातवीं बार २००० छपवाकर मुफ़्त बाँटा है, उसके पृ० ५० से लिये गये हैं।]

(ग) उसके पश्चात् हिमाचल ने प्रेमपूर्वक उत्साह से मन्त्रों के साथ पार्वती तथा शिव का यज्ञोपवीत करवाया।

(घ) तब कन्या को कपड़े से ढककर जनेऊ पहनाकर पति अपने सामने निकट लाकर 'सोमोऽददत्' मन्त्र पढ़े।

(ङ) मेघनाद ने छल से बनाई बेचारी सीता को यज्ञोपवीत-मार्ग से काट डाला। वह सुन्दरी पृथिवी पर गिरी पड़ी।

(च) सफ़ेद चमेली के रंग के समान शोभावाली रत्नों के भूषणों से भूषित साफ़ कपड़े पहिने हुए नाग के समान यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

(३०१) प्रश्न—जब स्त्रियों का उपनयन संस्कार ही नहीं कहा तो फिर वेद-अध्ययन का

---

१. **यज्ञोपवीतमाधूय भिन्ना तेन तपस्विनी।** —वारा० युद्ध० ८।३१, मद्रास-संस्करण
मेघनाद ने पहले सीता का यज्ञोपवीत तोड़ डाला और फिर उसे मार दिया। यह सीता के यज्ञोपवीत पहनने का प्रबल प्रमाण है। —सम्पादक

अपने-आप निषेध हो गया। —पृ० ३०४, पं० २०

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि स्त्री को यज्ञोपवीत लेने का ही नहीं, देने का भी अधिकार है। जब उपनयन का अधिकार सिद्ध हो गया तो वेदाधिकार तो स्वयं ही सिद्ध है। स्त्रियों के पढ़ने का तो कहना ही क्या है, ऋषि बनने तक का अधिकार है। परिणामस्वरूप कितनी स्त्रियाँ ऋषिका हो चुकी हैं, जिनके नाम वेद के मन्त्रों पर ऋषि के रूप में अंकित हैं।

संख्या	नाम ऋषिका	कौन-से वेदमन्त्र की	प्रतीक
१.	सार्पराज्ञी कद्रू:	यजु:० ३।६	आयङ्गौ:
२.	लोपामुद्रा	यजु:० १७।११	नमस्ते हरसे
३.	सरस्वती	यजु:० २८।२४	होता यक्षत्
४.	गायत्री	साम० पू० १।२।४।१	अग्न ओजिष्ठ
५.	वाजिनां स्तुति	साम० पू० ५।१।५।९	आविर्मर्या
६.	शस्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी	ऋ० ८।१।३४	अन्वस्य
७.	आपालात्रेयी	ऋ० ८।९१।१	कन्या वारवायती
८.	सिकता निवावरी	ऋ० ९।८६।११	अभिक्रन्दन्
९.	यमी वैवस्वती	ऋ० १०।१०।१	ओ चित्
१०.	अदितिर्वा दाक्षायणी	ऋ० १०।७२।१	देवानां नु
११.	वागाम्भृणी	ऋ० १०।१२५।१	अहं रुद्रेभि:
१२.	रात्रिर्वा भारद्वाजी	ऋ० १०।१२७।१	रात्री व्यख्यद्
१३.	इन्द्राणी	ऋ० १०।१४५।१	इमां खनामि
१४.	श्रद्धा-कामायनी	ऋ० १०।१५१।१	श्रद्धयाग्नि:

इत्यादि अनेक स्त्रियाँ मन्त्रों की ऋषिका वेदों में लिखी पड़ी हैं। मन्त्रों के अर्थों को साक्षात् करके प्रचार करनेवाले को ऋषि कहते हैं। स्त्रियों को वेदमन्त्र के अर्थ को साक्षात् करके उसके प्रचार का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्रियों को उपनयन तथा वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है?

(३०२) प्रश्न—क्या मज़ा है, धोखेबाज़ हों तो ऐसे हों।

उत्तर—जिसको पित्त का रोग होता है, उसको दूध भी पीला ही दिखाई देता है। वरना बताया तो होता, धोखा क्या किया है? मन्त्र में अर्थ स्पष्ट रूप से किये गये हैं। जैसे आपने अपनी ही पुस्तक के पृ० ३०५, पं० ४ में दे रखे हैं—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। —अथर्व० ११।५।१८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य्य-सेवन से पूर्णविद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे **(कन्या)** कुमारी **(ब्रह्मचर्येण)** ब्रह्मचर्य-सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् **(युवानम्)** पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को **(विन्दते)** प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

—सत्यार्थ० समु० ३

कहिएगा महाराज! इन अर्थों में आपको क्या धोखा नज़र आता है?

(३०३) प्रश्न—'**ब्रह्मचर्येण युवानम्**' यह '**पतिम्**' का विशेषण है, किन्तु स्वामी 'ब्रह्मचर्येण' इस पद को कन्या में लगाते हैं, यह धोखा है। —पृ० ३०५, पं० १४

उत्तर—हमारा अनुमान सत्य ही निकला। आपकी अपनी नीयत में ख़लल है, परन्तु धोखेबाज़ औरों को बता रहे हैं। यहाँ **'युवानम्'** दोनों के साथ लग सकता है और स्वामीजी ने लगाया भी दोनों के साथ है—'जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से' ऐसा अर्थों में लिखा हुआ है, किन्तु आपने **'ब्रह्मचर्येण'** को **'युवानम्'** के साथ जोड़कर, फिर **'पतिम्'** का विशेषण बताकर धोखा देने की कोशिश की है। स्वामीजी का **'ब्रह्मचर्येण'** हेतु को लड़कों तथा कन्या दोनों में लगाना ठीक तथा आपका उसे विशेषण बताना सर्वथा मिथ्या है।

(३०४) प्रश्न—यहाँ पर **'युवानम्'** में **'ब्रह्मचर्येण'** हेतु है, अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुए पति को कन्या प्राप्त करती है। —पृ० ३०५, पं० १८

उत्तर—**'ब्रह्मचर्येण'** केवल **'युवानम्'** में हेतु नहीं है, अपितु **'कन्या'** में भी हेतु है, अर्थात् ब्रह्मचर्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान प्रति को प्राप्त करती है।

(३०५) प्रश्न—**'पतिम्'** पुल्लिङ्ग है। उसका विशेषण **'ब्रह्मचर्येण युवानम्'** यह भी पुल्लिङ्ग है। फिर कोई लिखा-पढ़ा मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि 'ब्रह्मचर्येण' इस हेतु को कन्या में लगाओ? क्या हमको यह मानना पड़ेगा कि स्वामीजी को हेतु का ज्ञान नहीं या हम मान लें कि स्वामीजी को अभी तक लिंग का ज्ञान न हुआ? —पृ० ३०५, पं० १९

उत्तर—हमें इस बात के मानने में कोई संकोच नहीं कि स्वामीजी का लिंगविषयक ज्ञान व्याकरण तक ही सीमित था और आपने इस लिंग के विषय को बचपन से ही बड़े परिश्रम से अध्ययन करके अनुभव किया है, तथापि जब आप **'ब्रह्मचर्येण'** को हेतु मान रहे हैं और हेतु में तृतीया विभक्ति विद्यमान है तो भला फिर कोई पढ़ा-लिखा आदमी यह कैसे मान सकता है कि **'द्वितीयान्त पतिम्'** का विशेषण **'तृतीयान्त ब्रह्मचर्येण'** भी बन जावेगा? अत: होश-हवास से बात कीजिए। 'युवानं' तो 'पतिं' का विशेषण है और ब्रह्मचर्येण 'युवानं तथा कन्या' दोनों में हेतु है, क्योंकि कन्या संज्ञा होती ही उसकी है जो ब्रह्मचारिणी, अर्थात् अक्षतयोनि हो, इसमें निम्न प्रमाण है—

अकन्येति तु यः कन्यां प्रब्रूयाद् द्वेषेण मानवः॥ —मनु० ८।२२५
नेयं कन्या, क्षतयोनिरियमिति यो मनुष्यो द्वेषेण ब्रूयात्। —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—'यह कन्या नहीं है, अपितु क्षतयोनि है, ऐसा जो मनुष्य कहे'—यहाँ अकन्या का नाम क्षतयोनि तथा कन्या का नाम अक्षतयोनि है और अक्षतयोनि का वर्णन करने के लिए ब्रह्मचर्य शब्द से बढ़कर दूसरा कोई सुन्दर शब्द नहीं मिल सकता। यहाँ कन्या को ब्रह्मचारिणी कहना इसलिए भी ज़रूरी था कि विवाह के मन्त्र कन्या अर्थात्, अक्षतयोनि ब्रह्मचारिणी में ही प्रतिष्ठित हैं, जैसाकि—

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः॥ —मनु० ८।२२६

अर्थ—विवाह के मन्त्र कन्याओं में ही प्रतिष्ठित हैं अकन्याओं में नहीं, क्योंकि मनुष्यों में अकन्या धर्म को लुप्त करनेवाली है॥२२६॥

कन्या के विषय में पूछने की आवश्यकता ही न रहे, इसलिए बलपूर्वक कह दिया कि जो ब्रह्मचर्य से युक्त कन्या हो, वह ब्रह्मचर्य से जवान पुरुष से ही शादी करे। सारांश यह कि ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षतवीर्य कुमार अब्रह्मचारिणी, अर्थात् क्षतयोनि कन्या से तथा ब्रह्मचारिणी अर्थात् अक्षतयोनी कन्या अब्रह्मचारी अर्थात् क्षतवीर्य जवान पुरुष से शादी न करे। ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारी से तथा अब्रह्मचारिणी अब्रह्मचारी से विवाह करे यह वेद का दृढ़-नियम है, अत: 'ब्रह्मचर्येण' हेतु 'पतिम्' तथा कन्या दोनों के साथ लगाना आवश्यक था। अब अर्थ इस प्रकार होंगे कि ब्रह्मचर्य

से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान पति को प्राप्त हो। आशा है अब आपको इसके समझने में कठिनता न रहेगी।

(३०६) प्रश्न—वीर्यरक्षा का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। वीर्य पुरुषों में ही होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य का साधन पुरुष ही कर सकता है। स्त्री के शरीर में वीर्य नहीं होता 'रज' होता है। रज को शास्त्र ने कहीं पर भी ब्रह्मचर्य के नाम से स्मरण नहीं किया। फिर कन्या में ब्रह्मचर्य का लगाना शास्त्रानभिज्ञता और पागलपन नहीं तो क्या है? —३०५, पं० २३

उत्तर—आप इस प्रकार के विचित्र जन्तु हैं कि आपको जो सूझती है अनोखी ही सूझती है। आप दुनियाभर में पहले आदमी हैं जिनको न्यूटन को पृथिवी में आकर्षण की भाँति यह बात सबसे पहले सूझी है कि स्त्री में वीर्य नहीं होता। वैद्यक ग्रन्थों में जो लिखा है कि मनुष्य के शरीर में रस, रुधिर, मांस, चर्बी, मज्जा, हड्डी तथा वीर्य—ये सात धातुएँ होती हैं तो स्त्री के शरीर में आपके विचार से एक धातु वीर्य होती ही नहीं, अर्थात् स्त्री के शरीर में छह ही धातु होती हैं, सातवीं होती ही नहीं? हमें दुःख से कहना पड़ता है कि आपकी यह सूझ सर्वथा मिथ्या है। स्त्री में भी वैसे ही सातों धातुएँ होती हैं जैसे पुरुष में। जैसे पुरुष में वीर्य होता है वैसे ही स्त्री में भी वीर्य होता है। बोलने-चालने में भेद प्रतिपादन के लिए स्त्री के वीर्य को ही रज के नाम से पुकारते हैं। यह रज वह नहीं होता जो स्त्री को प्रत्येक मास में प्रथम चार रात्रि में आता है तथा जिसके शुद्ध होने पर गर्भाधान की आज्ञा है। ऋतुमती होने पर चार दिन जो विकृत रक्त आता है वह और वस्तु है, और जिसका पुरुष के वीर्य के साथ मिलाप होकर स्त्री को गर्भ ठहरता है वह और वस्तु है। शास्त्रों में स्त्री और पुरुष दोनों के वीर्य का शुक्र या बीज के नाम से भी वर्णन किया है, जैसे—

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥ —मनु० ३।४९

पुंसो बीजेऽधिकेऽयुग्मास्वपि पुत्रो जायते। स्त्री बीजेऽधिके युग्मास्वपि दुहितैव। स्त्री पुंसयोस्तु बीजसाम्येऽपुमान्नपुंसकं जायते। पुंस्त्रियाविति यमौ च। निःसारेऽल्पे चोभयोरेव बीजे गर्भस्यासम्भवः॥ ४९॥ —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—पुरुष के बीज अधिक होने पर अयुग्म रात्रियों में भी पुत्र ही होगा। स्त्री के बीज अधिक होने पर युग्म रात्रियों में भी कन्या ही होगी। स्त्री और पुरुष के बीज बराबर होने पर नपुंसक पैदा होता है वा लड़के-लड़की का जोड़ा। यदि स्त्री तथा पुरुष दोनों का बीज साररहित हो अथवा थोड़ा हो तो गर्भ ठहरना असम्भव है॥४९॥

अब यहाँ पर स्त्री तथा पुरुष दोनों को वीर्य के शुक्र तथा बीज के नाम से वर्णन किया गया है, अतः आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा मिथ्या है कि स्त्री में वीर्य नहीं होता। फिर ब्रह्मचर्य केवल वर्यरक्षा का नाम नहीं है, अपितु वीर्य की रक्षा करते हुए वेद के पढ़ने तथा ईश्वर की उपासना का नाम ब्रह्मचर्य है। इस ब्रह्मचर्य के धारण करने का स्त्री को भी अधिकार है, जैसेकि स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य शब्द आता है कि—

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी। यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्॥ १५८॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता। स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥ १६०॥
—मनु० अ० ५

शृणुयाच्चैव या नारी तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी। पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति देववत्॥ १९८॥
—महा० शान्ति० अ० २८४

भाषार्थ—मरने तक नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहे। एक पुरुष की पत्नियों का जो उत्तम धर्म है उसकी इच्छा करती रहे॥ १५८॥ पति के मरने पर साधु स्वभाववाली स्त्री ब्रह्मचर्य में स्थिर रहते हुए बिना पुत्र के भी स्वर्ग में जाती है, जैसेकि धार्मिक ब्रह्मचारी स्वर्ग में जाते हैं॥ १६०॥ जो स्त्री स्तुति को सुने और भक्ति में मस्त ब्रह्मचारिणी रहे, वह पिता तथा पति के पक्ष में देवता के समान पूजा के योग्य होती है॥ १३२॥

कहिए महाराज! अब तो पूर्णरूप से सिद्ध हो गया कि स्त्री के साथ ब्रह्मचर्य का शब्द शास्त्रों में प्रयुक्त हुआ है। फिर ब्रह्मचर्य शब्द को कन्या के साथ लगाने पर शंका करना शास्त्रानभिज्ञता और पागलपन है या नहीं?

(३०७) प्रश्न—रही बात यह कि **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** यह लेख किसी भी गृह्यसूत्र और श्रौतसूत्र में कहीं पर भी नहीं है। —पृ० ३०६, पं० ७

उत्तर—पक्षपात ने आपकी अक़्ल पर ऐसा ताला लगा दिया है कि आपको सीधी बात भी उलटी नज़र आती है। आपने यह समझ लिया कि **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** यह किसी वेदशास्त्र, गृह्यसूत्र वा श्रौतसूत्र का मन्त्र, सूत्र वा पाठ है। श्रीमान्‌जी! ऐसा नहीं है। यदि यह अक्षरशः किसी पुस्तक का पाठ होता तो स्वामीजी इसका ठिकाना नोट कर देते। स्वामीजी ने कर्मकाण्ड के पुस्तकों का यह अभिप्राय लिखा है कि यज्ञ में स्त्री को मन्त्र उच्चारण करने पड़ते हैं, यदि स्त्री को वेद का अधिकार न होता तो यज्ञ में उसको मन्त्र-उच्चारण का अधिकार क्यों दिया जााता? स्वामीजी के लेख को तनिक ध्यान से पढ़ने की कृपा करें—

प्रश्न—क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें?

उत्तर—अवश्य, देखो श्रौतसूत्रादि में—**इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्,** अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेद आदि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके? —सत्यार्थ० समु० ३

इससे स्पष्ट है कि **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** इस पाठ के देने से स्वामीजी का यह अभिप्राय नहीं है कि उपर्युक्त पाठ अक्षरशः श्रौतसूत्रादि में है, अपितु स्वामीजी का यह अभिप्राय है कि श्रौतसूत्रादि में स्त्री को यज्ञ में मन्त्र उच्चारण की आज्ञा विद्यमान है और स्वामीजी की यह बात सोलह आने ठीक है कि यज्ञ में स्त्री को वेदमन्त्रों के बोलने की आज्ञा और अधिकार श्रौतसूत्रादि पुस्तकों में विद्यमान है। ध्यानपूर्वक पढ़ने की कृपा करें—

(१) कात्यायनश्रौतसूत्र—

प्रक्षालितेषु महिष्यश्वमुपसंविशत्याहमजानीति। (का० २०।६।१४)।

भाषार्थ—पशु के प्राणों के शुद्ध होने पर यजमान की पत्नी घोड़े के पास सोती है और **'आहमजानि'** इत्यादि [यजुः० २३।१९] मन्त्र को बोलती है, (देखो इसी मन्त्र का महीधर-भाष्य)।

(२) कात्यायनश्रौतसूत्र—

अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति। —का० २०।६।१६

भाषार्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को योनि में डालकर **'वृषा वाजी'** इत्यादि [यजुः० २३।२०] इस मन्त्र को बोले, (देखो इसी मन्त्र का महीधर-भाष्य)।

(३) गोभिलगृह्यसूत्र—

पश्चादग्नेः संवेष्टितङ्कटमेवञ्जातीयं वाऽन्यत् पदा प्रवर्तयन्तीं वाचयेत्—प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतामिति। —गोभिल० २।१।१९

भाषार्थ—अग्नि के पीछे स्थापित कर या इसी प्रकार का अन्य आसन कन्या के पैर से लेकर अग्नि के समीप बिछाये हुए बर्हि तक ले आवे, उस समय वधू को '**प्र मे**' मन्त्र का पाठ करावे।

(४) आश्वलायनश्रौतसूत्र—

वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेद्धोताऽध्वर्युर्वा वेदोऽसि वित्तिरसि। —आश्व० श्रौ० १।११।१

भाषार्थ—वेद पत्नी को देकर होता वा अध्वर्यु यह मन्त्र बुलवावे—'**वेदोऽसि वित्तिरसि**' इत्यादि।

(५) ऋग्विधान—

इमामिति जपेत् कन्या नाभिमालभ्य नित्यशः॥ ११७॥

एवमेव जपेद्भर्ता ततो दीर्घायुषौ नु तौ॥ ११८॥

—शौनकाचार्यकृत ऋग्विधान अ० ३ खं० २२

भाषार्थ—'**इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः**' इत्यादि [ऋ० १०।८५।४५]। कन्या नाभि का स्पर्श करके इस मन्त्र का जप करे। ऐसे ही पति भी जप करे तो निश्चय से दोनों की दीर्घायु हो जावेगी।

(६) ऋग्विधान—

इमामिति त्रिसूक्तेन दशकृत्वो दशावरम्। सपत्नीं बाधते तेन पतिश्चातीव मन्यते॥ ६३॥

—शौनकाचार्यकृत ऋग्विधान अ० ४ खं० १२

भाषार्थ—'**इमाम्**' इत्यादि ऋग्वेद के इस सूक्त को यदि दश वार जपें तो सौत को हानि पहुँचावे तथा उसका पति भी उसका आदर करे।

(७) चारों वर्ण की स्त्रियों को वेदाधिकार—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर।

यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपुष्पजलाक्षतैः॥ ८२॥

कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः।

कुसुमैर्वत्सकञ्चापि मन्त्रेणानेन पाण्डव॥ ८३॥

''ओं माता रुद्राणा दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट'' नमो नमः स्वाहा॥ ८४॥

इत्थं सम्पूज्य गां पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत्॥ ८५॥ —भविष्य० उ० अ० ६९

भाषार्थ—हे राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों की स्त्रियाँ क्रमशः इस गौ को गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत से पूजा करके और कुंकुम, पुष्पयुक्त दीपक तथा उड़द अन्न की बड़ियों से तथा फूलों से गौ की बछड़े समेत '**ओं माता रुद्राणाम्**' मन्त्र से पूजा करके पीछे गौ को विसर्जन करे। यह ऋग्वेद का [मं० ८ सूक्त १०१ मं० १५] मन्त्र है। जब चारों ही वर्णों की स्त्रियों को इसके उच्चारण का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है?

(८) वेश्या को वेदाधिकार—

कोऽदादिति पठेन्मन्त्रं ध्यायंश्चेतसि माधवम्।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद् द्विजपुङ्गवम्।

शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्॥ ५४॥ —भविष्य० उत्तर० अ० १११

भाषार्थ—वेश्या को चाहिए कि वह '**को अदादिति**' इस वेदमन्त्र को पढ़े और माधव का

चित्त में ध्यान करके फिर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके उसे उसके घर भेज दे और शय्या, आसन आदि सब ब्राह्मण के घर पहुँचा देवे॥५४॥ यह मन्त्र यजुर्वेद [७।४८] का है। जब वेश्या को भी इसके उच्चारण का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है?

(९) शिव द्वारा पार्वती को मन्त्रोपदेश—

उपदिष्टास्त्वया देव मन्त्राः सप्रणवा मताः।
तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चितम्॥ २१॥ —शिव० केलास० अ० २

भाषार्थ—पार्वती ने शिव से कहा कि हे देव! आपने जो प्रणवसहित मन्त्रों का मुझे उपदेश किया है, इनमें से मैं पहले प्रणव का अर्थ निश्चितरूप से सुनना चाहती हूँ॥ २१॥

शिव का पार्वती को मन्त्रोपदेश करना स्त्रियों के वेदाधिकार को स्पष्ट सिद्ध करता है—

(१०) राधा-कृष्ण के विवाह में—

श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्टदेशे प्रजापतिः।
स्थापयामास मन्त्रास्त्रीन् पाठयामास राधिकाम्॥ १२६॥
पुटाञ्जलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः॥ १२९॥
पाठयामास वेदोक्तान् पंच मन्त्राँश्च नारद॥ १३०॥ —ब्रह्मवैवर्त्त० खण्ड ४ अ० १५

भाषार्थ—ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण के हाथ को राधा की पीठ पर रखवाकर तीन मन्त्र राधा को पढ़ाये॥ १२६॥ फिर ब्रह्मा ने कृष्ण तथा राधा की पुटाञ्जलि करवाकर॥ १२९॥ वेद के पाँच मन्त्र दोनों को पढ़ाये॥ १३०॥

जब ब्रह्मा ने स्वयं राधा को वेदमन्त्र पढ़ाये तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है?

(३०८) प्रश्न—स्त्रियों को केवल मन्त्रभाग के पढ़ने का निषेध है, अन्य शास्त्रों का नहीं। गार्गी प्रभृति जितनी भी विदुषियाँ भारतवर्ष में हुई हैं वे सब शास्त्रों की विदुषियाँ थीं, किन्तु मन्त्रभाग से सबकी-सब अनभिज्ञ थीं। फिर स्त्रियों का वेद पढ़ना तो इतिहास से भी सिद्ध नहीं।
—पृ० ३०६, पं० १५

उत्तर—आपका यह लिखना कि 'स्त्रियों को केवल मन्त्रभाग के पढ़ने का निषेध है' यह सिद्ध करता है कि ब्राह्मणभाग के पढ़ने का स्त्रियों को अधिकार है, तो क्या आप ब्राह्मणभाग को वेद नहीं मानते? यदि मानते हैं तो आपके कथन से ही स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार सिद्ध हो गया। फिर आपने स्वयं अपने पुस्तक के पृष्ठ २९७, पं० २२ पर लिखा है कि 'वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है, उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है' और फिर आप पृ० ३३७, पं० १९ में लिखते हैं कि 'अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं' तो इससे आपके कथन से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध हो गया।

आप अपनी पुस्तक के पृ० २७२, पं० २ पर स्वयं लिखते हैं कि इस **(आयं गौः)** मन्त्र का सर्पराज्ञी कद्रू ऋषि है और ऋषि कहते ही उसको हैं जो वेद के तत्त्व को जानता हो, अतः आपके लेख से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध हो गया।

(१) 'शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः' इत्यादि [अथ० ६।१२२।५]।
ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियाँ यज्ञ के योग्य हैं॥४॥

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्ययाशिरा॥ —ऋ० ८।३१।५
स्त्री-पुरुष को इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिए॥५॥

ये दोनों मन्त्र बतलाते हैं कि स्त्री-पुरुष को इकट्ठे, मिलकर यज्ञ में शामिल होना चाहिए।

(२) यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः।

पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् यागमण्डपम्॥ १६॥ —भवि० म० भाग० २ अ० २०

यजमान अपनी पत्नी तथा पुत्र-पौत्रसहित पश्चिम द्वार को प्राप्त होकर यज्ञमण्डप में प्रवेश करे॥ १६॥

(३) इसी विधि को पूरा करने के लिए राम ने सोने की सीता बनवाई—

कांचनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि॥ २५॥ —वाल्मी० उत्तर० स० ९१

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।

यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्॥ ७॥ —वाल्मी० उत्तर० स० ९८

यज्ञकर्म की दीक्षा में सीता के स्थान में सोने की पत्नी बनाओ॥ २५॥ सीता के पश्चात् राम ने दूसरी पत्नी स्वीकार नहीं की। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के स्थान में सोने की सीता रक्खी जाती थी॥ ७॥

(४) कौसल्या तथा द्रौपदी यज्ञ में—

होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्।

महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा॥ ३५॥ —वाल्मी० बाल० स० १४

ततः संज्ञाप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा। उपसंवेश्यन् राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम्।

कलाभिस्तिसृभी राजन् यथाविधि मनस्विनीम्॥ २॥ —महा० अश्वमे० आ० ८९

इन श्लोकों में कौसल्या को दशरथ के साथ तथा द्रौपदी को युधिष्ठिर के साथ यज्ञ के कर्मों में प्रयुक्त किया जाना स्पष्ट है।

(५) कौसल्या का हवन करना—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।

अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला॥ १५॥ —वाल्मी० अयोध्या० स० २०

धर्मनित्या यथाकालमग्न्यागारपरा भव।

देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय॥ १८॥ —वाल्मी० अयो० स० ५८

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।

अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः॥ १४॥ —वाल्मी० अयो० स० ७५

भाषार्थ—जब राम कैकेयी के महलों से कौसल्या के हमलों में पहुँचा तब वह कौसल्या अतसी के वस्त्र पहने प्रसन्नचित्त व्रतपरायण होकर मङ्गलार्थ वेदमन्त्रों से अग्निहोत्र कर रही थी॥ १५॥ राम ने वन से सारथी के हाथ कौसल्या को सन्देश दिया। हे देवि! नित्यधर्म का पालन करते हुए समयानुसार अग्निहोत्र का पालन करना। और देव दशरथ के पाँवों को ईश्वर की भाँति पूजना॥ १८॥ जब भरत मामा के घर से आया तब कौसल्या ने कहा—अथवा मैं स्वयं ही सुमित्रा को साथ लेकर सुखपूर्वक अग्निहोत्र को आगे करके वहीं चली जाऊँगी जहाँ राम है॥ १४॥

श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम्।

प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्॥ ३३॥ —वाल्मी० अयो० स० ४

पुत्र के अभिषेक को सुनकर कौसल्या ने प्राणायाम द्वारा ईश्वर का ध्यान किया॥ ३३॥

(६) सीता का सन्ध्या तथा अग्निहोत्र करना—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥ ४९॥ —वाल्मी० सुन्दर० स० १४
वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत्॥ २५॥ —वाल्मी० सु० स० ५३
गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्॥ १॥
प्रगृह्य शिरसापात्रीं हविषो विधिवत्ततः।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानले॥ २॥ —वाल्मी० अयो० स० ६

भाषार्थ—हनुमान् सीता को ढूँढते-ढूँढते जब अशोकवाटिका में पहुँचे तब प्रातः अनुमान किया—सन्ध्या का काल हो जाने से सन्ध्या करने के लिए वह श्यामा, सुन्दरी सीता इस शुद्ध जलवाली नदी पर अवश्य आवेगी॥ ४९॥ जब हनुमान्‌जी के पकड़े जाने का समाचार सीता को मिला तो—सीता शोक से दुःखित होकर अग्निहोत्र करने चली गई॥ २५॥ पुरोहित ने अभिषेक का समाचार सुनाया तो—पुरोहित के चले जाने पर राम ने स्नान किया और मन को एकाग्र करके अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली पत्नी सीता के साथ प्रथम सन्ध्या की॥ १॥ फिर प्रतिष्ठापूर्वक सामग्री के पात्र को लेकर विधि-अनुसार परमात्मा की आज्ञा पालन के लिए घृत से अग्नि का हवन किया॥ २॥

(७) कैकेयी वेदज्ञाता थी—

तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह॥ ६१॥ —वाल्मी० अयो० स० १४

तब मन्त्रों को जाननेवाली कैकेयी ने सुमन्त्र को कहा।

(८) द्रौपदी पण्डिता थी—

प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत्॥ २॥ —महा० वन० अ० २७

भाषार्थ—प्रेम के योग्य, दर्शन के योग्य, पण्डिता और पतिव्रता द्रोपदी ने धर्मराज से ये वचन कहे।

(९) स्त्री को योगाधिकार तथा संन्यासाधिकार—

सा प्राप्य मिथिलां रम्यां प्रभूतजनसंकुलाम्। भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम्॥ १२॥
ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम्। पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत्॥ १४॥
अथ भुक्तवता प्रीत्या राजानं मन्त्रिभिर्वृत्तम्। सर्वभाष्यविदां मध्ये चोदयामास भिक्षुकी॥ १५॥
सुलभा त्वस्य धर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया। सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः॥ १६॥
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्य रश्मिभिः। सा स्म तं चोदयिष्यन्ती योगबन्धैर्बबन्ध ह॥ १७॥
जनकोऽप्युत्स्मयन् राजा भावमस्या विशेषयन्। प्रतिजग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तम॥ १८॥
—महा० शान्ति० अ० ३२०

भाषार्थ—वह योगिनी संन्यासिनी सुलभा जनसमूह से पूर्ण मिथिला में भिक्षा के उद्देश्य से राजा जनक के पास गई॥ १२॥ तब राजा ने उसका स्वागत करके श्रेष्ठ आसन दिया। पाँव धोकर उसकी पूजा की तथा श्रेष्ठ अन्न से उसको तृप्त किया॥ १४॥ प्रेम से भोजन करके मन्त्रियों से युक्त राजा को सब भाष्य जाननेवालों के मध्य में उस संन्यासिनी ने प्रेरणा की॥ १५। सुलभा को संशय हुआ कि यह राजा धर्मों में युक्त हैं वा नहीं। योग के जाननेवाली अपने सत्त्व से राजा के सत्त्व में प्रवेश कर गई॥ १६॥ तब उस सुलभा ने अपने नेत्रों की ज्योति से राजा के नेत्रों की ज्योति को वश में करके योग बन्धनों से राजा को बाँधकर प्रेरणा की॥ १७॥ राजा जनक ने भी मुस्कराते

हुए भाव को विशेष रूप से जानकर अपने भाव से उसके भाव को ग्रहण कर लिया॥ १८॥

(१०) स्त्री को राज्याधिकार—

कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय।

कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यसि॥ ४५॥ —महा० शान्ति० अ० ३

भाषार्थ—जिनके लड़का न हो वहाँ पर कन्या का राज्याभिषेक कर दो। कामनाओं की आशा करनेवाला स्त्रीवर्ग होता है। उनके शोक को तू इस प्रकार कम कर सकेगा॥ ४५॥

(११) स्त्री को युद्धाधिकार—

प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता। मम वेषं शुभं कृत्वा तारकं जहि मा चिरम्॥ १९९॥

तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम्। छित्वा शस्त्राणि खड्गेन शिरः कायादपाहरत्॥ २०६॥

—भविष्य० प्रति सर्ग० ख० २ अ० ३२

भाषार्थ—ब्रह्मा ने अपनी स्त्री वेला से कहा कि हे प्यारी! तू घोड़े पर चढ़कर शीघ्र युद्धस्थल में जा। वेष धारण करके तारक को मार, देर मत कर॥ १९९॥ तब वेला ने महाशत्रु बलवान् तारक के शस्त्रों को अपने खड्ग से तोड़-फोड़कर उसके शिर को धड़ से अलग कर दिया॥ २०६॥

(१२) चारों वेदों की पण्डिता स्त्री—

कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती। सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम्॥ ३॥

सा च भूतलसम्बन्धाज्ज्ञानयुक्ता बभूव ह। कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे॥ ४॥

वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका। तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५॥

सततं मूर्त्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च। सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता॥ ६४॥

—ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० १४

भाषार्थ—कुशध्वज की धर्मपत्नी मालावती नाम की सती स्त्री थी। कुछ समय के पश्चात् उसने कमला के अंश सतीपुत्री को पैदा किया॥ ३॥ वह जन्म लेते ही पृथिवी के सम्बन्ध से ज्ञानवाली हो गई। प्रसूतिगृह में वेद की स्पष्ट ध्वनि करके खड़ी हो गई॥ ४॥ वह कन्या पैदा होते ही वेद की ध्वनि करने लगी। इस कारण से वे बुद्धिमान् लोग उसको वेदवती कहने लगे॥ ५॥ निश्चय से चारों वेद मूर्त्तिमान होकर सदा उसकी जिह्वा के अग्रभाग में रहते थे। इसलिए उसका नाम वेदवती था॥ ६४॥

(१३) अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणी वेदपारगा। अधीत्य सकलान् वेदान् ले भेऽसन्देहमक्षयम्।

—महा० उद्योग० अ० १०९ श्लो० १८-१९

भाषार्थ—यहाँ पर शिवा नामवाली सिद्धा ब्राह्मणी वेदों का पार पानेवाली सब वेदों को पढ़कर अक्षय विश्वास को प्राप्त हुई। (१८-१९)॥

कहिए महाराज! अब तो स्त्रियों का वेदाध्ययन-अधिकार वेद, स्मृति, शास्त्र, इतिहासादि सबसे सिद्ध हो गया। कहिए, अब और क्या शंका है?

विवाह-काल

(३०९) प्रश्न—सोलह संस्कारों का वर्णन वेद में नहीं है, न ही धर्मशास्त्रों में उनका विधान है। जब समस्त सोलह संस्कारों का विधान स्मार्त है तो विवाह भी स्मृति-प्रतिपाद्य ही हुआ।

—पृ० ३३५, पं० ९

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा कि सोलह संस्कारों का वर्णन वेदों में नहीं है सर्वथा ग़लत है। वेदों में सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा तथा सोलह संस्कारों का मूल विद्यमान है। उसी मूल के आधार पर धर्मशास्त्रों तथा गृह्यसूत्रों ने विस्तारपूर्वक संस्कारों की व्याख्या की है।

सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा—

षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ —यजुः० ८।३३

भाषार्थ—सोलह संस्कारों से युक्त परमैश्वर्य देनेवाले गृह-आश्रम करने के लिए तुझे आज्ञा देता हूँ॥ ३३॥

इस मन्त्र में परमेश्वर ने गृहस्थों के लिए सोलह संस्कारों के करने की स्पष्ट आज्ञा दी है। अब हम आपको सोलह संस्कारों का मूल वेदो में से दिखाते हैं—

(१) गर्भाधान संस्कार—

पर्वताद्दिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत्॥ —अथर्व० कां० ५ सूक्त २५ मं० १

भाषार्थ—जननेन्द्रिय गर्भ में वीर्य का धारणा करनेवाला है। जननेन्द्रिय वीर्य के कारणरूप मेरुदण्ड, मस्तिष्क और प्रत्येक अङ्ग से इकट्ठे हुए वीर्य को बाण में पंख की तरह योनि में धारण कराता है॥ ११॥

(२) पुंसवन संस्कार—

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रिष्वा भरामसि॥ —अथ० ६।११।१

भाषार्थ—घोड़े के सदृश बलवान् मनुष्य शान्त स्वभाववाली स्त्री पर आरोहण कर चुका है। इसलिए यह पुंस्वन संस्कार किया गया है। यह संस्कार ही सन्तान-प्राप्ति करानेवाला है। वही संस्कार हम स्त्रियों का करते हैं॥ १॥

(३) सीमन्तोन्नयन संस्कार—

राकामहं सुहवां सुष्टुती हवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥ —ऋ० २।३२।४

भाषार्थ—मैं दान देनेवाली, अच्छी प्रकारसे बुलाये जाने योग्य स्त्री को अच्छी स्तुति द्वारा बुलात हूँ। वह उत्तम ऐश्वर्यवाली मेरे आह्वान को सुने और अपने आत्मा से मुझे अच्छी प्रकार समझे। जैसे बारीक सूई से वस्त्र के छिद्रों को सीकर पूरा कर लेते हैं, वैसे ही वह भी हमारे प्रजनन-कर्म को अच्छे प्रकार सी दे और बलवान्, सैकड़ों प्रकार से दानादि देनेवाले प्रशंसनीय पुत्र मुझे दे॥ ४॥

(४) जातकर्म संस्कार—

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥ —ऋ० ५।७८।९

भाषार्थ—हे परमात्मन्! दश महीने तक माता के उदर में सोनेवाला सुकुमार जीव प्राण धारण करता हुआ जीती हुई अपनी माता से बिना किसी दुःख के अर्थात् सुखपूर्वक बाहर निकले॥ ९॥

(५) नामकरण संस्कार—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥ —यजुः० ७।२९

भाषार्थ—हे बालक! तू प्रकाशरूप है। अतिशय प्रकाशरूप है। तू परमात्मा का रस है। तू आत्मा नामवाला है। जिस तेरे नाम को हम जानते हैं, जिस तुझे शान्तिदायक पदार्थों से हम तृप्त करते हैं। परमात्मा की कृपा से अनेक गुणयुक्त सन्तानों से मैं सुन्दर सन्तानवाला होऊँ। वीर सन्तानों से अच्छे वीरों से युक्त होऊँ। अन्य पोषणीय भृत्यादि से सुन्दर पोषण, रक्षा करनेवाला होऊँ॥ २९ ॥

(६) निष्क्रमण संस्कार—

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा॥ —अथ० ८।२।१५

भाषार्थ—हे बालक! तेरे लिए ओषधियाँ कल्याणकारी हों। मैं तुझे अन्दर से बाहर लाया हूँ। प्रकाशमान् सूर्य और चन्द्रमा दोनों तेरी रक्षा करें॥ १५ ॥

(७) अन्नप्रकाशन संस्कार—

अन्नपतेऽ न्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ —यजुः० ११।८३

भाषार्थ—हे अन्न के स्वामी परमात्मन्! रोगरहित, बलकारक अन्न को हमारे लिए दीजिए, हमें बढ़ाइए। हमारे भृत्यों और गौ आदि पशुओं के लिए भी बलकारक अन्न दीजिए॥ ८३ ॥

(८) मुण्डन संस्कार—

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीघायुत्वाय चक्षसे॥ —अथ० कां० ६ सू० ६८ मं० २

भाषार्थ—अखण्डित अर्थात् तेज़ छुरा केशों को काटे। जल वेगयुक्त स्वभाव से केशों को गीला करे। सन्तान का पालक पिता इस बालक को दीर्घ जीवन तक देखने के लिए रोग को निवृत्त करे॥ २ ॥

(९) कर्णवेध संस्कार—

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि। अकर्त्तामश्विना लक्ष्य तदस्तु प्रजया बहु॥
—अथ० ६।१४१।२

भाषार्थ—धातु के शस्त्र से दोनों कानों को छेदे। वैद्य उस शोभावर्धक कार्य को करें। वह प्रजा के कल्याण का निर्वाह करनेवाला हो॥ २ ॥

(१०) उपनयन संस्कार—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः॥
—अथ० ११।५।३

भाषार्थ—ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत देनेवाला आचार्य अपने अन्दर करता है। उस ब्रह्मचारी को अपने उदर में तीन रात्रि तक रखता है। जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है तब उसे देखने के लिए सब विद्वान् सब ओर से इकट्ठे होते हैं॥ ३ ॥

(११) वेदारम्भ संस्कार—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजम्। यथेह पुरुषोऽ सत्॥ —यजुः० २।३३

भाषार्थ—हे विद्यादान से रक्षा करनेवाले पुरुषो! तुम जिस प्रकार यह ब्रह्मचारी इस संसार में शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त कर विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य होवे उस प्रकार गर्भ के समान कोमल, विद्याग्रहण के लिए पुष्पों की माला धारण किये हुए ब्रह्मचारी को स्वीकार करो॥ ३ ॥

(१२) समावर्त्तन संस्कार—

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ —अथ० ११।५।६

भाषार्थ—तेज से प्रकाशित कृष्णचर्म धारण करता हुआ, व्रत के अनुकूल आचरण करनेवाला और बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगों को इकट्ठा करता हुआ बारम्बर उनको उत्साह देता है और पूर्व से उत्तर समुद्र तक शीघ्र ही पहुँचता है॥६॥

(१३) विवाह संस्कार—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति॥
—अथ० ११।५।१८

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥
—अथ० १४।१।५१

भाषार्थ—ब्रह्मचारिणी कुमारी ब्रह्मचर्य-सम्पन्न युवा पति को प्राप्त करती है। ब्रह्मचर्य-बल सम्पन्न होने पर ही वृषभ और अश्वसंज्ञक पुरुष भोग्य पदार्थों का भोग कर सकते हैं॥१८॥ हे वरानने! ऐश्वर्ययुक्त मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूँ। धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूँ। तू धर्म से मेरी पत्नी है। मैं तेरा स्वामी हूँ॥५१॥

(१४) वानप्रस्थ संस्कार—

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि। कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती॥१॥
—ऋ० १०।१४६।१

भाषार्थ—यह वन-वन में घूमनेवाला वानप्रस्थ गाँवों से दूर प्राप्त होता है, अर्थात् गाँवों में नहीं रहता, उनसे दूर रहता है। तू नगरों तथा गाँवों में जाने की बात या दशा को क्यों नहीं पूछता? तुझे इस निर्जन वन में घूमते हुए क्या भय नहीं लगता है?॥१॥

(१५) संन्यास संस्कार—

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे॥
—अथ० १९।४३।१

भाषार्थ—जिस लोक को वेदवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी, संन्यासी लोग अहिंसा, सत्यभाषण आदि व्रतों से और तप के द्वार प्राप्त करते हैं, सर्वाग्रणी प्रभु मुझे उसी अवस्था में पहुँचाए और मुझमें सदसविद्विवेकिनी उत्तम बुद्धि को धारण कराए॥१॥

(१६) अन्त्येष्टि संस्कार—

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते। शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके॥
—अथ० १८।३।७१

भाषार्थ—हे अग्ने! इस मृतदेह को प्राप्त हो और तेरा हरण-सामर्थ्य तेजस्वी हो। इस प्राणी के मृत शरीर को जला दे, और इसे पुण्यात्माओं के लोक=स्वर्गलोग में धारण कर॥७१॥

आपने देख लिया कि जैसे और संस्कारों का वेद में वर्ण है वैसे ही विवाह संस्कार का भी वेद में वर्णन है, अतः और संस्कारों की भाँति विवाह भी वैदिक ही है, केवल स्मार्त नहीं है।

(३१०) प्रश्न—स्मृतियों में विवाह-काल निम्न प्रकार से वर्णित है, पढ़कर देखिए—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥

माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २॥

[अंगिरास्मृति में अनुपलब्ध परन्तु संवर्तस्मृति में ये ६६-६७वें श्लोक हैं। —सं०]—आंगिरास्मृति

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम्॥ ७॥

यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः। असम्भाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः॥ ९॥

—पराशरस्मृति अ० ७

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते॥ ६८॥ —संवर्तस्मृति

यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना।
तावन्त्यो भ्रूणहत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम्॥ —नारदस्मृति १२।२६

कन्या द्वादशवर्षाणि याऽ प्रदत्ता वसेद् गृहे।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥ —यमस्मृति [अनुपलब्ध—सं०]

भाषार्थ—आठ वर्ष की कन्या की गौरी और नौ वर्ष की कन्या की रोहिणी तथा दश वर्ष की कन्या की कन्या संज्ञा होती है। दश वर्ष पश्चात् कन्या रजोधर्मवाली होती है। माता, पिता तथा ज्येष्ठ भाई यदि रजस्वला होने तक कन्या का विवाह न करें तो ये तीनों नरक को जाते हैं।

—अंगिरा

जो बारहवें वर्ष में कन्या का विवाह नहीं करता उस कन्या के जो मास-मास में ऋतुधर्म द्वारा शोणित प्रस्रवित होता है, उस शोणित को उसके पितर स्वयं पीते हैं। बारह वर्षकी कन्या होने के पश्चात् जो वर ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है, वह मदमोहित है। उसके साथ में कभी न बोलना चाहिए, उसको पंक्ति में भोजन न खिलाना चाहिए, उसको वृषलीपति समझो।

—पराशर

कन्या को ऋतुमती होने से पहले विवाह दे और कन्या के अष्टम वर्ष में विवाह करना बहुत ही श्रेष्ठ है। **—संवर्त**

पति के बिना कन्या की जितनी ऋतुएँ बीतती हैं, उतनी ही भ्रूणहत्या का पाप उसको लगता है, जो ऋतुकाल से पहले कन्या का विवाह नहीं करता। **—नारद**

बारह वर्ष तक बिना ब्याही हुई कन्या के घर में रहने से उस कन्या के माता-पिता को ब्रह्महत्या लगती है, इसके पश्चात् कन्या को स्वयंवर द्वारा विवाह करने का अधिकार है।

—यम

उत्तर—आपकी ये सम्पूर्ण स्मृतियाँ तथा उनके श्लोक वेदविरुद्ध होने से कपोलकल्पित और मिथ्या हैं, क्योंकि वेद स्त्री तथा पुरुषों को जवान आयु में विवाह करने की आज्ञा देते हैं—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ —अथर्व० ११।५।१८

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्ये से युक्त जवान पति को प्राप्त होती है।

फिर वेद कहता है कि—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभि रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु॥ —ऋ० २।३५।४

भाषार्थ—जैसे जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे उत्तम ब्रह्मचर्यव्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध जवान कन्याएँ ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त जवान पति को अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं। वह ब्रह्मचारी शुद्धगुण और वीर्य आदि से युक्त होके हमारे मध्य में अत्यन्त

श्रीयुक्त कर्म को और अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे। जैसे अन्तरिक्ष वा समुद्र में जल को शोधन करनेहारा स्वयंप्रकाशित विद्युत् अग्नि है, इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान परन्तु भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री-पुरुष प्राप्त होवें॥ ४॥

मनुस्मृति भी इसकी पुष्टि करती है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ —मनु० ९।९०

भाषार्थ—कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्षपर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ —मनु० ९।८९

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें और कन्या ऋतुमती भी घर रहे परन्तु गुणहीन के साथ कभी भी विवाह न करना चाहिए, अर्थात् सदृश गुण-कर्म-स्वभाववालों का ही विवाह होना योग्य है।

सुश्रुत भी इसका विस्तृतरूप से वर्णन करता है कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ ४७॥
जातो वा न चिरञ्जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥ ४८॥

—[वर्तमान संस्करणों में श्लोकसंख्या ५९-६० है। —सं०] सुश्रुत, शरीरस्थान अ० १०

भाषार्थ—सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष जो गर्भ की स्थापना करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता, अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता॥ ४७॥ अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अति बाल्यावस्थावाली स्त्री में गर्भस्थापन न करे॥ ४८॥

आपकी स्मृतियों के प्रमाण वेदविरुद्ध होने से निष्फल ही हैं, क्योंकि—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्। तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥

—मनु० १२।९५-९६

भाषार्थ—जो स्मृतियाँ वेदविरुद्ध हैं और भी जो कोई कुशिक्षा देनेवाले ग्रन्थ हैं, वे सब-के-सब संसार-विषयक तथा परलोक-विषयक निष्फल हैं, क्योंकि वे अज्ञान में स्थित हैं॥ ९५॥

जो वेद से बाहर स्मार्तग्रन्थ हैं वे चाहे जो कोई हों, पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। वे सब नवीनकालिक होने के कारण निष्फल और झूठे हैं॥ ९६॥

इस सिद्धान्त के अनुकूल आपके दिये प्रमाणों तथा स्मृतियों की गति वेदविरुद्ध होने से निष्फल तथा असत्य है। इसके अतिरिक्त ये प्रमाण असम्भव तथा परस्पर विरोध-दोष से दूषित हैं—

(१) आपने अर्थ करते हुए आठ तथा नौ वर्ष की लड़की का नाम भी कन्या ही माना है, फिर गौरी और रोहिणी संज्ञा कहाँ गई और कन्या संज्ञा में क्या विशेषता हुई?

(२) मनु० ९।८९ '**कन्यर्तुमत्यपि**' कहकर मरने तक ऋतुमती की भी कन्या ही संज्ञा मानी है, जब प्रत्येक अवस्था में लड़की का नाम कन्या है तो आपकी संज्ञाएँ व्यर्थ हुईं।

(३) 'रजोदर्शन के रक्त को प्रत्येक मास में पितर पीते हैं'—क्या यह भी कोई स्वधा पदार्थ है और इसमें पितरों का क्या कुसूर? आपने पितरों की भी अच्छी दुर्गति बनाई!

(४) उधर तो आप बारह वर्ष की कन्या के साथ शादी करनेवाले ब्राह्मण को पंक्ति से निष्कासित करने की धमकी देते हैं, इधर बारह वर्ष से पीछे कन्या को स्वयंवर रीति से विवाह की आज्ञा देते हैं।

(५) उधर तो मनुजी [९।८९] माता-पिता को आज्ञा देते हैं कि कन्या को अयोग्य वर से न विवाहा जाए, चाहे कन्या मरने तक कुमारी रहे, इधर विवाह न करनेवाले को नारकी, ब्रह्महत्यारा और गर्भघातक बतलाया जा रहा है।

इत्यादि हेतुओं से ये समस्त श्लोक अत्यन्त दूषित हैं, अतः इन स्मृतियों का यह कथन कि 'ऋतुमती होने से पहले कन्या की शादी करे' वेद तथा युक्तिविरुद्ध होने से अधर्म है, क्योंकि वेद की आज्ञा है कि 'ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़की का ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़के से विवाह हो', यह धर्म है।

(३११) प्रश्न—और भी प्रमाण पढ़िए—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ —मनु० ९।९४

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहर कन्या के साथ ब्याह करे अथवा चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या को विवाहे, वह शीघ्र ही धर्म में दुःख पाता है।
—पृ० ३३७, पं० ११

उत्तर—श्रीमान्‌जी! यह श्लोक तो हमारी ही पुष्टि करता है कि जो आदमी ३० वर्ष की आयु में बारह वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्षवाला ८ वर्ष की कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में शीघ्र ही दुःख पावेगा, क्योंकि वेद से विरुद्ध काम का नाम पाप होता है और पाप का फल दुःख है। जब वेद जवान आयु में लड़का-लड़की के विवाह की आज्ञा देता है तो कम आयु में शादी करनेवाला अवश्य ही दुःख पावेगा, इसमें सन्देह ही क्या है? वेद की आज्ञा है कि—

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ —ऋ० ३।५५।१६

भाषार्थ—जो दुही नहीं हैं ऐसी गौवों की तरह अविवाहित, बालकावस्था से रहित, सब उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेवाली, कुमारावस्था का उल्लंघन कर यौवनावस्था को प्राप्त होती हुई नवीन-नवीन शिक्षा से युक्त विद्वानों द्वारा दिये गये विज्ञान को प्राप्त, पूर्ण शिक्षित युवतियाँ गर्भ धारण करें॥ १९॥

इससे सिद्ध है कि वेद स्त्रियों का युवावस्था में विवाह होना मानता है, बालावस्था में नहीं।

(३१२) प्रश्न—जो द्विज चौबीस वर्ष की अवस्था में वेदाध्ययन छोड़े उसको आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना योग्य है, क्योंकि वेदाध्ययन छोड़ने से दूसरे दिवस ही अग्निहोत्र लेना पड़ेगा और अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं, इस कारण आठ वर्ष की कन्या से विवाह होना शास्त्र ने लिखा है। इस बात को मनु ने भी स्पष्ट कर दिया है। तीस वर्ष की अवस्था में जो वेदाध्ययन छोड़े वह बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। —पृ० ३३७, पं० १७

उत्तर—कहिए महाराज! क्या ब्रह्मचारी अध्ययन-अवस्था में अग्निहोत्र नहीं करता जो उसे वेदाध्ययन छोड़ने पर दूसरे ही दिन अग्निहोत्र लेना पड़ता है? यह आपकी बात सर्वथा बनावटी है। जब ब्रह्मचर्य-अवस्था में बिना स्त्री के अग्निहोत्र कर सकता है तो अध्ययन छोड़ने पर अकेले

को अग्निहोत्र करने में क्या मनाही है? और जो भीष्म की भाँति आयुभर ब्रह्मचारी रहना चाहे, क्या उसे स्त्री के बिना अग्निहोत्र करना मना होगा? देखिए—

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम्। आसमावर्तनात् कुर्यात् कृतोपनयनो द्विजः॥

—मनु० २।१०८

भाषार्थ—उपनयन करने से लेकर समावर्तन संस्कार तक द्विज को चाहिए कि वह अग्निहोत्र, भिक्षाचरण, नीचे सोना और गुरु का हित करता रहे॥ १०८॥

आपकी यह प्रतिज्ञा तो निराधार है, क्योंकि ब्रह्मचारी को प्रत्येक अवस्था में बिना स्त्री के अग्निहोत्र करने का अधिकार है।

आपका यह लिखना कि 'अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं' स्त्री को अग्निहोत्री, यज्ञ तथा वेदाध्ययन का अधिकार सिद्ध करता है।

फिर यदि आपकी बात मान भी ली जाए कि 'वेदाध्ययन छोड़ने पर अग्निहोत्र लेने के लिए स्त्री से विवाह करना ज़रूरी है' तो तीस वर्षवाला बीस वर्ष की कन्या से तथा चौबीस वर्षवाला सोलह वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है। यह क्या आवश्यक है कि बारह और आठ वर्ष की कन्या से ही विवाह करे और इसमें क्या प्रमाण है? जब वेद युवा तथा युवती का ही विवाह होना बताता है तो बालकावस्था का विवाह वेदविरुद्ध होने से पाप तथा दुःख का कारण है। जैसाकि मनु ने स्पष्ट लिख दिया है कि 'तीस वर्ष का बारह वर्ष की से तथा चौबीस वर्षवाला आठ वर्ष की कन्या से विवाह करके गृहस्थधर्म में दुःख पाता है'। आपका इस श्लोक से यह भाव निकालना सर्वथा ग़लत है कि जो तीस वर्षवाला बारह वर्ष से कम आयुवाली कन्या से चौबीस वर्षवाला आठ वर्ष से कम आयुवाली कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में दुःख पावेगा, अपितु वही अर्थ ठीक है जो हमने किया है, क्योंकि बारह तथा आठ वर्ष की आयु में कन्या का विवाह करना वेदविरुद्ध होने से पाप है। जैसे—

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे॥ —ऋ० १०।१८३।२

भाषार्थ—हे वधू! सौन्दर्ययुक्त अपने शरीर का ऋतुकालीन संयोग चाहती हुई तुझको मैं मन से चाहता हूँ। हे सन्तान चाहनेवाली वधू! अत्यन्त तरुणावस्थासम्पन्न तू मुझे विवाह द्वारा प्राप्त कर और सन्तानोत्पत्ति कर॥ २॥

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जवान स्त्री उस समय विवाह करे जब वह ऋतुस्नाता होकर पुत्र की कामना से गर्भ धारण करने को तैयार हो। बारह तथा आठ वर्ष की कन्या उक्त प्रकार की होती ही नहीं, अतः आठ तथा बारह वर्ष की लड़की का विवाह वेदविरुद्ध होने से पाप है।

(३१३) प्रश्न—शास्त्र कन्याओं का विवाह थोड़ी उम्र में और पुरुषों का विवाह अधिक उम्र में लिखता है। —पृ० ३३७, पं० २०

उत्तर—'**ब्रह्मचर्येण कन्या**' इत्यादि वेद के मन्त्रों में स्पष्ट वर्णन है कि जवान कन्या जवान पति से ही शादी कर सकती है, वृद्ध से या अयुवा से नहीं, जैसाकि आपके शास्त्रों में भी वृद्ध-विवाह की निन्दा लिखी है—

न श्रेयसे नीयते मन्दबुद्धिः स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।
ध्रुवं न रोचेद्भरतर्षभस्य पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः॥ —महा० सभा० ६३।१५

भाषार्थ—वह मन्दबुद्धि दुर्योधन कल्याण की ओर नहीं ले-जाया जा सकता, जैसे वेदपाठी की दुराचारिणी स्त्री। दुर्योधन धृतराष्ट्र की बात को वैसे ही नहीं मानता जैसे कुमारी साठ वर्ष

के बुड्ढे को पति बनाना नहीं चाहती॥ १५॥

[गीताप्रेस-संस्करण में यह श्लोक ६४।१४ पर है। —सं०]

जब वृद्ध पिप्पिलाद ने अनरण्य राजा से युवती पद्मा को भार्यार्थ माँगा तो—

रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम्॥ २०॥

राजा सर्वान् परित्यज्य दत्वा वृद्धाय चात्मजाम्। ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तपसेवनम्॥ ३३॥

तद्भार्यापि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे। भर्त्तुश्च दुहितुश्शोकात्प्राणाँस्तत्याज सुन्दरी॥ ३४॥

—शिव० रुद्र० पार्वती अ० ३४

भाषार्थ—मन्त्रियोंसहित राजा ब्राह्मण की वृद्धावस्था को देखकर रो पड़ा॥ २०॥ राजा वृद्ध को कन्या देकर तथा सब-कुछ त्यागकर, चित्त में ग्लानि को धारण करके वन को चला गया॥ ३३॥ उसकी स्त्री भी पति के वन जाने पर पति तथा पुत्री के शोक से प्राणों को छोड़ गई॥ ३४॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि वृद्धविवाह को शास्त्र अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए आपकी यह प्रतिज्ञा कि पुरुषों का विवाह अधिक आयु में ठीक है, वेद तथा शास्त्र के सर्वथा विरुद्ध है। जवान लड़की का जवान पति से ही विवाह वेद-शास्त्रसम्मत है।

(३१४) प्रश्न—शास्त्र ने यह भी लिखा है कि स्त्रियों का विवाह यदि अधिक उम्र में किया जाए तो रजस्वला होने के पहले हो, इसके बाद शास्त्रसम्मत नहीं। भारतवर्ष में गर्मी-सर्दी की अधिकता और न्यूनता से देश-भेदानुसार कन्या रजस्वला शीघ्र और देर में होती है, अतः समस्त देशों में रजस्वला होने से पहले ही विवाह की विधि है। —पृ० ३३७, पं० २१

उत्तर—आपके समस्त लेख का सार यह है कि अधिक-से-अधिक कन्या का विवाह रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिए, किन्तु आपकी यह प्रतिज्ञा वेद तथा शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि विवाह का एक बड़ा भारी प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है, वह रजस्वला होने से पहले पूर्ण हो नहीं सकता, अतः ऋतुकाल से पूर्व विवाह का करना व्यर्थ है। देखिए—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।

—ऋ० १०।८५।४२

भाषार्थ—विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए ईश्वर की आज्ञा है कि तुम दोनों गृहस्थ-आश्रम के शुभ व्यवहारों में रहो, विरोध करके अलग कभी मत होओ। सम्पूर्ण आयु को सुख से भोगो। अपने घर में आनन्दित होके पुत्र और पौत्रों के साथ नित्य धर्मपूर्वक क्रीड़ा करो॥ ४२॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है जो रजस्वला होने से पहले सिद्ध नहीं हो सकता, अतः रजस्वला होने से पूर्व विवाह करना वेदविरुद्ध तथा निष्प्रयोजन है।

(३१५) प्रश्न—विवाह अन्य जातियों की भाँति स्त्री-सुख का साधन नहीं, क्योंकि धर्मशास्त्रों ने इस संस्कार को भुक्ति और मुक्ति का दाता माना है। —पृ० ३३७, पं० २६

उत्तर—श्रीमान्‌जी! भुक्ति के क्या अर्थ हैं? कहीं इसके अर्थ स्त्रीसुख तो नहीं है? खैर, आपने विवाह के बड़े प्रयोजन का ज़िक्र ही नहीं किया। लीजिए, हम आपको विवाह के प्रयोजन बतलाते हैं—

प्रजनार्थं महाभागाः॥ —मनु० ९।२६

उत्पादनमपत्यस्य॥ —मनु० ९।२७

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा। दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥

—मनु० ९।२८

भाषार्थ—सन्तान पैदा करना स्त्रियों की महाभाग्यता है॥ २६॥ सन्तान का पैदा करना विवाह का प्रयोजन है॥ २७॥ सन्तान पैदा करना, धर्म के काम, सेवा तथा उत्तम रति, अपना और पितरों का सुख स्त्री, अर्थात् विवाह के अधीन है॥ २८॥

(३१६) प्रश्न—पुरुष के उपनयन-संस्कार का अष्टम वर्ष से आरम्भ होकर द्वादश वर्ष तक समय रहता है। स्त्रियों का उपनयन-संस्कार है नहीं, किन्तु उपनयन-संस्कार के स्थान में विवाह-संस्कार है। इस कारण स्त्रियों के विवाह का समय पुरुषों के उपनयन के होने से मिलता-जुलता रक्खा है और यही शास्त्रों का अभिप्राय भी है। —पृ० ३३८, पं० २

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा ग़लत है कि स्त्री का यज्ञोपवीत नहीं है, क्योंकि वेद कहता है कि '**भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता**' इस मन्त्र में स्त्री को यज्ञोपवीत की आज्ञा है (देखो नं० २९८)। जब स्त्री को उपाध्याया, आचार्या तथा ऋषि बनने और यज्ञ करने-कराने का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं है? अत: आपकी इस प्रतिज्ञा के खण्डन से आपके सारे ताने-बाने का खण्डन हो गया। यद्यपि आपका सम्पूर्ण लेख वेदविरुद्ध है तथापि आपके लेखानुसार भी कन्या के विवाह का समय ५ से २४ वर्ष तक सिद्ध हो जाता है। इससे आपकी दोनों मर्यादाएँ कि 'ऋतु के पीछे शादी करनेवाला नारकी, ब्रह्महत्यारा और गर्भघातक होता है' और 'आठ तथा बारह वर्ष से पूर्व विवाह करनेवाला गृहस्थ में दु:ख पाता है' खण्डित हो जाती हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत का समय ५ से २४ वर्ष तक है, जैसे—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥
आषोडषाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात्, क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥

—मनु० २।३७-३८

भाषार्थ—ब्रह्मतेज की कामनावाले ब्राह्मण का पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो। बल की कामनावाले क्षत्रिय का छठे और धन की कामनावाले वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो॥ ३७॥ सोलह वर्ष तक ब्राह्मण की सावित्री अर्थात् यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता। क्षत्रिय का बाईस वर्ष तथा वैश्य का चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता॥ ३८॥

इससे स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत ५ वर्ष से २४ वर्ष तक किया जा सकता है, अत: आपके मत में कन्या का विवाह भी पाँच वर्ष से चौबीस की आयु तक किया जा सकता है। चूँकि वेद कन्या का विवाह युवावस्था में करने की आज्ञा देता है और युवावस्था सोलह से पूर्व कन्या की होती नहीं, अत: सोलह से कम आयु में कन्या का विवाह वेदविरुद्ध होने से निषिद्ध तथा १६ तथा १६ वर्ष से २४ तक वेदानुकूल होने से ठीक है। वाह! वाह!! कैसी बढ़िया बात हुई—

'आप अपने जाल में सय्याद आ गया'।

(३१७) प्रश्न—शास्त्रों ने यह काल विवाहकाल नियत किया है। यह सहवासकाल नहीं। सहवासकाल स्त्री की सोलह वर्ष की अवस्था से पाया जाता है। —पृ० ३३८, पं० ७

उत्तर—अजी महाराज! जिनका नाम आपने शास्त्र मान रखा है उनकी तो चुप ही भली है। आपके शास्त्रों में तो इसी अवस्था में सन्तानोत्पत्ति होने की भविष्यवाणी विद्यमान है। तनिक देखिए—

सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च स्त्रियो गर्भधरा नृप॥ ६०॥
दशद्वादशवर्षाणां पुंसा पुत्रः प्रजायते॥ ६१॥ —महा० वन० अ० १८८
पञ्चमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते॥ ४९॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा॥ ५०॥ —महा० वन० अ० १९०

भाषार्थ—सात तथा आठ वर्ष की स्त्रियाँ गर्भधारण करनेवाली होंगी॥ ६०॥ दश तथा बारह वर्ष के पुरुषों के पुत्र पैदा होंगे॥ ६१॥ पाँचवें या छठे वर्ष में कन्या प्रसूता बनेगी॥ ४९॥ सात वा आठ वर्ष के पुरुष औलाद पैदा करेंगे॥ ५०॥

यह तो है आपके शास्त्रों की अवस्था, जिनकी कोई एक सम्मति ही नहीं है, अतः इनकी बात तो रहने दीजिए। आपने विवाहकाल में तथा सहवासकाल में जो अन्तर रक्खा है, इसमें कोई प्रमाण नहीं दिया। क्या कोई शास्त्र विवाहकाल और सहवासकाल में आठ वर्ष वा चार वर्ष का अन्तर मानता है? यदि कोई प्रमाण हो तो पेश करो वरना आपके यहाँ तो विवाह-पद्धतियों के साथ स्थान-स्थान में चतुर्थीकर्म की विधि दी है, जिसके अर्थ हैं चौथी रात्रि में गर्भाधान करना—

अथातश्चतुर्थीकर्म॥ १॥

'अथ' अनन्तरम्, **'अतः'** इत आरभ्य **'चतुर्थीकर्म'** विवाहरात्रितः चतुर्थ्यातिथौ करणीयम् वच्मीति शेषः॥ १॥ (सामश्रमी)

भाषा—अब चतुर्थी कर्म को, जो विवाह की रात से चतुर्थी तिथि को होता है, कहता हूँ॥ १॥

ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् सम्भव इत्येके। यदर्त्तुमती भवत्युपरतशोणिता तदा सम्भवकालः॥ ७, ८॥

—गोभिलगृह्यसूत्र प्र० २ खं० ५ सू० १, ७, ८

भाषार्थ—विवाह-रात्रि से तीन रात्रि ब्रह्मचर्य में व्यतीत कर चौथी रात्रि में स्त्री-प्रसंग करे, यह कई-एक आचार्यों का मत है।

गोभिल के मत से नवोढा पत्नी पति के घर पर आकर पुनः ऋतुमती होने पर जिस समय उसका शोणितवेग कम होगा वही पति के घर पर प्रकाशित आद्य ऋतु प्रथम संगमकाल होगा॥ ७,८॥

तामुदुह्य यथर्तुप्रवेशनम्॥ ७॥

एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण तां वधूमुदुह्य विवाहयित्वा विवाहकर्मणा भार्यात्वं सम्पाद्य यथर्तुप्रवेशनमृतुकालमृतुकालं प्रवेशनमभिगमनं कुर्यादिति शेषः॥

—पारस्करगृह्यसूत्र, काण्ड १, कण्डिका ११ हरिहरभाष्य

भाषार्थ—इस प्रकार से विवाह करके प्रत्येक ऋतुकाल में उसके साथ समागम करे॥ ७॥

अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम्॥ ७॥ —आश्वलायन० १।८।११

भाषार्थ—विवाह के तीन रात या बारह रात्रि के पीछे समागम करे॥ ११॥

गृह्यसूत्रेषु तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीयाताम्॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् सम्भवः। तथा च स्मृतयः—

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु। एकत्वमागता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके॥

—निरुक्त पं० शिवदत्त शर्म्मा महामहोपाध्यायकृत

'कुहस्विद् दोषा' इत्यादि पर टिप्पणी—पृ० २२२-२३

भाषार्थ—गृह्यसूत्रों में आता है कि स्त्री और पुरुष दोनों विवाह से लेकर तीन रात खारा तथा नमकीन न खाते हुए ब्रह्मचारी रहकर इकट्ठे पृथिवी पर सोएँ। तीन रात पीछे समागम करें और स्मृतियाँ कहती हैं कि विवाह से निवृत्त होने के पीछे चौथे दिन रात्रि को पति के साथ पिण्ड, गोत्र तथा सूतक में एक हो जाती हैं।

यह हमने चतुर्थीकर्म का नियम दिखलाया कि विवाह से चौथी रात्रि में गर्भाधान का विधान गृह्यसूत्रों में विद्यमान है। इसी विधि के अनुसार शिवजी ने हिमाचल के घर में ही पार्वती का

गर्भाधानसंस्कार किया, जैसाकि—

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थीकर्म शुद्धितः। बभूव विधिवद्येन विना खण्डित एव सः॥ २२॥

—शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ५३

भाषार्थ—चतुर्थी कर्म की शुद्धि से चौथा दिन आने पर बिना किसी नियम के भंग किये विधिपूर्वक शिव ने पार्वती से समागम किया॥ २॥

पाँच पाण्डवों के द्रौपदी के साथ पाँच दिन में फेरे हुए। प्रत्येक रात्रि में उसके साथ प्रत्येक का समागम हुआ, जैसे—

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम्।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्द्धनाः॥ १३॥
इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं जगाद देवर्षिरतीतमानुषम्।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥ १४॥

—महा० आदि० अ० १९४[1]

भावार्थ—इसी क्रम से पाण्डु-पुत्रों ने उत्तम स्त्री द्रौपदी के हाथ को एक-एक दिन में ग्रहण किया। वे पाण्डव उत्तम रूप के धारण करनेवाले महारथी तथा कौरवों के वंश की वृद्धि करनेवाले थे॥ १३॥

उसमें एक अद्भुत बात अत्युत्तम रूप से देवर्षि ने कही जो मनुष्यों के ज्ञान से अतीत थी कि वह महानुभावा युवती, सुन्दरी, द्रौपदी प्रत्येक दिन गुजरने पर कन्या ही हो जाती थी॥ १४॥

हम पहले लिख आये हैं कि कन्या का अर्थ अक्षतयोनि है। ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट सिद्ध है कि जब द्रौपदी के पाँच दिन में पाँचों पाण्डवों से फेरे हुए तो प्रतिदिन जिसके साथ फेरे होते थे वही रात्रि में द्रौपदी के साथ समागम करके उसके कन्यात्व को नष्ट कर देता था। तभी तो महाभारतकार को लिखना पड़ा कि वह प्रत्येक दिन में कन्या ही हो जाती थी। यदि उसका कन्यात्व समागम से खण्डित न किया जाता तो यह लिखने की क्या आवश्यकता थी कि वह प्रतिदिन कन्या ही हो जाती थी?

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से यह सिद्ध है कि चतुर्थी कर्म, अर्थात् गर्भाधान विवाह का आवश्यक अङ्ग है, अतः ऐसे समय में विवाह होना चाहिए जब कन्या गर्भाधान के योग्य हो और वह समय १६ वर्ष है, अतः सिद्ध हुआ कि कन्या का विवाह-कम-से-कम १६ वर्ष की आयु में होना चाहिए, अतः आपका विवाहकाल तथा सहवासकाल में ४ वा ८ वर्ष का अन्तर वेद तथा गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थों के सर्वथा विरुद्ध है।

चतुर्थीकर्म के अतिरिक्त विवाह के साथ ही गर्भाधान

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि ब्रह्माजी जब राधा और कृष्ण की शादी करवाकर गये तभी कृष्ण ने राधा का गर्भाधन-संस्कार किया, जैसे—

गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्रचक्षुषा॥ १३७॥
सा ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद व्रीडया मुखम्॥ १३८॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम्॥ १४८॥
शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित्॥ १५२॥ —ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० १५

१. गीताप्रेस-संस्करण में ये श्लोक अध्याय १९७ में हैं। —सं०

भाषार्थ—ब्रह्मा के चले जाने पर उस राधा देवी ने टेढ़ी आँख से॥ १३७॥ कृष्ण के मुख को देखा तथा लज्जा से मुख छिपा लिया॥ १३८॥ कृष्ण ने उसको हाथ से पकड़कर बग़ल में बिठा लिया। और उसकी साड़ी ढीली कर दी तथा उसे चार प्रकार से चूमा॥ १४८॥ कामशास्त्र के जाननेवाले कृष्ण ने आठ प्रकार से राधा के साथ शृङ्गार किया॥ १५२॥

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करते ही गर्भाधान किया, जिससे भरत पैदा हुआ, जैसेकि—

जग्राह विधिवत् पाणावुवास च तया सह।
विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः॥ २०॥ —महा० आदि० अ० ७३

भाषार्थ—दुष्यन्त ने शकुन्तला का विधिपूर्वक हाथ ग्रहण किया और वहाँ पर कण्व के आश्रम में ही उसके साथ सोया और उसको विश्वास दिलाकर वह चला और बार-बार बोला॥ २०॥

जब पराशर ने सत्यवती से गान्धर्व विवाह किया तो किश्ती में उसी समय गर्भाधान किया जिससे व्यासजी पैदा हुए, जैसाकि—

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता। जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा॥ ७७॥
—महा० आदि० अ० ६३ [गीताप्रेस-संस्करण में ६३।८१ पर उपलब्ध। —सं०]

भाषार्थ—तब वर प्राप्त करके प्रीति से स्त्री के भावों से भूषित सत्यवती उस अद्भुत कर्मवाले पराशर से संसर्ग को प्राप्त हुई॥ ७७॥

जब सूर्य ने कुन्ती से गान्धर्व विवाह किया तो तत्काल की कुन्ती में गर्भाधान किया, जिससे कर्ण पैदा हुआ। जैसाकि—

एवमुक्त्वा स भगवान् कुन्तिराजसुतां तदा॥ १७॥
प्रकाशकर्त्ता तपनः सम्बभूव तया सह॥ १८॥ —महा० आदि० अ० ११०

भाषार्थ—यह कहकर प्रकाश करनेवाले भगवान् सूर्य ने कुन्ती के साथ समागम किया॥ १७-१८॥

इससे सिद्ध है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है, अतः कन्या का विवाह ऐसी अवस्था में होना चाहिए जब वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य हो। आठ वा बारह वर्ष की कन्या सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं होती, अतः उसका विवाह व्यर्थ है।

(३१८) प्रश्न—इतिहास में १६ वर्ष से पहले भी गर्भस्थिति हुई है, ऐसा भी लेख मिलता है। इस विषय में अभिमन्यु, उत्तरा प्रभृति के अनेक उदाहरण हैं। फिर हम किस तरह से मान लें कि सन्तान कमज़ोर होती है? परीक्षितादि थोड़ी अवस्था के रहने पर भी जो गर्भ में आये वह कमज़ोर नहीं थे। —पृ० ३३८, पं० ९

उत्तर—आपको यह मालूम होना चाहिए कि इतिहास वहीं तक प्रमाण होता है जहाँ तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुकूल हो। जहाँ इतिहास वेद तथा वेदानुकूल स्मृति के विरुद्ध होगा वहाँ वह धर्म के विषय में प्रमाण नहीं हो सकता। यदि युधिष्ठिर ने जुआ खेला तो युधिष्ठिर ने उसका फल पाया, किन्तु वेदविरुद्ध होने के कारण वह धर्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार चूँकि वेद की आज्ञा है कि युवा कन्या नवयुवक से विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे, अतः यदि इतिहास में कोई ऐसे प्रमाण भी हों कि जिनसे यह सिद्ध हो सके कि किन्हीं लोगों ने छोटी अवस्था में विवाह करके गर्भाधान-संस्कार किया, तो भी वे वेद के विरुद्ध होने से धर्म में प्रमाण नहीं माने जा सकते।

अब रही बात अभिमन्यु की तथा उत्तराकुमारी की। आपने इस बारे में कोई प्रमाण नहीं दिया

कि अभिमन्यु तथा उत्तरा कुमारी ने छोटी अवस्था में सोलह वर्ष से पहले ही विवाह या गर्भस्थिति की। यद्यपि हमें अभिमन्यु की आयु पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आप स्वयं पुरुष विवाह की आयु कम-से-कम २४ वर्ष मानते हैं (पृ० ३११ से ३१३) तथापि हम आपको बतलाना चाहते हैं कि जब पाण्डवों को वनवास हुआ तो जंगल में भीमसेन ने युधिष्ठिर के सामने प्रस्ताव पेश किया कि दुर्योधन ने हमारे साथ मक्कारी से काम लिया है, अतः हमें इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए और अभी दुर्योधन से युद्ध करके उससे अपना राज्य ले-लेना चाहिए। आप जो कहते हैं कि प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म है तो जहाँ पर प्रतिज्ञा धर्मानुकूल हो उसका पालन करना धर्म है। आपकी यह ज़िद कि आवश्यक रूप से प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए, मैं आपकी इस सम्मति का अनुमोदन नहीं करता और न ही नकुल, सहदेव, अर्जुन तथा अभिमन्यु अनुमोदन करते हैं। जैसाकि—

नैव धर्मेण तद्राज्यं नार्जवेन न चौजसा। अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै॥ ३॥
भवतः प्रियमित्येवं महद् व्यसनमीदृशम्। धर्मकामे प्रतीतस्य प्रतिपन्नाः स्म भारत॥ ८॥
यां न कृष्णो न बीभत्सुर्नाभिमन्युर्न सृञ्जयाः। न चाहमभिनन्दामि न च माद्रीसुताविमौ॥ १२॥
भवान् धर्मो धर्म इति सततं व्रतकर्षितः। कश्चिद्राजन्न निर्वेदादापन्नः क्लीबजीविकाम्॥ १३॥
कर्षणार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा। व्यसनं नाम तद्राजन् न स धर्मः कुधर्मस्तत्॥ २१॥
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान्। धार्तराष्ट्रबलं पार्थ मया पार्थेन नाशय॥ ५२॥

—महा० वन० अ० ३३

भाषार्थ—दुर्योधन ने न धर्म से राज्य लिया है और न नम्रता और बहादुरी से लिया है, अपितु द्यूत की धोखेबाज़ी से छीन लिया है॥ ३॥ यह इस प्रकार का बड़ा भारी व्यसन आपको प्यारा है। हे युधिष्ठिर! धर्मकार्य में हम आपके पीछे लगे हुए हैं॥ ८॥ आपकी इस अवस्था का न कृष्ण, न अर्जुन, न अभिमन्यु, न सृञ्जय, न नकुल और सहदेव तथा न मैं अनुमोदन करता हूँ॥ १२॥ आप धर्म-धर्म इस व्रत से खिंचे हुए हे राजन्! किसी प्रकार से दुःखपूर्वक नपुंसकों की जीविका को प्राप्त हो रहे हैं॥ १३॥ जो धर्म मित्रों तथा अपने को दुःख देने के लिए हो, हे राजन्! उसका नाम व्यसन है, वह धर्म नहीं कुधर्म है॥ २१॥ आप धर्म को प्राप्त हों। प्राप्त हुए शत्रुओं को मारें। हे पार्थ! दुर्योधन की सेना का आप मेरे तथा अर्जुन द्वारा नाश करें॥ ५२॥

यह वनवास का प्रथम वर्ष है। इस समय कृष्ण, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव के साथ-साथ अभिमन्यु की राय को भी वज़नदार माना जाता था? इससे पता लगा कि उस समय अभिमन्यु सम्मति देने के योग बालिग़ अर्थात् कम-से-कम १८ वर्ष के लगभग था, वरना उसकी सम्मति को क्यों वज़नदार समझा जाता? इसके १२ वर्ष पीछे अभिमन्यु की शादी होती है। इससे सिद्ध है कि शादी के समय अभिमन्यु कम-से-कम ३० वर्ष के लगभग आयु में था।

अब रही उत्तराकुमारी की बात, सो इस प्रकार से पता लगेगा कि उत्तराकुमारी के विवाह-प्रस्ताव के समय जब अभिमन्यु की आयु ३० के लगभग थी तो अर्जुन की आयु ५० वर्ष व ५५ से कम क्या होगी? तो जिस उत्तराकुमारी की शादी के लिए ५० वर्ष की आयुवाले अर्जुन से प्रार्थना की जाती है वह अठारह-बीस वर्ष से कम नहीं हो सकती। यह हमारा अनुमान ही नहीं है अपितु जब अर्जुन से उत्तराकुमारी के विवाह का प्रस्ताव किया गया तब अर्जुन ने जहाँ यह कहा कि मै इसका आचार्य तथा पिता के समान हूँ, वहाँ यह भी कहा कि जवान अवस्था में उत्तरा मेरे पास एक वर्ष एकान्त में रही है। यदि मैं शादी कर लूँ तो लोग हमारे पूर्व-एकान्तवास में भी सन्देह करेंगे और आपकी बदनामी होगी। इसलिए उसे मैं पुत्रवधू स्वीकार करता हूँ—

वयःस्थया तया राजन् सह संवत्सरोषितः। अतिशंका भवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो॥४॥

—महा० विराट० अ० ७२

भावार्थ—हे राजन्! उस आयु-आरूढ़=वयस्क उत्तरा के साथ मैं एक वर्ष रहा हूँ। ऐसा करने पर आपको तथा संसार को अति शंका होगी, अर्थात् यदि मैंने इससे शादी कर ली तो लोग कहेंगे कि इनकी तो पहले से ही शादी हो रही थी॥४॥ जब जवान लड़की एकान्त में एक वर्ष तक नाचना-गाना सीख रही तो क्या ये दोनों आचरण में पवित्र रहे होंगे।?

इससे अति स्पष्ट है कि उस समय उत्तरा वयःस्थ अर्थात् यौवन आरूढ़ थी।

इस सारे लेख से सिद्ध हुआ कि अभिमन्यु तथा उत्तरा दोनों ही विवाह के समय युवावस्था में थे और उन्होंने युवावस्था में ही गर्भाधान-संस्कार किया, फिर उनकी सन्तान परीक्षित निर्बल कैसे हो सकता था? हाँ, अत्यन्त शोकातुरा होने के कारण परीक्षित उत्तरा के समय से पहले पैदा हुआ, अतः वह जन्म-समय मृतवत् पैदा हुआ जो कृष्ण के उपाय से होश में आया। आपका ऐतिहासिक प्रमाण भी आपकी पुष्टि नहीं करता, अपितु हमारा अनुमोदन करता है।

(३१९) प्रश्न—इससे भिन्न शास्त्रदृष्टि से सहवास में कन्या की उम्र सोलह वर्ष की ली है और पुरुष की पच्चीस वर्ष के ऊपर, फिर कमज़ोर सन्तान का प्रश्न ही नहीं रहता।

—पृ० ३३८, पं० १३

उत्तर—'कुफ्र टूटा ख़ुदा ख़ुदा करके' आखिर आपको यह बात माननी ही पड़ी कि 'शास्त्र की दृष्टि में कन्या की आयु १६ वर्ष तथा वर की आयु पच्चीस वर्ष से ऊपर गर्भाधान के लिए ली गई है' अब कृपया आप यह बतलावें कि गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह करने का क्या प्रयोजन तथा लाभ है? आपके लेखानुसार यदि २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तथा ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तो पहले को सहवास के लिए ८ वर्ष तथा दूसरे को ४ वर्ष का इन्तज़ार करना होगा। इतने वर्ष पूर्व विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने में कारण तो न बन जाएगा? भला! इतने वर्ष पहले कन्या की आयु को खतरे में डालने से क्या लाभ? हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि विवाह की चौथी रात्रि में गर्भाधान की शास्त्र की आज्ञा है और आप शादी के पीछे ८ वर्ष तथा ४ वर्ष तक गर्भाधान को रोकते हैं, अतः आपकी कल्पना शास्त्रविरुद्ध है।

फिर आपके लेखानुसार रजस्वला होने से पहले कन्या का विवाह करके माता-पितादि तो पाप से बच जाते हैं, किन्तु १२ वर्ष से १६ वर्ष तक गर्भाधान की मनाही के कारण वर और कन्या दोनों ही घोर पाप के भागी बनते हैं, जैसे—

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति। सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः॥१४॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥१५॥

—[मनसुखरायमोर-संस्करण, कलकत्ता में श्लोकसंख्या १२-१३ है। सं०] पराशरस्मृति अ० ४

भाषार्थ—ऋतु से स्नान की हुई जो स्त्री पति के पास नहीं जाती वह मरकर नरक में जाती है और बार-बार विधवा होती है॥१४॥ ऋतु से स्नान की हुई स्त्री के पास जो पुरुष नहीं जाता वह घोर भ्रूणहत्या के पाप में संयुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥२५॥

इन सम्पूर्ण दोषों के कारण गर्भाधान की योग्यता से पूर्व, अर्थात् कन्या का १६ वर्ष तथा वर का २५ वर्ष से पूर्व विवाह वेद के विरुद्ध महा पापकारक है, अतः लड़के-लड़की का विवाह तथा सहवास दोनों ही युवावस्था में होना वेदानुकूल धर्म है।

(३२०) प्रश्न—विवाह के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य तथा द्विरागमन की पद्धति को लोक में प्रचलित रखा जावे तो फिर यह प्रश्न ही उड़ जाता है। —पृ० ३३८, पं० १८

उत्तर—विवाह होने के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य यही है कि वह ऋतुगामी बने, जैसेकि—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥ ४५ ॥

ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥ —मनु० अ० ३

भाषार्थ—ऋतुकाल के अनुसार स्त्री-गमन करनेवाला बने और सदा अपनी स्त्री में ही प्रसन्न रहे, परस्त्री-गमन न करे ॥ ४५ ॥ वह जिस किसी आश्रम में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी ही होता है ॥ ५० ॥

और यदि विवाह कराने के पीछे ब्रह्मचारी रहने का आपका यह अभिप्राय हो कि वह ८ वर्ष तक या ४ वर्ष तक स्त्रीगमन ही न करे तो यह सर्वथा ग़लत है। प्रथम तो ऋतु के अनुसार गमन न करने में स्त्री तथा पुरुष दोनों को पाप होता है (देखो नं० ३१९)। दूसरे, बिना गर्भाधान के विवाह का और प्रयोजन भी क्या है? देखिए, मनुजी क्या कहते हैं—

प्रजनार्थं स्त्रियाः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः। तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥

—मनु० ९।९६

यस्माद् गर्भग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टा गर्भाधानार्थं च मनुष्यास्तस्माद् गर्भोत्पादनमिवानयोः अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः, 'क्षौमे वसानावग्नीनादधीयाताम्' इत्यादिर्वेदेऽभिहितः। तस्माद् भार्यां बिभृयादिति पूर्वोक्तस्य शेषः। —कुल्लूक

भाषार्थ—क्योंकि गर्भग्रहण के लिए ईश्वर ने स्त्रियाँ बनाई हैं तथा गर्भधारण कराने को पुरुष बनाये हैं, इसलिए सन्तान पैदा करना ही इनका अग्नि-आधानादि भी धर्मपत्नी के साथ साधारण **'क्षौम'** इत्यादि से वेद में कहा है। इस प्रयोजन से पत्नी को धारण करे, यह पूर्वोक्त श्लोक का अभिप्राय है ॥ ९६ ॥

जब विवाह का मुख्य प्रयोजन ही गर्भाधान-संस्कार है तो फिर गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह व्यर्थ है, अतः स्त्री-पुरुष को विवाह तभी करना चाहिए जब वे गर्भाधान करने के योग्य हो जावें, अर्थात् कन्या कम-से-कम १६ वर्ष की तथा पुरुष कम-से-कम २५ वर्ष का होने पर शादी करे और विवाह करते ही गर्भाधान से सन्तानोत्पत्ति का काम करें। यही वेद-शास्त्रों की आज्ञा है।

हाँ, यह तो सप्रमाण बतलाया होता है कि यह द्विरागमन की पद्धति कौन-से वेद, धर्मशास्त्र वा गृह्यसूत्रों में वर्णन की गई है? हमें तो यह विधि कहीं वेद, स्मृति तथा इतिहास में मिली नहीं और न ही इसपर कभी आचरण होने का वर्णन है और न ही यह युक्तियुक्त है। हमें तो यह बचपन की शादी का बच्चा प्रतीत होता है, जो वेदविरोधी लोगों की कल्पनामात्र है।

(१) विवाह-समय राम तथा सीता की आयु—

अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ ३ ॥

अतिथी परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥ ८ ॥ —वाल्मी० बाल० स० ४८

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः ॥ ७ ॥ —वाल्मी० बाल० स० ७२

पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता। चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥

—वाल्मी० अयो० स० ११८।३४

मम भर्ता महातेजा वयसः पञ्चविंशकः ॥ १० ॥

अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ॥ ११ ॥ —वाल्मी० अरण्य० स० ४७

सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित्। —वाल्मी० अयो० स० १।२०

सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित्। —वाल्मी० अयो० स० २।३४

भाषार्थ—ये राम तथा लक्ष्मण अश्विनीकुमारों के सदृश सुन्दर तथा नौजवान हैं ॥ ३ ॥ दशरथ के पुत्र हमारे परम अतिथि प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥

ये दशरथ के पुत्र हैं जो रूप और जवानी से भरपूर हैं॥७॥

सीता ने अनुसूया से कहा कि मेरा पिता मेरी आयु को पति के संयोग के योग्य देखकर ऐसे चिन्ता में पड़ गया, जैसे निर्धन धन के नाश से चिन्ता में पड़ जाता है॥३४॥—'मेरा तेजस्वी पति विवाहसमय २५ वर्ष की आयु का था और मेरे जन्म को अठारह वर्ष बीते थे'—यह सीता ने रावण से कहा॥१०-११॥ राम सर्वविद्याव्रतस्नातक थे तथा अंगोंसहित वेद के जाननेवाले थे॥२०॥ राम अच्छे प्रकार से विद्याव्रतस्नातक थे तथा अंगोंसहित वेद जानते थे॥३४॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि सीता तथा राम का विवाह युवावस्था में हुआ और यहाँ पर द्विरागमन विधि का ज़िक्र तक नहीं है।

(२) अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को स्वयं आज्ञा दी—

तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देवरूपिणीम्।
उवाच राजा सम्मन्त्र्य स्मृत्यर्थं सह मन्त्रिभिः॥१५॥ —भविष्य० उत्तर० अ० १०२
पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद् वृणोति माम्।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः॥३२॥
इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे त्वर ॥३६॥ —महा० वन० अ० २९३
तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने। सत्यवानुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः॥१०॥
—महा० वन० अ० २९३

भाषार्थ—अश्वपति उस अपनी पुत्री सावित्री को नौजवान, स्वच्छ, सुन्दरी देखकर अपने मन्त्रियों से परामर्श करके बोला॥१५॥ हे पुत्री! तेरे विवाह का समय है और कोई वर मुझे मिला नहीं, इसलिए तू अपने गुणों के सदृश स्वयं पति स्वीकार कर ले॥३१॥ मेरा यह वचन सुनकर पति की खोज में शीघ्रता कर॥३५॥ पति को खोजकर सावित्री ने कहा कि द्युमत्सेन का पुत्र शहर में पैदा हुआ और वन में जवान हुआ सत्यवान् मेरे अनुकूल पति है, मैंने मन से इन्हें स्वीकार कर लिया॥१०॥

इससे सिद्ध है कि सावित्री-सत्यवान् का विवाह युवावस्था में हुआ। यहाँ द्विरामगन का नाम तक नहीं।

(३) द्रौपदी तथा अर्जुन का स्वयंवर—

विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य।
आदाय शुक्लाम्बरमाल्यदाम जगाम कुन्तीसुतमुत्स्मयन्ती॥२८॥
स तामुपादाय विजित्य रंगे द्विजातिभिस्तैरभिपूज्यमानः।
रङ्गान्निराक्रामदचिन्त्यकर्मा पत्न्या तया चाप्यनुगम्यमानः॥२९॥
—महा० आदि० अ० १९०[1]

भाषार्थ—द्रौपदी लक्ष्य बींधा हुआ और अर्जुन को इन्द्र के समान देखकर श्वेत पुष्पों की माला लेकर मुस्कराती हुई अर्जुन के पास चली गई॥२८॥

मैदान में जीत उसे साथ ले, ब्राह्मणों से पूजित उस पत्नी से अनुगम्यमान शूरवीर अर्जुन मैदान से बाहर निकल गया॥२९॥

यहाँ पर अर्जुन तथा द्रौपदी का युवावस्था में विवाह हुआ है और विवाह के पश्चात् द्विरागमन का महाभारत में ज़िक्र तक नहीं है।

---

१. गीताप्रेस-संस्करण में ये श्लोक १८७वें अध्याय में २७ तथा २८ हैं।

(४) नल-दमयन्ती का स्वयंवर—

दमयन्ती ततो रङ्गं प्रविवेश शुभानना।
मुष्णन्ती प्रभया राज्ञां चक्षूंषि च मनांसि च॥ ८॥
नैषधं वरयामास भैमी धर्मेण पाण्डव॥ २६॥
स्कन्धदेशेऽसृजत्तस्य स्रजं परमशोभनाम्।
वरयामास चैवैनं पतित्वे वरवर्णिनी॥ २८॥ —महा०वन०अ० ५७

भाषार्थ—तब सुन्दरी दमयन्ती मैदान में प्रविष्ट हुई। अपनी कान्ति से वह राजाओं के नेत्रों तथा मनों को हर रही थी॥ ८॥ हे पाण्डव! भीम की पुत्री दमयन्ती ने धर्म से निषध के राजा नल को वर लिया॥ २६॥ और अति सुन्दर माला उसके कन्धे पर डाल दी तथा उस वर की कामना करनेवाली ने उसको पतिभाव से वर लिया॥ २८॥

यहाँ नल और दमयन्ती का युवावस्था में विवाह हुआ और यहाँ पर द्विरागमन का क़तई वर्णन नहीं है।

(५) संज्ञा स्वयंवर—

षोडशाब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पिता सुखी। विवाहार्थी सुरान् सर्वानाह्वयन्मेरुमूर्द्धनि॥ ४॥
—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४। अ० १८

भाषार्थ—संज्ञा के पिता ने संज्ञा को १६ वर्ष की आयु होने पर सुखपूर्वक उसके विवाह के लिए सब देवताओं को मेरु पर्वत की चोटी पर बुलाया॥ ४॥

यहाँ संज्ञा का विवाह युवावस्था में हुआ, यहाँ पर द्विरागमन का ज़िक्र भी नहीं है।

इतिहास में इस प्रकार की सैकड़ों घटनाएँ विद्यमान हैं, जिनमें कन्या तथा वर ने युवावस्था में विवाह करके सन्तानोत्पन्न की। वहाँ पर बालविवाह तथा द्विरागमन की गन्ध भी नहीं है।

(३२१) प्रश्न—**'ऊनषोडशवर्षायाम्'** इत्यादि सुश्रुत के इन श्लोकों के लिए वेदानुकूलता का झगड़ा क्यों अड़ा दिया गया? वेद में किसी मन्त्र में भी यह नहीं लिखा कि गर्भाधान के समय पुरुष की आयु २५ वर्ष और स्त्री की आयु १६ वर्ष की हो। —पृ० ३४१, पं० ५

उत्तर—**'ब्रह्मचर्य्येण कन्या'**, **'तमस्मेरा'** इत्यादि अनेक वेदमन्त्र हैं जोकि स्त्री-पुरुष को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देते हैं, और विवाह तथा गर्भाधानकाल एक ही बात है। चूँकि उपर्युक्त श्लोक इन मन्त्रों की शिक्षा के अनुकूल ही युवावस्था में गर्भाधान की आज्ञा देते हैं, अतः सुश्रुत के ये श्लोक वेदानुकूल होने से ग्राह्य हैं। धर्म के कामों में वेदानुकूलता की शर्त किसी सूरत में भी दृष्टि से ओझल नहीं की जा सकती।

(३२२) प्रश्न—**'ऊनषोडशवर्षायाम्'** इस श्लोक की जगह अनेक पुस्तकों में **'ऊनद्वादशवर्षायाम्'** पाठ है, उस पाठ को स्वामीजी ने क्यों नहीं लिया? —पृ० ३४१, पं० १९

उत्तर—यद्यपि आपने सुश्रुत की किसी ऐसी पुस्तक का पूरा पता नहीं लिखा कि फ़लाँ प्रेस में फ़लाँ मनुष्य ने जो सुश्रुत का पुस्तक छापा है उसमें **'ऊनद्वादशवर्षायाम्'** पाठ है, तथापि यदि कहीं ऐसा पाठ हो भी, तो भी वह वेदविरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है, क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और कन्या को १२ वर्ष की आयु में कोई भी शास्त्र युवती नहीं मानता।

(३२३) प्रश्न—इन श्लोकों में विवाहकाल कब कहा है, इनमें तो गर्भाधानकाल है।
—पृ० ३४१, पं० २३

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि विवाह का प्रयोजन ही गर्भाधान है, इसीलिए विवाह के साथ ही शास्त्रों ने चतुर्थी कर्म, अर्थात् गर्भाधान की आज्ञा दी है और गर्भाधान के बिना विवाह निष्प्रयोजन है, अतः इन श्लोकों में गर्भाधानसमय का वर्णन ही विवाहसमय का वर्णन मानना पड़ेगा।

(३२४) प्रश्न—अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षीं पत्नीमावहेत्। [सुश्रुत] 'विद्यासम्पन्न पुरुष को जिसकी अवस्था २५ वर्ष की हो उसको बारह वर्षवाली कन्या विवाहे' यहाँ पर स्वामीजी ने सुश्रुत के विवाहकाल को छिपाया और गर्भाधानकाल को विवाहकाल बनाया।

—पृ० ३४२, पं० ३

उत्तर—आपने उपर्युक्त प्रमाण का सुश्रुत का ठिकाना नहीं लिखा। यद्यपि इससे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त पाठ आपका कपोलकल्पित है, तथापि यह पाठ हो भी, तो भी वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में शादी की आज्ञा देता है और १२ वर्ष की कन्या का नाम युवती है नहीं। दूसरे, आपकी प्रतिज्ञा **'त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्'** (नं० ३११) कि '३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह करे' के विरुद्ध तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध होने से आपके मत में भी प्रमाण के योग्य नहीं है।

(३२५) प्रश्न—'एकक्षणा भवेद् गौरी' ठीक ही है। वेद की मिट्टी कूटना स्वामीजी और आर्यसमाजियों का परम धर्म है। —पृ० ३४२, पं० १४

उत्तर—आर्यसमाज और स्वामीजी वेदों को धर्मपुस्तक मानते हैं और उनका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना तथा तदनुकूल आचरण करना परम धर्म मानते हैं। हाँ, वेदविरुद्ध शीघ्रबोधादि ग्रन्थों की मिट्टी कूटना हमारा परम कर्त्तव्य है। चूँकि **'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'** यह वेदविरुद्ध ग्रन्थों की कल्पना संसार के लिए हानिकारक थी, अतः स्वामीजी ने इसका युक्तियुक्त खण्डन करके वेदमत का प्रतिपादन कर दिया।

(३२६) प्रश्न—'सोमो गौरी अधि श्रितः' [ऋग्वेद] सोम गौरी का उपभोग करता है। जिस समय कन्या की गौरी संज्ञा होती है उस समय कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है। —पृ० ३४२, पं० १८

उत्तर—कहिए महाराज! ऋग्वेद के मन्त्र का ठिकाना क्यों दर्ज नहीं किया? क्या यह भय था कि कहीं पोल न निकल जावे? अच्छा देखिए, यह पाठ ऋग्वेद मण्डल ८ सूक्त १२ मन्त्र ३ का एक भाग है। यहाँ पर न तो विवाह-प्रकरण है और न ही कन्या की यहाँ पर गौरी संज्ञा की गई है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्यविषय **'पवमानः सोमो देवता'** पवित्र करनेवाला सौम्यस्वभाव विद्वान् है और यहाँ पर गौरी नाम वेदवाणी का है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सौम्यस्वभाव विद्वान् वेदवाणी का आश्रय लेता है। इसका यही अर्थ आपके भाष्यकार सायणाचार्य करते हैं, जैसे—

सोमो गौरी अधि श्रितः। —ऋ० ९।१२।३

विपश्चित् विद्वान् सोमः गौरी अधि गौर्यामधि। अधीति सप्तम्यर्थानुवादः। माध्यमिकायां वाचि। 'गौरी गान्धर्वी' इति वाङ्नामसु पाठात्। श्रितः निवसति। —सायणा

भाषार्थ—सौम्य स्वभाव विद्वान् वाणी में आश्रय करता है॥ ३॥

कहिएगा महाराज! जब सोम गौरी नाम की कन्या से आपके विचार में भोग कर लेता है तो फिर उसका कन्यापन तो नाश हो जाता होगा। फिर विवाह की क्या आवश्यकता रह जाती है? शोक! शतशोक है आप लोगों की बुद्धि पर, जो पक्षपात में डूबे हुए वेदमन्त्रो का अनर्थ करके जनता को धोखा दे रहे हैं और गौरी, रोहिणी आदि कल्पित संज्ञाएँ कन्याओं की रखकर वेद के सिर मढ़ रहे हैं! परमात्मा आपको सुमति प्रदान करें।

(३२७) प्रश्न—'उत्कृष्टायाभिरूपाय' इस श्लोक में कन्या का विवाह कन्या के अधीन नहीं, किन्तु अन्य के अधीन लिखा गया है। इसी प्रकार **'काममामरणात्तिष्ठेत्'** इस श्लोक में भी अयोग्य पुरुष के साथ कन्या का विवाह न करना सिद्ध करता है कि कन्या का विवाह करना किसी अन्य के अधीन है। **'यस्मै दद्यात्'** मनु के इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि कन्या का

विवाह कन्या का पिता या भ्राता करे, यदि ये दोनों कन्या का विवाह न करें तब '**त्रीणि वर्षाणि**' यह श्लोक है। मनु का अभिप्राय यह है कि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक कन्या का विवाह उसके पिता या भाई आदि अवश्य कर दें। यदि वे न करें तो ऋतुकाल होने के पश्चात् तीन वर्ष तक कन्या प्रतीक्षा करे, पश्चात् किसी के साथ विवाह कर ले। —पृ० ३४३, पं० १

उत्तर—समस्त शास्त्रों का अभिप्राय यह है कि विवाह में मुख्य प्रयोजन वर तथा कन्या का है, अत: विवाह के बारे में मुख्य सम्मति वर और कन्या की ही होगी। हाँ, माँ-बाप, भाई आदि की सम्मति भी गौणरूप से मानी जावेगी। जहाँ पर वर, कन्या, माता, पिता, भाई आदि की सर्वसम्मति हो वहाँ तो कोई झगड़ा ही नहीं है। जहाँ पर कन्या का माता, पिता वा भाई से मतभेद हो वहाँ पर कन्या की सम्मति को मुख्य माना जाना चाहिए। माता, पिता, भाई आदि को उसमें रुकावट डालने का अधिकार नहीं है, अत: शास्त्रों में जहाँ-जहाँ यह वर्णन आता है कि वर वा कन्या का विवाह माता, पिता, भ्राता आदि के अधीन हो वहाँ पर शास्त्र का अभिप्राय सर्वसम्मति से होने का है। वहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि कन्या के विरोध करने पर भी माता, पिता, भाई आदि उसका विवाह कर सकते हैं और जहाँ-जहाँ कन्या को स्वयंवर से विवाह की आज्ञा है वहाँ-वहाँ शास्त्र का यह अभिप्राय है कि विवाह में मुख्य सम्मति कन्या की है और माता, पिता आदि भी सहमत हैं अथवा मतभेद होने पर कन्या की सम्मति ही मानी जावे माता-पिता आदि की नहीं। इसी बात को वेद ने '**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**' इस मन्त्र से वर्णन किया और इसी मन्त्र की व्याख्या करते हुए मनु धर्मशास्त्र ने ब्रह्मचर्यकाल नियत करने के लिए, और कन्या की युवावस्था बतलाने के लिए '**त्रीणि वर्षाणि**' इत्यादि श्लोक से बतला दिया कि रजस्वला होने से तीन वर्ष पीछे युवावस्था होती है। इसको अति स्पष्ट करने के लिए सुश्रुत ने '**ऊनषोडशवर्षायाम्**' इसके द्वारा नियम कर दिया कि १६ वर्ष से पूर्व कन्या तथा २५ वर्ष से पूर्व पुरुष विवाह तथा गर्भाधान न करें। इसकी विशेष पुष्टि महाभारत ने हेतु देकर कर दी कि—

त्रीणी वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती। चतुर्थे त्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत्॥ १५॥
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ। अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः॥ १६॥

—महा० अनुशासन० अ० ४४

भाषार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे, चौथा वर्ष प्राप्त होने पर स्वयंवर से पति प्राप्त करे॥ १५॥ उसकी सन्तान न मरेगी तथा उसकी रति भी क्षीण न होगी। इससे विपरीत करने पर परमात्मा से निन्दित होगी॥ १६॥

इस सिद्धान्त के अनुसार सीता, द्रौपदी, दमयन्ती तथा सावित्री आदि के स्वयंवर सर्वसम्मति से हुए; उनमें मुख्य सम्मति सीता, द्रौपदी, दमयन्ती तथा सावित्री की पति-चुनाव में मानी गई। माता, पिता, भाई आदि की इसमें सहमति थी। हाँ, रुक्मिणीहरण, सुभद्राहरण, संयोगिताहरण आदि में कन्याओं की सम्मति थी, माता, पिता, भाई आदि की सम्मति न थी; परन्तु कन्या की सम्मति को मुख्य मानते हुए इन विवाहों को पाप नहीं माना गया, क्योंकि मनुधर्मशास्त्र की यह आज्ञा है कि—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

—मनु० ३।५

भाषार्थ—जो लड़की पिता के गोत्र की न हो और माता तथा पिता की छह पीढ़ी तक जिसके कुल का क्रम न मिलता हो, उस लकड़ी से शादी की जावे॥ ५॥

भाव यह है कि यदि कोई कन्या स्वयंवर में ऐसे वर को स्वीकार कर ले जो उपर्युक्त नियम के कुछ थोड़ा विरुद्ध भी हो तो ऐसी स्थिति में माता, पिता आदि को उस शादी में रुकावट न डालनी चाहिए, अपितु विवाह कर देना चाहिए, जैसाकि—

माता, पिता, भाई आदि की इसमें सहमति थी। हाँ, रुक्मिणीहरण, सुभद्राहरण, संयोगिताहरण आदि में कन्याओं की सम्मति थी, माता, पिता, भाई आदि की सम्मति न थी; परन्तु कन्या की सम्मति को मुख्य मानते हुए इन विवाहों को पाप नहीं माना गया, क्योंकि मनुधर्मशास्त्र की यह आज्ञा है कि—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

—मनु० ३।५

भाषार्थ—जो लड़की पिता के गोत्र की न हो और माता तथा पिता की छह पीढ़ी तक जिसके कुल का क्रम न मिलता हो, उस लकड़ी से शादी की जावे॥५॥

भाव यह है कि यदि कोई कन्या स्वयंवर में ऐसे वर को स्वीकार कर ले जो उपर्युक्त नियम के कुछ थोड़ा विरुद्ध भी हो तो ऐसी स्थिति में माता, पिता आदि को उस शादी में रुकावट न डालनी चाहिए, अपितु विवाह कर देना चाहिए, जैसाकि—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च। अप्राप्तमपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि॥

—मनु० ९।८८

भाषार्थ—उत्तम रूपसम्पन्न, सदृश वर के लिए (पाँचवीं, चौथी पीढ़ी में होने के कारण) प्राप्त न होनेवाली कन्या को भी विधिपूर्वक दे देना चाहिए॥८८॥

फिर यदि कन्या को कोई वर पसन्द न आया हो तो माता-पिता को अयोग्य, नापसन्द वर के साथ कन्या की इच्छा के बिना ज़बरदस्ती कभी न करनी चाहिए, जैसे—

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

—मनु० ९।८९

भाषार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर भी चाहे मरणपर्यन्त घर में बैठी रहे, किन्तु गुणहीन वर के लिए उसे कदापि नहीं देना चाहिए॥८९॥

फिर कन्या के लिए यह शिक्षा दी गई है कि स्वयंवर रीति से माता, पिता, भाई आदि की सर्वसम्मति से विवाह हो जाने पर यदि पीछे से पति के साथ कोई मतभेद हो जावे तो भी उसको निभाने का प्रयत्न करना चाहिए, जैसकि—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमतेः पितुः। तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत्॥

—मनु० ५।१५१

भाषार्थ—पिता व पिता की सम्मति से भाई उसको जिसके लिए दे दे, जीवन में उसकी सेवा करे और उसका उल्लंघन न करे, अर्थात् व्यभिचार न करे॥१५१॥

इससे सिद्ध हुआ कि '**उत्कृष्टाय**', '**काममामरणात्**', '**यस्मै दद्यात्**' ये तीनों श्लोक 'पिता आदि को विवाह में रुकावट डालने', 'ज़बरदस्ती कन्या की इच्छा के बिना कन्या का विवाह करने' को मना करने तथा 'विवाह हो जाने पर पति से मतभेद होने पर भी निर्वाह करने' की शिक्षा देते हैं। ये कन्या को पशुवत् अधीन नहीं करते, क्योंकि कन्या विवाह-विषयक प्रस्ताव में मुख्य सम्मति की अधिकारी है, अन्यथा—

इच्छयाऽन्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥ —मनु० ३।३२

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

—महा० आदि० अ० २२३।४ [गीताप्रेस संस्करण २२०।४। —सं०]

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ॥

—महा० आदि० अ० २२१।२१ [गी० सं० मं० २१८।२१]

विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते॥ —महा० आदि० अ० ७३।४

आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः। आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः॥

—महा० आदि० अ० ७३।७

भाषार्थ—कन्या और वर का अपनी इच्छा से एक-दूसरे से संयोग हो जाना यह काम तथा मैथुन से हुआ गान्धर्वविवाह कहाता है॥ ३२॥ कन्या का दान पशुओं की भाँति कौन मान सकता है? और कौन पुरुष पृथिवी में अपनी सन्तान को बेच सकता है?॥ ४॥ आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा की गति है, अतः आत्मा से ही आत्मा का दान कर सकते हो॥ ७॥

इन सब प्रमाणों का क्या अर्थ होगा?

पूर्वोक्त श्लोक कन्या को पराधीन नहीं करते और '**त्रीणि वर्षाणि**' यह श्लोक भी यह नहीं कहता कि पिता आदि शादी न करें तब तीन वर्ष प्रतीक्षा करके कन्या शादी करे, अपितु यह श्लोक स्वतन्त्रता से विवाह की आयु प्रतिपादन करता है। इसका प्रमाण यह है कि महाभारत में यह अकेला ही श्लोक आया है और हेतुसहित बड़ी आयु में विवाह का प्रतिपादन करता है, अतः १६ वर्ष से कम आयु में कन्या का विवाह वेद, शास्त्र, स्मृति तथा इतिहास के सर्वथा विरुद्ध है।

(३२८) प्रश्न—'**त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत**' मनु का यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। इसके प्रमाण मानने का दयानन्द और आर्यसमाज को क्या अधिकार है? —पृ० ३४४, पं० ७

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा में कोई वेदमन्त्र देकर इस श्लोक को वेदविरुद्ध सिद्ध करने की कृपा करें, वरना '**ब्रह्मचर्येण कन्या**' इस मन्त्र के अनुकूल होने से हमें इसके प्रामाणिक मानने का अधिकार प्राप्त है, क्योंकि वेदमन्त्र भी कन्या की युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और यह श्लोक भी ऋतुमती होने से तीन वर्ष पीछे युवावस्था में ही कन्या के विवाह का प्रतिपादन करता है।

(३२९) प्रश्न—मनुजी ने '**त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्**' इस श्लोक में जो २४ वर्ष के पुरुष का आठ वर्ष की कन्या से और ३० वर्ष के पुरुष का १२ वर्ष की कन्या से विवाह करना लिखा है, इसको स्वामी दयानन्दजी ने क्यों छिपाया? —पृ० ३४४, पं० ८

उत्तर—इस श्लोक में स्वयं लिखा है कि ऐसा विवाह करनेवाला गृहस्थधर्म में दुःख पाता है '**धर्मे सीदति सत्वरः**'। यदि आप इसका यह अर्थ मानें कि इससे पहले विवाह करनेवाला धर्म में दुःख पाता है तो—

त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां विन्देत नग्निकाम्। एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात्।

—महा० अनु० अ० ४४।१३

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष दश वर्ष की नग्निका भार्या को प्राप्त हो तथा २१ वर्ष का पुरुष सात वर्ष की पत्नी को प्राप्त हो॥ १३॥

कहिए महाराज! अब यह कम अवस्था की आज्ञा क्या सनातनधर्म को नरक में धकेलने के लिए है? आपके ग्रन्थों की किसी विषय में एक सम्मति नहीं है, अतः वेद का प्रमाण ही धर्म के विषय में कसौटी है। चूँकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह और गर्भाधान करने की आज्ञा देते हैं, अतः छोटी अवस्था में शादी का वर्णन करनेवाले सब प्रमाण वेदविरुद्ध होने से मानने के योग्य नहीं हैं और बिना गर्भाधान तथा सन्तानोत्पत्ति के छोटी अवस्था की शादी वैसे भी व्यर्थ एवं युक्तिशून्य है और सनातनधर्म को तो इस विषय में अब बोलना भी नहीं चाहिए,

क्योंकि इनके यहाँ तो लिखा है कि—

न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते।
स्वयंग्राहा भविष्यति युगान्ते समुपस्थिते॥ ३६॥

—महा० वन० अ० १९०

युग का अन्त आने पर न कोई कन्या माँगेगा और न कोई कन्या देगा, अपितु स्वयंवर विवाह होंगे।

वर्ण-व्यवस्था

(३३०) प्रश्न—संसार में ईश्वर ने जितनी जातियाँ रची हैं, उन सबमें भेद रक्खा है।

—पृ० ३०६, पं० २२

उत्तर—आप ठीक कह रहे हैं, क्योंकि जाति कहते ही उसको हैं जो दूसरी जाति की अपेक्षा सूरत और शक्ल में भिन्न हो। इसी बात को व्याकरणकार ने इन शब्दों में लिखा है कि—

आकृतिग्रहणा जातिः॥ —सिद्धान्तकौमुदी

आकृतिः—अवयवसन्निवेशविशेषः॥ —बालमनोरमा

—सिद्धान्त० स्त्रीप्रत्यय **'जातेरस्त्रीविषयात्'** सूत्र पर

अर्थ—जाति उसको कहते हैं जो सूरत और शक्ल में विशेषता के कारण दूसरी जातियों से भिन्न पहचानी जावे, अतः एक जाति का दूसरी से सूरत-शक्ल, आकृति में भेद आवश्यक है।

(३३१) प्रश्न—सबसे पहले संसार में तृणजाति की उत्पत्ति हुई, किन्तु उस तृणजाति में भी ईश्वर ने अनेक भेद दिखाये। तृण एक जाति है, किन्तु उसमें दूब, मुसेल, धुरियाँ, मोथा आदि अनेक जातिभेद दिखते हैं। —पृ० ३०६, पं० २३

उत्तर—बेशक, तृणजाति वृक्षजाति से आकृति में भिन्न है और वृक्षों से तृण और फिर तृणों में भी दूब, मुसेल, मोथा, धुरियाँ आदि में भी प्रत्येक की आकृति दूसरे से भिन्न है और यदि सबको एक स्थान में रक्खा जाए तो पृथक्-पृथक् पहचाने जा सकते हैं, अतः वृक्षों के मुक़ाबले में तृणजाति और तृणों में भी दूब आदि पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं।

(३३२) प्रश्न—तृण के पश्चात् ईश्वर ने अन्नजाति की उत्पत्ति की। अन्न-अन्न एक जाति, किन्तु एक अन्नजाति में भेदप्रतिपादक सैकड़ों अवान्तर जातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। धान, ज्वार, बाजरा, मकई, कोदों, साँवा, उर्द, मूँग, रवाँस, चना, जौ, गेहूँ, मटर, अरहर इत्यादि।

—पृ० ३०६, पं० २५

उत्तर—बेशक तृण तथा वृक्षों की अपेक्षा सूरत, शक्ल और आकृति भिन्न होने से अन्नजाति भिन्न है और अन्नों में भी परस्पर एक-दूसरे की आकृति भिन्न होने से पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं। यदि धान, ज्वार, बाजरा, मकई, उर्द, मूँग, चना, जौ, गेहूँ आदि सब अन्नों को मिला दिया जावे तो सबकी शक्ल-सूरत भिन्न-भिन्न होने के कारण उनको चुनकर भिन्न-भिन्न किया जा सकता है, अतः अन्नों में अनेक जातियाँ हैं।

(३३३) प्रश्न—इसके पश्चात् वृक्षजाति की उत्पत्ति की। वृक्ष-वृक्ष एक जाति, किन्तु उसमें वट, पीपल, नीम, आम, जामुन, खजूर, ताल, तमाल, शाल, सागौन, साखू, शीशम, बबूर, गूलर, पिलखन, अर्जुन, प्रभृति अनेक भेद सिद्ध करनेवाली अवान्तर जातियाँ ईश्वर ने ही रची हैं।

—पृ० ३०७, पं० ३

उत्तर—ठीक है, वृक्षों की आकृति तृण तथा अन्न की अपेक्षा भिन्न होने से वृक्षजाति भिन्न है और वृक्षों में भी परस्पर एक-दूसरे की पत्तों, पुष्प, फलों आदि में आकृति भिन्न होने के कारण

अनेक जातियाँ हैं। यदि किसी बाग़ीचे में वट, पीपल, नीम, आम, जामुन, अनार, अमरूद आदि वृक्ष इकट्ठे हों तो प्रत्येक की उसके पत्तों, पुष्पों, फलों आदि की आकृति भिन्न होने से पहचान की जा सकती है, अत: वृक्षों में भी अनेक जातियाँ हैं।

(३३४) प्रश्न—वृक्ष के अनन्तर पक्षी जाति की उत्पत्ति हुई। पक्षी-पक्षी एक जाति, किन्तु इस पक्षी जाति में चील, काक, कोयल, गीध, बाज, शिकरा, सारस, तीतर, बटेर, बगुला, हँस, चिड़िया, उल्लू, प्रभृति भेद सिद्ध करनेवाली अनेक अवान्तर जातियाँ सृष्टि के आरम्भ में ही रची गईं। —पृ० ३०७, पं० ६

उत्तर—सत्य है, बेशक पक्षियों की जाति पशु, मनुष्य आदि से आकृति भिन्न होने के कारण पृथक् है और पक्षियों में भी परस्पर एक-दूसरे की आकृति भिन्न होने के कारण अनेक जातियाँ हैं। यदि चील, काक, कोयल, गीध, बाज़, शिकरा, तोता, मैना, कबूतर, बटेर आदि सबको मिलाकर बिठा दिया जावे तो सबकी आकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण सबको पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है, अत: सिद्ध हुआ कि पक्षियों में अनेक जातियाँ हैं।

(३३५) प्रश्न—पक्षीजाति के बाद पशुजाति उत्पन्न हुई। उसमें भी भैंस, गौ, बकरी, हिरण, भेड़, ऊँट, घोड़ा, गधा, जैबरा, रोल, शावर, प्रभृति अनेक अवान्तर जातियाँ भेद सिद्ध करनेवाली विद्यमान हैं। —पृ० ३०७, पं० १०

उत्तर—आप ठिकाने की बात कर रहे हैं। बेशक पशुओं की जाति आकृति के भिन्न होने के कारण वृक्ष, तृण, पक्षी तथा मनुष्यों की जाति से भिन्न है और पशुओं में भी परस्पर एक-दूसरे की आकृति भिन्न होने से अनेक जातियाँ हैं। यदि गाय, भैंस, ऊँट, गधा, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि को मिलाकर खड़ा कर दिया जावे तो सबको भिन्न आकृति के कारण पहचाना जा सकता है, अत: पशुओं में भी अनेक जातियाँ हैं तथा न्यायदर्शन में जाति का लक्षण किया गया है कि—

समानप्रसवात्मिका जातिः॥ —न्याय० २।२।७१

अर्थ—जो नर और मादा मिलकर अपने-जैसी सन्तान पैदा कर सकें और उनकी नस्ल का क्रम आगे भी चले, वे नर तथा मादा एक जाति में गिने जावेंगे। जैसे 'घोड़ा और घोड़ी' तथा 'गधा और गधी' आपस में मिलकर अपने-जैसी सन्तान पैदा करते हैं तथा उनका वंश भी आगे चलता है, अत: पता लगा कि 'घोड़ा-घोड़ी' तथा 'गधा-गधी' दोनों एक ही जाति में हैं, परन्तु 'गधा और घोड़ी' ये दोनों मिलकर जिस सन्तान को पैदा करते हैं, वह उन जैसी नहीं होती अपितु उन दोनों से भिन्न शक्लवाली 'खच्चर' की शक्ल में होती है और उनका वंश भी आगे नहीं चलता, खच्चर पर ही समाप्त हो जाता है। इससे पता लगा कि 'घोड़ी और गधे' की एक जाति नहीं है, अपितु इनकी जाति भिन्न-भिन्न है। इस सिद्धान्त के अनुसार पता चलता है कि पशुओं में अनेक जातियाँ हैं।

(३३६) प्रश्न—शास्त्र कहता है कि पशुजाति के पश्चात् देवजाति की उत्पत्ति हुई। देव देव एक जाति, किन्तु, उसमें भी विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत, ये दश अवान्तर जातियाँ हैं। —पृ० २०७, पं० २३

उत्तर—भूत तो कोई विशेष जाति है ही नहीं, अपितु सर्वप्राणियों का नाम भूत है और राक्षस तथा पिशाचों को भी देवजाति मानना आपका ही काम है, वरना शास्त्र तो मानते नहीं। हाँ, वास्तविक बात यह है कि देव, गन्धर्व, राक्षस, पिशाचादि ये सब मनुष्यजाति के ही कर्मानुसार तथा देशानुसार भेद हैं। इनकी आकृति में परस्पर भेद नहीं हैं। विद्वानों का नाम देव, अविद्वानों को असुर, पापियों को राक्षस, और अनाचारियों को पिशाच कहते हैं। इसी प्रकार से दूसरों के भी कर्मभेद तथा देशभेद से भिन्न-भिन्न नाम हैं अन्यथा ये सब मनुष्य ही हैं। सूर्य देवता ने कुन्ती—

मनुष्य-स्त्री में कर्ण-समान सन्तान पैदा की और उसका वंश भी चला, अतः सूर्य और कुन्ती की एक ही जाति हुई। इन्द्र, वायु, धर्म तथा अश्विनीकुमार देवताओं ने कुन्ती तथा माद्री मनुष्य-स्त्रियों में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को समान सन्तान पैदा किया तथा उनका आगे वंश भी चला। इससे सिद्ध हुआ कि इन्द्र, धर्म तथा वायु, अश्विनीकुमार, कुन्ती तथा माद्री सबकी एक ही जाति थी। विश्वाामित्र मनुष्य ने मेनका अप्सरा में शकुन्तला समान सन्तान पैदा की और उसका वंश भी आगे चला। इससे सिद्ध किया जा सकता है कि ये सब मनुष्यजाति के ही कर्मभेद तथा देशभेद से नाम हैं। ये कोई भिन्न जातियाँ नहीं हैं। यदि हैं तो हमारे सनातनधर्मी भाई इनकी हस्ती का कोई प्रमाण पेश करें।

(३३७) प्रश्न—भाव यह है कि कीट, पतंग, वनचर, नभचर, जलचर आदि समस्त जातियों में अवान्तर जातिभेद अवश्य होते हैं। —पृ० ३०७, पं० १५

उत्तर—आपका फ़रमाना सत्य है, क्योंकि कीट, पतंग, वनचर, नभचर, जलचर आदि जातियों में से प्रत्येक के अन्दर भी अनेक प्रकार के जन्तुओं का परस्पर आकृतिभेद होने से अनेक प्रकार की जातियाँ होती हैं और वे आकृतिभेद के कारण भिन्न-भिन्न पहचानी जाती हैं।

(३३८) प्रश्न—ये जातिभेद जड़ पदार्थों में भी पाये जाते हैं। पत्थर एक जाति रहने पर भी उस पत्थर में संगे-अस्वद, संगे-मूसा, संगे-मरमर एवं लाल पत्थर तथा सुफ़द पत्थर आदि अनेक जातिभेद हैं। —पृ० ३०७, पं० १७

उत्तर—इसमें क्या सन्देह है! जड़ पदार्थों में भी आकृतिभेद, रंगभेद से अनेक जातियाँ विद्यमान हैं और वे एक स्थान में रखने पर अपने आकृतिभेद तथा रंगभेद से भिन्न-भिन्न पहचानी जाती हैं। जैसे यदि संगे-अस्वद, संगे-मूसा, संगे-मरमर, लाल पत्थर, आदि सबको एक ही स्थान में रख दिया जावे तो वे भी परस्पर आकृतिभेद तथा रंगभेद होने के कारण भिन्न-भिन्न पहचाने जा सकेंगे।

(३३९) प्रश्न—इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में रची हुई मनुष्यजाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि अनेक भेद पाये जाते हैं। ये अनादि हैं, ईश्वरकृत हैं, इनमें अन्य जातियों की भाँति परिवर्तनरहित भेद हैं। —पृ० ३०७, पं० १९

उत्तर—आपको यहाँ पर धोखा लगा है। जैसे पशु जाति में गौ, भैंस, ऊँट, घोड़ा, गधा आदि जातियों में परस्पर आकृतिभेद है, जैसे पक्षीजाति में मोर, तीतर, बटेर, मैना आदि में परस्पर आकृतिभेद होने से अवान्तर जातियाँ हैं वैसे मनुष्यजाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि में परस्पर आकृतिभेद नहीं है और यदि इन सबको इकट्ठा कर दिया जावे तो पहचाना भी नहीं जा सकता। जैसे युधिष्ठिर एक वर्ष राजा विराट के पास ब्राह्मण बनकर रहा, कोई भी नहीं पहचान सका। कर्ण ने ब्राह्मण बनकर परशुराम से विद्या पढ़ी तथा पाँचों पाण्डव मुद्दत तक ब्राह्मण बनकर गुप्त रहे। अर्जुन, भीम तथा कृष्ण ब्राह्मण बनकर जरासन्ध को मारने गये, किन्तु इनको कोई न पहचान सका। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में एक-दूसरे की स्त्री से एक-दूसरे का विवाह हो जाए तो परस्पर संयोग से समान सन्तान उत्पन्न होती है और उनका वंश भी आगे चलता है—इससे पता चलता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन सबकी एक ही जाति है और वह मनुष्यजाति है। यदि इनकी जाति भिन्न होती तो इनमें भी एक-दूसरे की स्त्री के संयोग से खच्चर की भाँति भिन्न प्रकार की सन्तान पैदा होती और उनका वंश भी आगे न चलता।

अतः पता लगा कि एक ही मनुष्यजाति में गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हैं। ये भेद अनादिकाल से नहीं हैं, क्योंकि इनमें परिवर्तन हो जाता है। ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बन जाते हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ईसाई और मुसलमान बन

जाते हैं, इत्यादि परिवर्तन होते ही रहते हैं, अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सबकी एक ही मनुष्यजाति है जो पैदा होने से मरने तक तब्दील नहीं हो सकती, और मनुष्यजाति के ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि ये भेद कर्मानुसार हैं जो परिवर्तित भी होते रहते हैं।

(३४०) प्रश्न—मनुष्यों की उत्पत्ति स्थान में ही भेद प्रतिपादन करता हुआ वेद '**ब्राह्मणोऽस्य**' इस मन्त्र में कहता है कि 'इस यज्ञपुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए और बाहु से क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य तथा पैरों से शूद्र'॥ —पृ० ३०७, पं० २१

उत्तर—आपका यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध और स्वयं वेद के ही विरुद्ध है, क्योंकि वेद ईश्वर को निराकार, अकाय वर्णन करते हैं जैसे '**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम्**' इत्यादि यजुर्वेद [४०।८] वर्णन करता है कि 'वह परमात्मा सर्वव्यापक, शीघ्रकारी, अकाय, व्रणरहित, नस तथा नाड़ी के बन्धन से रहित है' जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है तो उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू से वैश्य तथा शूद्रों को परमात्मा के पाँवों से पैदा हुआ मानना वन्ध्या के पुत्र के विवाह में मिठाई खाने की भाँति असम्भव तथा उन्मत्तप्रलाप के सिवाय और क्या हो सकता है? इस मन्त्र के वास्तविक अर्थों को जानने के लिए इससे पूर्वमन्त्र के अर्थों का जानना आवश्यक है, जिसमें प्रश्न किया गया है और जिसके उत्तर में यह मन्त्र है। दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥ १०॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद् बाहूराजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रोऽजायत॥ ११॥

—यजुः० ३१।१०-११

भाषार्थ—जिस परमात्मा को कई प्रकार से कल्पना करते हुए पुरुष वर्णन करते हैं, उस पुरुष का मुख क्या है? उसकी भुजा कौन हैं, उसके ऊरू तथा पाँव कौन कहे जाते हैं?॥ १०॥

इस मन्त्र में जो परमात्मा को कई प्रकार की कल्पना करके वर्णन करने का ज़िक्र है, वह कल्पना क्या वस्तु है? इसको दूसरे शब्दों में अलंकार भी कहते हैं—

सौन्दर्यमलङ्कारः॥ ६॥ —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

भाषार्थ—किसी बात को सौन्दर्य से वर्णन करने का नाम अलंकार है। अलंकार बहुत प्रकार के होते हैं, उनमें से एक अलंकार का नाम है उपमालंकार। उसका लक्षण यह है—

उपमानोपमेययोर्गुणलेशतः साम्यमुपमा॥ १॥

उपमान से उपमेय के गुणों की कुछ समानता का नाम उपमा है। वह उपमा दो प्रकार की है—

सा पूर्णा लुप्ता च॥ ४॥

वह पूर्णा तथा लुप्ता दो प्रकार की है। पूर्णा का लक्षण—

गुणद्योतकोपमानोपमेयशब्दानां सामग्र्ये पूर्णा॥ ५॥

जिसमें उपमान, उपमेय, उपमावाचक शब्द तथा गुणद्योतक शब्द—ये सारे विद्यमान हों, वह पूर्ण-उपमा है जैसे—

'**कमलमिव मुखं मनोज्ञमिति**' मुख कमल की भाँति सुन्दर है। इस वाक्य में—

कमल—उपमान—जिससे उपमा दी जावे।

मुख—उपमेय—जिसको उपमा दी जावे।

मनोज्ञ—साधारणधर्म, समान गुण जो दोनों में मिलता हो।

इव—उपमा-वचक शब्द, जिनसे समानता बताई जावे।

यहाँ उपमा के चारों अङ्ग विद्यमान हैं, अतः यहाँ पूर्ण उपमा है।

लोपे लुप्ता॥ ६॥ —काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति ९।१-६

जिसमें किसी अङ्ग का लोप हो जावे वह लुप्त-उपमा है, जैसे—

'शशीव राजा' 'चाँद-जैसा राजा' इसमें साधारणधर्म, जो गुण दोनों में मिलता है, जिसके कारण राजा को चाँद-जैसा कह गया है, वह लुप्त है, अतः इसका नाम 'धर्मलुप्तोपमा' है।

'दूर्वा श्यामेयम्'—'यह स्त्री काली दूब है' यहाँ पर उपमावाचक शब्द का लोप है, जो समानता का वर्णन करता है, अतः इसका नाम 'वाचकलुप्तोपमा' है।

'शशिमुखी' 'चन्द्रमुखी'—यहाँ पर साधारणधर्म और उपमावाचक शब्द दोनों का लोप है, इसको 'वाचकधर्मलुप्तोपमा' कहते हैं।

हम इसके कुछ उदाहरण देते हैं—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

भाषार्थ—सब उपनिषद् गौवें हैं, दोहनेवाले कृष्ण हैं, पीनेवाला बुीद्धिमान् अर्जुन बछड़ा तथा महान् अमृत गीता दूध है।

यहाँ पर उपनिषदों को गौवों की, कृष्णा को दोहनेवाले की, अर्जुन को बछड़े की तथा गीता को दूध की उपमा दी गई है। यहाँ उपमावाची शब्दों तथा साधारणधर्म का लोप है, अतः यहाँ पर 'वाचकधर्मलुप्तोपमा' है।

यहाँ पर गीता को दूध की उपमा ही दी गई है, वास्तव में गीता दूध नहीं है। यदि कोई आदमी इस श्लोक को ठीक रूप से न समझकर गीता को कटोरे में डालकर किसी को कहे कि लीजिए, दुग्धपान कीजिए तो सब लोग उसे मूर्ख ही कहेंगे, बुद्धिमान् नहीं।

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥

भाषार्थ—आत्मा नदी है, संयमरूपी पवित्र तीर्थवाली, सत्य जलवाली, शील तट तथा दया लहरोंवाली है। हे युधिष्ठिर! उसमें स्नान कर, जल से आत्मा शुद्ध नहीं होता।

इस श्लोक में आत्मा को नदी की उपमा देकर तरंगों को भी उपमा दी गई है, किन्तु आत्मा वास्तव में नदी नहीं है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

भाषार्थ—प्रणव धनुष है, यह आत्मा तीर है, ब्रह्म उसका लक्ष्य है, सावधानी से लक्ष्य को वेधना चाहिए, तीर की भाँति तन्मय हो जावे।

यहाँ आत्मा को तीर की उपमा दी गई है, परन्तु वास्तव में आत्मा तीर नहीं है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान् तेषु गोचरान्। आत्मबुद्धिमनोयुक्तः कर्तेति उच्यते बुधैः॥

भाषार्थ—आत्मा को सवार जान, शरीर को रथ समझ, बुद्धि को सारथि जान, मन को लगाम समझ। इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को उनकी खुराक कहते हैं। बुद्धि और मन से युक्त आत्मा को बुद्धिमान् लोग कर्त्ता कहते हैं।

यहाँ आत्मा को रथी की उपमा देकर तत्सम्बन्धी वस्तुओं की भी उपमा दी है, किन्तु वास्तव में आत्मा रथी नहीं है।

इन सब स्थलों में **'वाचकधर्मलुप्तोपमा'** अलंकार हैं, जिनमें उपमावाची शब्द तथा साधारण धर्म का लोप है। इसी प्रकार के अलंकार वेदों में भी हैं, जैसे—

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी॥ २०॥

सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पंचौदनः॥ २१॥

—अथर्व० ९।५

भाषार्थ—यह बकरा आगे आया, इसकी छाती यह पृथिवी, द्यौः पीठ, आकाश पेट, दिशाएँ पार्श्व=पसवाड़े, समुद्र बगलें, ज्ञान तथा सत्य दोनों आँखें और सम्पूर्ण सत्य और श्रद्धा प्राण तथा ब्राह्मण सिर है, वह यह अपरिमित यज्ञ है, जिसको पञ्चौदन अज कहते हैं।

इस मन्त्र में परमात्मा को अज अर्थात् बकरे की उपमा देकर उसके अङ्गों की भी कल्पना करके परमात्मा का वर्णन किया गया है। परमात्मा वास्तव में बकरा नहीं है।

बस, इसी प्रकार '**यत्पुरुषं व्यदधुः**' इस मन्त्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर पूछा है कि उसके मुख, बाहू, ऊरू तथा पाँव कौन हैं। इसका ही उत्तर अगले मन्त्र में '**ब्राह्मणोऽस्य**' दिया गया है कि 'ब्राह्मण उसका मुख हैं, भुजा क्षत्रिय, ऊरू वैश्य हैं और पाँव शूद्र'।

इस मन्त्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को उस पुरुष के मुख, बाहू, ऊरू तथा पाँव कल्पना किया गया है। यह पूर्ववत् उपमा अलंकार है। वास्तव में परमात्मा निराकार है, उसके मुखादि अङ्ग नहीं हैं। यहाँ पर परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उसके मुख, बाहू, ऊरू तथा पैर कल्पना करने का यही प्रयोजन है कि मनुष्यसृष्टि में जो लोग मुख के समान सर्वसाधारण से पाँचगुणा ज्ञान रखते हों, लोगों को उलटे रास्ते से हटाकर सीधे रास्ते पर चलावें तथा अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावें, वे ब्राह्मण कहलाने के योग्य हैं तथा मनुष्यसृष्टि में जो लोग भुजा के समान अपने-आपको संकट में डालकर भी दूसरों की रक्षा करे वे क्षत्रिय कहलाने के योग्य तथा जो लोग पेट के समान राष्ट्र के कच्चे माल को पक्का माल बनाकर उसके व्यापार से जो लाभ हो उससे अपने देश का पालन करें वे वैश्य कहलाने के योग्य हैं। और मनुष्यसृष्टि में जो लोग न दिमाग़ी काम कर सकें, न रक्षा और व्यापार का काम कर सकें, केवल पाँवों के समान बोझ उठाने, अर्थात् कुलीपने का काम जानते हों वे शूद्र कहलाने के अधिकारी हैं। यह मन्त्र वर्ण-व्यवस्था का गुण-कर्म-स्वभाव से प्रतिपादन करता है—जन्म से नहीं, अतः हमारा किया हुआ अर्थ वेदानुकूल तथा आपका अर्थ स्वयं वेद के ही विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

(३४१) प्रश्न—हमारे इसी अर्थ की पुष्टि '**लोकानां तु विवृद्ध्यर्थम्**' (मनु० १।३१) '**उत्तमाङ्गोद्भवात्**' [मनु० १।९३] और '**यज्ञसिद्ध्यर्थम्**' [हारीत० १।१२] तथा '**शूद्राँश्च पादयोः**' [हारीत० १।१३] आदि स्मृतियाँ करती हैं। —पृ० ३०८, पं० ५

उत्तर—ये स्मृतियाँ आपके अर्थ की पुष्टि नहीं करतीं अपितु हमारे अर्थ की पुष्टि करती हैं। इन श्लोकों के अर्थ इस प्रकार हैं—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥

—मनु० १।३१

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्। सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।

—मनु० १।९३

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्यूरु देशतः॥ १२॥
शूद्राँश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिः पितामहः॥ १३॥

—हारीत० १।१२-१३

भाषार्थ—संसार की उन्नति के लिए मुख, भुजा, पेट तथा पैर के समान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बनाये॥ ३१॥ मुख के समान होने तथा श्रेष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण इस सारे संसार का धर्म से ब्राह्मण स्वामी है॥ ९३॥ यज्ञसिद्धि के लिए पापरहित ब्राह्मणों को मुख के समान पैदा किया, भुजा के समान क्षत्रियों को बनाया और वैश्यों को भी पेट के समान बनाया॥ १२॥ और शूद्रों को पाँवों के समान बनाकर क्रमशः उनका विस्तार किया। इसी प्रकार से ही ब्रह्मा ने भी कहा है॥ १३॥

इन स्मृतिवाक्यों के यही अर्थ संगत हो सकते हैं, वरना यदि आप इनका यह अर्थ करेंगे कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परमात्मा के मुख, बाहू, ऊरू तथा पैरों से पैदा हुए, तो—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥ ६॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥ ७॥

—मनु० १

एकाकारमनानान्तं बुद्धौ रूपमनामयम्। सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम्॥ ५॥
आत्मना बहिरन्तःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम्। रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम्॥ ६॥

—हारीत० अ० ७

भाषार्थ—उसके पश्चात् नित्यस्वरूप, इन्द्रियों से अगोचर, अखण्डित तेजवाला, प्रकृति का प्रेरक इन पाँच महाभूतों के जगत् को प्रकट करके प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥ जो वह इन्द्रियों से अगोचर, अत्यन्त सूक्ष्म, अवयवरहित, सनातन, चिन्तन में न आने योग्य, सर्वभूतों में व्यापक परमात्मा है वह स्वयं प्रसिद्ध हुआ॥ ७॥ एकाग्रमन होकर अपनी बुद्धि में अनन्त, सुखस्वरूप, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, जगत् के आधार अविनाशी परमात्मा का ध्यान करे॥ ५॥ एकान्त में बैठकर मरने तक अपनी आत्मा के द्वारा अन्दर-बाहर सर्वत्र व्यापक प्रकाशस्वरूप परमात्मा का ध्यान करे॥ ६॥

जब यही स्मृतियाँ परमात्मा को अवयव से रहित, इन्द्रियों से अगोचर, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, आत्मा से जानने योग्य, शरीररहित, निराकार वर्णन कर रही हैं तो फिर पूर्व श्लोकों में ईश्वर को शरीरधारी और साकार मानकर उसके अङ्गों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है?

वेद भी परमात्मा को अकाय मानता है, अतः आपका अर्थ ठीक मानने से, स्मृतियाँ वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण हो जावेंगी तथा हमारा अर्थ मानने से वेदानुकूलता के कारण प्रमाण मानी जा सकेंगी। इस कारण हमारा अर्थ वेदानुकूल होने से ठीक तथा आपका वेदविरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

हमारे अर्थ की पुष्टि में आपका पाँचवाँ वेद इस प्रकार लिखता है कि—

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संस्थिता विशः॥ १३॥
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च॥ १४॥ —महा० वन० अ० १८९

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः। पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः॥ ६७॥

—महा० शान्ति० अ० ४७

भाषार्थ—क्रमशः ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा तथा दोनों जाँघ वैश्य और शूद्र परिश्रम के कारण पाँवों के तुल्य हैं॥ १३-१४॥

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, सारे जाँघ और पेट वैश्य तथा शूद्र जिसके पाँवों के आश्रित हैं उस वर्णात्मक ईश्वर को नमस्कार है॥ ६७॥

ईश्वर निराकार, शरीर से रहित है। यदि उसके शरीर की कल्पना करनी हो तो ब्राह्मण ही उसका मुख, क्षत्रिय ही उसकी भुजा, वैश्य ही उसके जाँघ तथा पेट और शूद्र ही उसके पाँव

हैं, और कोई परमेश्वर के मुख, भुजा, जाँघ, पेट, पाँव आदि अङ्ग नहीं हैं। इसी अर्थ की पुष्टि आपके भाष्यकार उव्वट करते हैं—

यत्पुरुषमिति—यत्पुरुषं देवा इन्द्रादयः तस्मिन् यज्ञे व्यदधुः कृतवन्तो यथा। तद्वत् योगिन आत्मयज्ञे पुरुषं ज्ञानम् यत् ज्ञानान्तं तत्कृतवन्तः कतिप्रकारं विकल्पितवन्तः। तस्यैवंविधस्य किं मुखम्, कौ बाहू कौ ऊरू पादौ उच्येते उच्यन्तामित्यर्थः॥ ३१। १०॥

ब्राह्मणोऽस्येति—अस्य यज्ञोत्पन्नस्य पुरुषस्य ये केचिद् ब्राह्मणाः ते मुखमासीत्। ये क्षत्रियाः ते बाहू कृताः। ये वैश्याः ते अस्य ऊरू कृताः। ये शूद्राः ते पद्भ्याम् अजायन्त इति कल्प्यन्ते तदस्योत्पन्नत्वादिति। एवमेतेऽवयवाः शिरः प्रभृतयः पुरुषस्य विद्यन्ते नान्ये इति॥ ३१। ११॥

भाषार्थ—जिस परमात्मा को, इन्द्रियों के स्वामी विद्वान् योगियों ने, आत्मयज्ञ में कई प्रकार से कल्पित किया है, उस इस प्रकार से कल्पना किये हुए परमात्मा का मुख कौन है, भुजा कौन हैं, जाँघ कौन और पाँव कौन कहे जाते हैं, उत्तर दो—यह अर्थ है॥ १०॥

उस यज्ञ में कल्पना किये हुए पुरुष परमात्मा के जो कोई ब्राह्मण हैं वे मुख हैं, जो क्षत्रिय हैं वे भुजा किये गये, जो वैश्य हैं वे इसके जाँघ माने गये, जो शूद्र हैं वे पाँव-स्थानीय हुए, ऐसी कल्पना की जाती है। उससे पैदा होने के कारण ऐसे ये ही अवयव शिर आदि परमात्मा के हैं, और नहीं है॥ ११॥

कैसा स्पष्ट हो गया कि ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही परमात्मा के मुख, भुजा, जाँघ, पेट, पैर आदि अवश्य कल्पना किये जा सकते हैं। वरना परमात्मा के और कोई अवयव नहीं हैं।

परमात्मा के मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति मानना वेदविरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या ही है।

(३४२) प्रश्न—'यस्मादेते' इत्यादि शतपथ भी हमारे अर्थ की पुष्टि करता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अङ्गों से पृथक्-पृथक् स्थानों से पैदा हुए। —पृ० ३०८, पं० १४

उत्तर—शतपथ के इस पाठ का यह अर्थ नहीं है जो आप करते हैं। यह शतपथ तो हमारी पुष्टि करता है, आपकी नहीं। देखिए, इस शतपथ का अर्थ यह है—

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त' इत्यादि जिस कारण ब्राह्मण सब वर्णों में मुख्य हैं, इसलिए यह अर्थ संगत होता है कि मुख के समान पैदा हुए।

बतलाइए, इससे यह कहाँ से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अङ्गों से पैदा हुए?

(३४३) प्रश्न—पुरुषसूक्त तीन विषयों का वर्णन करता है। इसका प्रथम विषय इतिहास है, द्वितीय विषय पुरुष-मेधयज्ञ का क्रम, तीसरा विषय सृष्टिरचना है। —पृ० ३०९, पं० १७

उत्तर—पुरुषसूक्त का मुख्य विषय सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करना है। गौणरूप से वेदोक्त धर्म का उपदेश तथा वर्णों के कर्म, मनुष्यजाति के कर्त्तव्यों का वर्णन भी है। यदि पुरुषमेधयज्ञ के क्रम से आपका यही अभिप्राय है कि सूक्त में मनुष्यजाति के कर्त्तव्यों का क्रमशः वर्णन किया गया है तो ठीक है। यदि पुरुषमेध से आपका अभिप्राय पुरुष को मारकर होम करना है तो इस पौराणिक लानत का यजुर्वेद में नाम तक भी नहीं है। इतिहास से भी यदि आपका अभिप्राय सृष्टि के क्रम से वर्णन का हो तो ठीक है, और यदि आपका इतिहास से अभिप्राय मनुष्यों के इतिहास से हो तो आपका लेख ग़लत है, क्योंकि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान है। इनमें इतिहास का होना असम्भव है, क्योंकि इतिहास किसी मनुष्य के जन्म के पीछे लिखा जाता है, अनादि वेद में उसका

वर्णन कैसे हो सकता है?

(३४४) प्रश्न—**'तं यज्ञं बर्हिषि'** इत्यादि [यजुः० ३१।९] इस मन्त्र में तो इतिहास है।
—पृ० ३०९, पं० २१

उत्तर—इस मन्त्र में किसी विशेष पुरुष का इतिहास नहीं है, अपितु सैद्धान्तिक रूप से बतलाया है कि जिस परमात्मा का ऋषि, महात्मा लोग सृष्टि के आदि में पूजन करते थे उसी का तुमको पूजन करना चाहिए, जैसाकि—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥
—यजुः० ३१।९

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् और योगाभ्यसादि साधन करते हुए मन्त्रार्थ जाननेवाले, ज्ञानी लोग जिस सृष्टि के पूर्व प्रसिद्ध हुए, सम्यक् पूजने योग्य, पूर्ण परमात्मा को मानस ज्ञानयज्ञ में सींचते, अर्थात् धारण करते हैं, वे ही उसके उपदेश किये हुए वेद से उसका पूजन करते हैं। उसको तुम लोग भी जानो॥ ९॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदय-अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें॥ ९॥

कहिए महाराज! इस मन्त्र में कौन-सा, किसका इतिहास है? यदि नहीं तो वेद में इतिहास बतलाकर उसको अनित्य होने के कलंक से कलंकित न कीजिए।

(३४५) प्रश्न—फिर इसके आगे **'मुखं किमस्यासीत्'** मन्त्र में पुरुषमेध के लिए निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न है कि उस पुरुष के मुख, बाहू, ऊरू, पाद क्या हैं? इसके आगे **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** यह मन्त्र है। इस मन्त्र में मुख, बाहू, ऊरू—ये तीन पद प्रथमान्त हैं, जैसे ये प्रथमान्त हैं ऐसे ही पाद शब्द भी प्रथमान्त होना चाहिए था किन्तु वह पञ्चम्यन्त है। इसका मतलब यह है कि इस मन्त्र के दो अर्थ होंगे। —पृ० ३०९, पं० २५

उत्तर—शुक्र है, आपने परमात्मा को निराकार तो माना! परन्तु यह क्या लिख दिया कि 'निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न', क्या निराकार के भी अङ्ग होते हैं? आप इस मन्त्र में पड़े **'व्यकल्पयन्'** पद को चुराना चाहते हैं, जिसका अर्थ है 'कल्पना करते हैं', जिससे स्पष्ट है कि निराकार के अङ्ग नहीं होते, किन्तु वर्णन में सुन्दरता लाने के लिए कल्पना किये गये हैं। वेद में विभक्तियों का व्यत्यय हो जाया करता है, अतः वेद में विभक्तियों की इतनी प्रबलता नहीं होती जितनी अविरोधी अर्थ की प्रबलता होती है। वेद की भाषा अनादि है और व्याकरण भाषा के पीछे बना करता है, अतः व्याकरण वेद की वाणी को पूर्णरूप से अपने में नहीं बाँध सका, तभी तो व्याकरण के कर्त्ता ने कहा कि **'व्यत्ययो बहुलम्'**, **'बहुलम् छन्दसि'**।

क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

अप्रवृत्ति के स्थान में प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के स्थान में अप्रवृत्ति, विकल्प, कहीं कुछ और ही, वेदों के विधान को बहुत प्रकार से विचारकर 'बहुल' को चार प्रकार का कहते हैं, अतः विभक्तियों का जोड़मेल आपके लिए विशेष लाभदायक न होगा, तथापि दोनों मन्त्रों में प्रथमान्त सात पद हैं और पञ्चम्यन्त केवल एक पद, अतः सात की प्रबलता से एक भी प्रथमान्त ही माना जावेगा। यदि **'पद्भ्याम्'** को चतुर्थी का द्विवचन मान लें तो भी अर्थ प्रथमान्त के अनुकूल ही निकल पड़ता है। आप चाहे वेदमन्त्र के दो छोड़ पचास अर्थ करें, हमें कोई आपत्ति नहीं है, यदि वे परस्पर-विरुद्ध अथवा वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। अच्छा अब अर्थ कीजिए।

(३४६) प्रश्न—प्रथम अर्थ में मुख, बाहू, ऊरू, पाद, ये चारों शब्द प्रथमान्त लिये जावेंगे। ब्राह्मण इस पुरुष का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरू, शूद्र पाद यह अर्थ हुआ। इस अर्थ से प्रथम मन्त्र के प्रश्नों का उत्तर भी हो गया। —पृ० ३१०, पं० २

उत्तर—परमात्मा आपका भला करे! आख़िर ठिकाने पर आ ही गये! यदि सुबह का भूला हुआ शाम को घर आ जावे तो उसे भूला हुआ न जानना चाहिए। यदि इसी प्रकार से अक़्ल से काम लेते तो आपको इस किताब में कुफ्र तोड़ने की नौबत ही क्यों आती?

(३४७) प्रश्न—जहाँ वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है वहाँ ब्राह्मण का पूजन होगा, क्योंकि ब्राह्मण ईश्वर का मुख है। जहाँ ईश्वर की भुजाओं का पूजन है वहाँ क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरूपूजन में वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा। इस अर्थ से पुरुषमेध का पूजनक्रम निकला। —पृ० ३१०, पं० ६

उत्तर—आपने उपर्युक्त लेख से कई-एक वैदिक सचाइयों को स्वीकार कर लिया। प्रथम तो शूद्रों को पूज्य ठहराकर आपने अछूतोद्धार पर स्वीकृति की मुहर लगा दी। दूसरे, आपने स्वीकार कर लिया कि केवल ब्राह्मण ही पूज्य नहीं हैं, अपितु चारों वर्ण परस्पर एक-दूसरे के लिए पूज्य हैं। तीसरे, अब परमात्मा की मूर्त्ति बनाने की आवश्यकता ही न रही, जिसे सम्पूर्ण ब्रह्म की पूजा करनी हो वह चारों वर्णों की पूजा कर ले। चौथे, परमात्मा को पुरुष कल्पित करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उसका मुख, भुजा, ऊरू, पाद कल्पना करने का प्रयोजन चारों वर्णों की योग्यता का प्रतिपादन मानकर कर्म से वर्णव्यवस्था को मान लिया। पाँचवें, आपने पुरुष की बलि का खण्डन करके परस्पर-पूजा को ही पुरुषमेधयज्ञ मानकर यज्ञ में हिंसा का निराकरण मान लिया।

(३४८) प्रश्न—दूसरे अर्थ में मुख, बाहू, ऊरू इन तीन पदों को वैसे ही पञ्चम्यन्त बनाना पड़ेगा, जैसे '**पद्भ्यां**' पञ्चम्यन्त है। ऐसा करने पर अर्थ यह होगा कि 'ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य, पैरों से शूद्र। मन्त्र के अन्त में '**अजायत**' क्रिया पड़ी है, जिसका अर्थ है 'उत्पन्न हुए'—यह सृष्टि-उत्पत्ति का अर्थ है। —पृ० ३१०, पं० ११

उत्तर—आपका यह अर्थ सर्वथा असंगत, वेदविरुद्ध और असम्भव है। चूँकि प्रथम मन्त्र में यह प्रश्न है कि इस कल्पित पुरुष के मुखादि कौन हैं, अतः उत्तर यही संगत हो सकता है कि कल्पित पुरुष के मुखादि ब्राह्मणादि ही हैं। जब प्रथम मन्त्र में ब्राह्मणादि की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं है तो उत्तर में ब्राह्मणादि की पैदाइश का वर्णन करना प्रकरणविरुद्ध होने से असंगत है।

चूँकि वेद कहता है कि '**अकायमव्रणमस्नाविरम्**' परमात्मा शरीररहित, घावशून्य तथा नस-नाड़ी के बन्धन से रहित है। जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है तो उसके मुखादि शरीर-अवयवों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति मानना वेदविरुद्ध होने से असत्य है। चूँकि परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वदेशी, निराकार, निरवयव है, अतः उसके शरीर से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति असम्भव है। जब आपका अर्थ ही असंगत, वेदविरुद्ध तथा असम्भव हो गया तो उसके लिए एक विभक्ति के मुक़ाबले में सात विभक्तियों को तब्दील नहीं किया जा सकता। रही बात '**अजायत**' क्रिया की, सो 'अजायत' का अर्थ प्रकट होना, प्रसिद्ध होना भी है। और यदि 'पैदा हुए' ही अर्थ करना है तो 'शूद्र पाँवों के सदृश पैदा हुए' यह अर्थ संगत हो सकता है। यदि 'पद्भ्यां' को चतुर्थ्यन्त मान लें तो पाँव-स्थानी शूद्र पैदा हुए, यह अर्थ भी संगत हो जाता है। आपकी सारी ही कल्पना मिथ्या है।

अब हम यह विचारना चाहते हैं कि आप ब्राह्मणादि को ब्रह्म के मुखादि अवयवों से पैदा होने के असम्भव अर्थ पर इतना बल क्यों दे रहे हैं। हाँ, याद आया आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के उत्पत्ति-स्थानों को भिन्न-भिन्न सिद्ध करके वर्णपरिवर्तन का निषेध करना चाहते हैं, सो हो न सकेगा। देखिए, मनुष्य के शरीर में उपादानकारण माता और पिता का सम्पूर्ण शरीर

होता है, क्योंकि माता-पिता का वीर्य शरीर के अङ्ग-अङ्ग से पैदा होकर बच्चे के शरीर को बनाता है, अतः बच्चे की शक़्ल माता-पिता के शरीर जैसी होती है, माता की योनि तो महज़ बच्चे के बाहर आने का साधन ही होता है। इसी प्रकार आप ब्राह्मणादि की उत्पत्ति ब्रह्म के सारे शरीर से और मुखादि को केवल बाहर आने का साधन योनिवत् मानते हैं या ब्रह्म के मुख, भुजा, ऊरू तथा पाद को पृथक्-पृथक् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की उत्पत्ति में माता-पिता के शरीरवत् उपादानकारण मानते हैं? यदि पहली बात हो कि ब्राह्मणादि के शरीर का उपादानकारण तो ब्रह्म का सारा शरीर है, मुखादि तो केवल योनिवत् बाहर आने का साधन ही है, फिर सारे मनुष्य ही ब्राह्मण हैं, क्योंकि सबके शरीर का उपादानकारण ब्रह्म का सारा शरीर है। बाहर आने के रास्ते भिन्न-भिन्न होने से कोई फ़र्क नहीं पड़ सकता, जैसाकि—

सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यं व्याहरन्ते च ब्रह्म।
तत्त्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि सर्वं विश्वं ब्रह्म चैतत् समस्तम्॥ ८९॥
ब्रह्मास्यतो ब्राह्मणः सम्प्रसूताः, बाहुभ्यां वै क्षत्रियाः सम्प्रसूताः।
नाभ्यां वैश्याः पादतश्चापि शूद्राः, सर्वे वर्णा नान्यथा वेदितव्याः॥ ९०॥

—महा० शान्ति० अ० ३१८

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥ १०॥

—महा० शान्ति० अ० १८८

भाषार्थ—सारे वर्ण ब्राह्मण हैं, क्योंकि ब्रह्म से पैदा हुए हैं और सब ब्रह्म का उच्चारण करते हैं। मैं ब्रह्मबुद्धि से तत्त्व का विचार करके कहता हूँ कि यह सारे-का-सारा जगत् ही ब्रह्म है॥ ८९॥ ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए, भुजा से क्षत्रिय पैदा हुए, नाभि से वैश्य तथा पाँवों से शूद्र पैदा हुए, अतः सारे वर्णों को अन्यथा न जानना चाहिए॥ ९०॥ वर्णों में कोई विशेषता नहीं है। यह सारा ही जगत् ब्राह्मण है। ब्रह्म ने ही पूर्व रचा है और कर्मों के अनुसार वर्णभाव को प्राप्त हो गया॥ १०॥

और यदि दूसरी बात मानें कि ब्रह्म के मुखादि पृथक्-पृथक् ब्राह्मण आदि के शरीरों में माता-पितावत् उपादानकारण हैं तो फिर ब्राह्मणों की आकृति मुख के समान गोल-गोल कद्दू की भाँति होनी चाहिए। क्षत्रियों के शरीर भुजा की भाँति लम्बे-लम्बे डण्डे-से तथा वैश्यों के शरीर पेट की भाँति घड़े के समान वा जाँघों के समान तथा शूद्र के शरीर पग के समान होने चाहिएँ, किन्तु ऐसा संसार में नज़र नहीं आता। चारों वर्णों की आकृति एक-सी ही है और बनावट से किसी ब्राह्मणादि का पता नहीं लगता। इससे सिद्ध है कि ब्रह्म के अंगों से पैदा होने की कल्पना मिथ्या ही है। चारों वर्णों की एक ही मनुष्यजाति है। वर्णों का भेद कर्मानुसार है, जैसाकि—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते। संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः॥ ३१॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः। वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम्॥ ३२॥
इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामह इत्यपि। तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः॥ ३३॥

—महा० वन० अ० १८०

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने कहा कि हे महामति सर्प! यहाँ मनुष्यजाति चारों वर्णों में मिली हुई होने से परीक्षा में नहीं आ सकती—ऐसा मेरा निश्चय है॥ ३१॥ सब वर्णों के पुरुष सब वर्णों की स्त्रियों में सदा सन्तान पैदा करते हैं। वाणी, मैथुन, जन्म, तथा मरण सब वर्णों का समान ही है॥ ३२॥ यह ऋषियों का प्रमाण है कि जो यज्ञ करें वे द्विज हैं, अतः जो तत्त्व के जाननेवाले

हैं, वे गुण-कर्म-स्वभाव को ही वर्णों में प्रधानकारण समझते हैं॥ ३३॥

यदि आप केवल मुख से पैदा होना ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं तो पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि मुख से पैदा होकर भी ब्राह्मण न बने, कई मुख से न पैदा होकर भी ब्राह्मण बन गये, जैसेकि—

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुंगवः। जृम्भमानस्य सहसा मम वक्त्रादजायत॥ ७॥

—वाल्मी० बाल० स० १७

चरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग॥ २६॥
य एते मत्सुता राजन्नर्घ्या ब्राह्मणसत्तमा॥ ३१॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ११७

भाषार्थ—ब्रह्माजी बोले कि पहले-पहल मैंने जाम्बवान् नाम का श्रेष्ठ रीछ पैदा किया। जंभाई लेते हुए मेरे मुख से वह अचानक पैदा हो गया॥ ७॥

चूँकि रीछों का वंशधर जाम्बवान् ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ था तो क्या आप सब रीछों को ब्राह्मण मानने को तैयार हैं? यदि नहीं तो सिद्ध हुआ कि केवल मुख से पैदा होना ब्राह्मणपन में कारण नहीं हो सकता।

सूर्य ने कहा कि दो मेरे चरणों से तथा दो मेरे पाँवों से पैदा हुए॥ २६॥ हे राजन्! जो ये मेरे पुत्र हैं, ये सब पूजा करने के योग्य श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं॥ ३१॥

यहाँ सूर्य के चरणों से पैदा हुए चार पुत्र ब्राह्मण बन गये और अन्यत्र कपिला से ब्राह्मणों की उत्पत्ति बताई है, जैसे—

अमृतं ब्राह्मणा गावो गन्धर्वाप्सरसस्तथा। अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम्॥ ५२॥

—महा० आदि० अ० ६५

भाषार्थ—अमृत, ब्राह्मण, गौवें, गन्धर्व तथा अप्सराएँ दक्ष की पुत्री कपिला से पैदा हुए। यह पुराणों में लिखा है॥ ५२॥

अतः सिद्ध हुआ कि मुख से बिना पैदा हुए भी ब्राह्मण बन सकते हैं। जब मुख से पैदा होकर भी कई ब्राह्मण न बने और कई बिना मुख से पैदा हुए ब्राह्मण बन गये तो केवल मुख से पैदा होना सिद्ध करने के लिए निराकार, शररीरहित ब्रह्म के मुखादि की कल्पना करना वेदविरुद्ध होने से महापाप है।

(३४९) प्रश्न—तृण, अन्न, वृक्ष, पक्षी, पशु, पाषाण प्रभृति किसी भी जाति में गुणाधिक्य और गुणाभाव से परिवर्तन नहीं होता, फिर मनुष्यजाति में कैसे होगा? —पृ० ३१०, पं० २१

उत्तर—श्रीमान्‌जी! होश से बात करें। जाति कहते ही उसको हैं जो पैदा होने से मरने तक कोशिश करने पर भी तब्दील न हो सके। कोई आदमी को गधा तथा गधे को आदमी इनके जीवन में नहीं बना सकता, क्योंकि गधे में गधापन तथा आदमी में आदमीपन ये जातियाँ हैं, जो तब्दील नहीं हो सकतीं; परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये जातियाँ नहीं हैं, ये वर्ण हैं जोकि गुण-कर्म-स्वभाव की तब्दीली से तब्दील भी हो जाते हैं, जैसे—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ २१॥
शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते। न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ २५॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः। यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥ २६॥

—महा० वन० अ० १८

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि हे सर्पराज! सत्य, दान, क्षमा, शील नम्रता, तप, पाप

से घृणा, ये बातें जिसमें नज़र आवें वह ब्राह्मण है॥ २१॥ यदि शूद्र में ये चिह्न वा लक्षण हों और ब्राह्मण में ये लक्षण न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं॥ २५॥ जिसके जीवन में ये लक्षण हों उसका नाम ब्राह्मण और जिसके जीवन में न हों उसी को शूद्र कहते हैं॥ २६॥

इससे सिद्ध है कि और जातियों की भाँति मनुष्यजाति भी तब्दील नहीं हो सकती, वर्ण तब्दील हो जाते हैं, क्योंकि वर्ण और चीज़ है, जाति और चीज़ है।

(३५०) प्रश्न—तद्य इह रमणीयाचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। —छान्दोग्य० ५।१०।७

भाषार्थ—जो यहाँ शुभाचरण करते हैं वे शीघ्र ही रमणीय योनि को प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि वा क्षत्रिययोनि वा वैश्ययोनि को प्राप्त होते हैं, और जो जीव यहाँ निन्दित कर्मवाले हैं वे निन्दितयोनि—कूकरयोनि, शूकरयोनि वा चाण्डालयोनि को प्राप्त होते हैं॥ ७॥

कल्पना करो एक मनुष्य ने पहले जन्म में ऐसे कर्म किये जिन कर्मों से वह शूद्रयोनि में उत्पन्न हुआ और उसका नाम झगड़ू रक्खा गया। अब वह पढ़ गया, पढ़ने पर ब्राह्मण बनना चाहता है, कैसे बनेगा? क्या वह पण्डित शेखरचन्द्र के पूर्वजन्मों के कर्मों से बन जाएगा? वह पूर्वजन्म के कर्म किसके पूर्वकर्म से बदल डालेगा? —पृ० ३१०, पं० २४

उत्तर—यह ठीक है कि किसी जीव का जन्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल के घर पूर्व-शुभाशुभ कर्मों के अनुसार होता है, किन्तु जन्म होने के पश्चात् पिछले कर्म उसको उन्नति और अवनति करने में रुकावट नहीं डालते, क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। पिछले शुभाशुभ कर्मों का फल उसे सुख वा दु:ख के रूप में मिलेगा, किन्तु पिछले किये हुए कर्म अगले किये जानेवाले कर्मों में रुकावट नहीं डालते। यदि अगले किये जानेवाले कर्मों में पिछले किये हुए कर्मों को कारण मान लिया जावे तो जो जीव एक बार पापकर्म करके नीचयोनि को प्राप्त हो जावेगा, फिर वह कभी भी उन्नति कर ही न सकेगा, क्योंकि पिछले पापकर्मों के कारण वह आगे को भी पापकर्म ही करता चला जावेगा और पतित होता चला जावेगा, अत: यही ठीक है कि पिछले किये हुए कर्म अगले किये जानेवाले कर्मों में कारण नहीं हैं; पिछले कर्मों का फल सुख-दु:ख रूप में मिलेगा। आगे को वह स्वतन्त्रता से अच्छे काम करके उन्नति तथा बुरे काम करके अवनति को प्राप्त हो सकता है। यदि कोई जीव अपने पिछले कर्मों के कारण शूद्र के घर पैदा हो गया तो उस झगड़ू शूद्र को अधिकार प्राप्त है कि वह आगे को शुभकर्म करके उन्नति करके ब्राह्मण तक बन सके। वह किसी शेखरचन्द्र के कर्मों से नहीं अपितु अपने इस जन्म के शुभकर्मों से उन्नति करेगा, जैसेकि अनेक व्यक्तियों ने की, देखिए—

असितो देवलश्चैव तथा नारदपर्वतौ। कक्षीवान् जामदग्न्यश्च रामस्ताण्ड्यस्तथात्मवान्॥ १५॥
वसिष्ठो जमदग्निश्च विश्वामित्रोऽत्रिरेव च। भरद्वाजो हरिश्मश्रुः कुण्डधारः श्रुतश्रवाः॥ १६॥
एते महर्षयः स्तुत्वा विष्णुमृग्भिः समाहिताः। लेभिरे तपसा सिद्धिं प्रसादात्तस्य धीमतः॥ १७॥
अनर्हाश्चार्हतां प्राप्ताः सन्तः स्तुत्वा तमेव ह। न तु वृद्धिमिहान्विच्छेत् कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्॥ १८॥
—महा० शान्ति० अ० २९२

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मसु। दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत्॥ १२॥
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः। तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः॥ १३॥
—महा० वन० अ० २१५

भाषार्थ—असित और देवल तथा नारद और पर्वत, कक्षीवान्, जामदग्न्य राम तथा आत्मवान् ताण्ड्य॥ १५॥ वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र तथा अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधर, श्रुतश्रवा॥ १६॥

ये महर्षि एकाग्र मन से ऋचाओं द्वारा विष्णु की स्तुति करके उस बुद्धिमान् की दया से तप द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए॥ १७॥ अपूज्य थे किन्तु उसी सन्त की स्तुति करके पूज्यपन को प्राप्त हो गये। इस संसार में किसी मनुष्य को पापकर्म करके वृद्धि की इच्छा नहीं करनी चाहिए॥ १८॥

ब्राह्मण पतित करनेवाले पापकर्मों में वर्त्तमान हुआ, मक्कार, कुकर्मी प्रायः शूद्र के सदृश होता है॥ १२॥ जो शूद्र दम, सत्य और धर्म में सदा उन्नति करता है, उसको मैं ब्राह्मण मानता हूँ, क्योंकि आचार से ही द्विज होता है॥ १३॥

इससे सिद्ध हुआ कि पूर्वकर्मानुसार हीनवर्ण में पैदा होकर भी पुरुषार्थ से प्रत्येक मनुष्य उन्नति करके ब्राह्मण तक के पद को प्राप्त हो सकता है।

(३५१) प्रश्न—जाति नाम शरीर का है। वह बदलेगा कैसे? कदापि नहीं बदल सकता।
—पृ० ३११, पं० १३

उत्तर—श्रीमान्जी! यदि जाति नाम शरीर का है तो भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बनने के लिए शरीर के बदलने की आवश्यकता नहीं, अपितु गुण-कर्म-स्वभाव के बदलने से ही वर्ण बदल जाता है, जैसेकि—

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः। वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः॥ २॥
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः। नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते॥ ३॥
सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा। तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ ४॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगतः। दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते॥ ५॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः। वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥ ६॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः। त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः॥ ७॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्मं द्विजे तच्च न विद्येत। न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च॥ ८॥
—महा० शान्ति० अ० १८९

भाषार्थ—जो जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत, शुद्ध, वेदों का स्वाध्याय करनेवाला छह कर्मों में स्थित हो॥ २॥ शुद्ध आचार में स्थित, पापरहित भोजन करनेवाला, गुरु का प्यारा, सदा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करनेवाला, सत्यवादी हो, वही ब्राह्मण कहा जाता है॥ ३॥ सत्य, दान, अद्रोह, नम्रता, कुकर्म से लज्जा, दया तथा तप, ये जहाँ पर नज़र पड़ें वह ब्राह्मण कहा जाता है॥ ४॥ क्षत्रियों के कर्मों का सेवन करनेवाला, वेदों के अध्ययन में लगा हुआ, कर लेना तथा दान देने में जो प्रेमी हो, वह क्षत्रिय कहा जाता है॥ ५॥ जो पशुओं की विद्या में शीघ्र प्रवेश करनेवाला, खेती करने, दान देने में प्रेमी, शुद्ध, वेदाध्ययन करनेवाला हो, उसकी वैश्य संज्ञा है॥ ६॥ जो सदा सर्वभक्ष में प्रेमी, सब सेवा के काम करनेवाला, अशुद्ध रहनेवाला, वेदों का पढ़ना जिसने छोड़ दिया, आचारहीन हो, वह शूद्र कहाता है॥ ७॥ ये लक्षण यदि शूद्र में हों तथा द्विज में न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं तथा वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, अर्थात् जिसमें जो लक्षण हों वह वही है॥ ८॥

यहाँ कैसे स्पष्ट शब्दों में चारों वर्णों के गुण-कर्म-स्वभाव तथा वर्ण-परिवर्तन का वर्णन है!

यद्यपि जातिशब्द वर्ण के लिए प्रयुक्त करना उचित नहीं, तथापि जहाँ पर किसी ग्रन्थकार ने वर्ण के लिए जाति शब्द प्रयुक्त किया है, वहाँ पर जाति को परिवर्तनशील तथा जाति को शरीर से भिन्न भी माना जाता है, जैसे—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत। आचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साजरामरा॥ ८॥
—महा० उद्योग० अ० ४४

भाषार्थ—हे भारत! पिता और माता ये दोनों शरीर को बनाते हैं। आचार्य से नियत की हुई जो जाति है वही पवित्र, अजर और अमर है।

यहाँ स्पष्टरूप से जाति को शरीर से भिन्न तथा परिवर्तनशील माना है, अत: यहाँ जाति नाम वर्ण का है, किसी वस्तु का नहीं।

(३५२) प्रश्न—योगदर्शन लिखता है जिस कर्म से जाति, आयु, भोग मिले हैं, जबतक उस कर्म को नहीं भोग लिया जावेगा जाति, आयु, भोग बदल नहीं सकते।

—पृ० ३११, पं० १५

उत्तर—आपने वह सूत्र क्यों नहीं दिया? केवल योगदर्शन का नाम लिखकर मनमाना अर्थ लिख दिया। लीजिए, हम मूल सूत्र और उसका वास्तविक अर्थ देते हैं—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। —योग० २।१३

भाषार्थ—कर्मों के मूलकारण के विद्यमान रहने पर उसके फलस्वरूप मनुष्य को जाति, आयु तथा भोग मिलता है।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार जाति, आयु तथा भोग मिलता है। यहाँ भी जाति शब्द वर्ण का ही वाचक है। जैसे कंगाल आदमी पुरुषार्थ से सम्पत्ति प्राप्त करके भोग बदल सकता है, जैसे मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि साधनों से आयु को अधिक कर सकता है वैसे ही प्रत्येक मनुष्य गुण-कर्म-स्वभाव से जन्मजाति को भी बदल सकता है, जैसेकि—

उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र च। स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः॥ १३॥
पितामहश्च मे पूर्वमृष्यश्रृङ्गकश्यपः। वेदस्ताण्ड्यः कृपश्चैव कक्षीवान् कमठादयः॥ १४॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः। आयुर्मतङ्गो दत्तश्च द्रुपदो मात्स्य एव च॥ १५॥
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽऽश्रयात्। प्रतिष्ठिता वेदविदो दमेन तपसैव हि॥ १६॥
मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव। अङ्गिराः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च॥ १७॥
कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव। नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहणं सताम्॥ १८॥

—महा० शान्ति० अ० २९६

भाषार्थ—मुनि लोगों ने जहाँ कहीं से पुत्रों को पैदा करके हे राजन्! उनको अपने तप से फिर ऋषि बना दिया॥ १३॥ मेरा दादा वसिष्ठ, ऋष्यश्रृङ्ग, कश्यप, वेद, ताण्ड्य, कृप, कक्षीवान्, कमठ आदि॥ १४॥ यवक्रीत, द्रोणाचार्य, आयु, मतङ्ग, दत्त, द्रुपद, मात्स्य॥ १५॥ हे जनक! ये सब तप के आश्रय से अपनी पदवी को प्राप्त हुए, वेद के जानने से प्रतिष्ठित हुए, दम तथा तप से उन्नति कर गये॥ १६॥ हे राजन्! मूलगोत्र चार ही पैदा हुए—अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु॥ १७॥ हे राजन्! अन्य गोत्र कर्म से पैदा हुए। सत्पुरुषों के तप के कारण नाम ग्रहण कर लिये गये॥ १८॥

इससे स्पष्ट है कि कर्मानुसार आयु तथा भोग की भाँति ही जाति अर्थात् वर्ण भी कर्मानुसार बदल जाता है।

(३५३) प्रश्न—वेद में अनेक जातियों का वर्णन है। यजुर्वेद १६।२८ में निषादजाति का, १६।२६ में क्षत्ताजाति का, १६।२८ में तक्ष, रथकार, कुम्हारजाति का, ३०।५ में अयोगू, मागधजाति का, ३०।६ में सूत, शैलूष, रथकारजाति का, ३०।७ में मणिकारजाति का, ३०।८ में धानुकजाति का, ३०।११ में पीलवान्, साईस, गोपाल, अजपाल, सुराकारजाति का, ३०।१६ में धीवर, दाश, वैन्द, कैवर्त्त, किरातजाति का , ३०।१७ में हिरण्यकार, ३०।२० में वीणावादक तलवजाति का, ३०।२१ में चाण्डालवंश नर्तनजाति का, ३०।१२ में धोबी, रंगरेज़जाति का,

३०।१५ में चमारजाति का, ३०।१६ में भीलजाति का, ३०।१४ में लुहारजाति का नाम मौजूद है। यदि गुणाधिक्य और गुणहीनता के आधार पर चार ही जातियाँ बन सकती हैं, तो फिर वेद ने इन विविध जातियों का उल्लेख क्यों किया? —पृ० ३११, पं० १९

उत्तर—आप भी विचित्र प्रकृति के मनुष्य हैं। आप झूठ बोलने को तो चूर्ण की गोली समझते हैं। आपने यजुर्वेद के जितने प्रमाण पेश किये हैं एक में भी जाति शब्द मौजूद नहीं है और न ही वेद मनुष्यों में आपके कपोलकल्पित जातिभेद को मानता है। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के जो मन्त्र आपने दिये हैं इनमें तो प्रत्येक प्रकार के मनुष्य के साथ यथायोग्य बर्ताव की वेद ने शिक्षा दी है। इनमें जातियों की गन्ध भी नहीं है, जैसेकि—

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽरथिभ्यश्च वो नमो नमः क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च व नमो नमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ २६॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृग्युभ्यश्च वो नमः॥ २७॥

—यजुः० अ० १६

भाषार्थ—हे राज और प्रजा के पुरुषो! जैसे हम लोग शत्रुओं को बाँधनेहारे सेनास्थ पुरुषों का सत्कार करते और तुम सेना के नायक प्रधानपुरुषों को अन्न देते हैं; प्रशंसित रथवाले पुरुषों का सत्कार और तुम रथों से पृथक् पैदल चलनेवालों का सत्कार करते हैं; क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए के लिए अन्नादि पदार्थ देते और तुम अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करनेहारों का सत्कार करते हैं; विद्या और अवस्था में वृद्ध, पूजनीय महाशयों को अच्छा पकाया हुआ अन्नादि देते और तुम क्षुद्राशय, शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का निरन्तर सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी दिया-किया करो॥ २६॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिए कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें॥ २६॥

हे मनुष्यो! जैसे राजा आदि हम लोग पदार्थों को सूक्ष्मक्रिया से बनानेहारे तुमको अन्न देते और बहुत-से विमानादि यानों को बनानेहारे तुम लोगों को परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं, मिट्टी के प्रशंसित पात्र बनानेवालों को अन्नादि पदार्थ देते और खड्ग, बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनानेवाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं, वन और पर्वतादि में रहकर दुष्ट जीवों को ताड़ना देनेवाले तुमको अन्नादि देते और श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण तुम्हारा सत्कार करते हैं, कुत्तों को शिक्षा करनेहारे तुमको अन्नादि देते और अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहनेवाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं, वैसे तुम लोग भी करो॥ २७॥

भाषार्थ—विद्वान् लोग जो पदार्थविद्या को जानके अपूर्व कारीगरीयुक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषिक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं की अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें॥ २७॥

कहिएगा श्रीमान्‌जी! इनमें जातियों का वर्णन कहाँ है!

(१) १६।२६ में किसी क्षत्ता नाम की जाति का वर्णन नहीं है, अपितु वेद ने एक उदाहरण देकर हमें यह आज्ञा दी है कि प्रतिलोमज सन्तान का भी गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार यथावर्ण अन्नादि पदार्थों तथा नमस्करादि प्रिय शब्दों से सत्कार करो।

(२) १६।२७ में किसी निषादजाति का वर्णन नहीं है, अपितु जो वन और पर्वतादि में रहकर दुष्ट जीवों को ताड़ना दे, उसी का नाम निषाद है।

(३) १६।२७ में तक्ष नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो पदार्थों को सूक्ष्मक्रिया

से बनावे, उसी का नाम तक्ष है।

(४) १६।२७ में रथकार किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो बहुत-से विमानादि यानों को बनावे, उसी का नाम रथकार है।

(५) १६।२७ में कुम्भकार व कुलाल किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो मिट्टी के प्रशंसित पात्र बनावे उसी का नाम कुलाल है।

यजुर्वेद के इन दोनों मन्त्रों में जैसे सेना, सेनानी, रथि, अरथि, संग्रहीता, महान्, अर्भक, कर्म, पुञ्जिष्ठ, श्वनि, मृग्यु—ये विशेष जातियों के नाम नहीं, अपितु विशेष गुणवाले तथा विशेष अवस्थावाले मनुष्यों के वर्णन **हैं**, वैसे ही क्षत्ता, तक्ष, रथकार, कुलाल तथा निषाद भी विशेष गुणों के कारण उपर्युक्त सब प्रकार के विशेष गुण रखनेवाले मनुष्य का अन्नादि पदार्थों तथा नमस्कार आदि प्रियवचनों से आदर-सत्कार करने की वेद ने आज्ञा दी है।

अब रही बात यजुर्वेद के तीसवें अध्याय की, सो इसमें भी कर्मानुसार मनुष्यजाति के विभागों का वर्णन है, विशेष जातियों का वर्णन नहीं है। इस बात को स्वयं वेद ही कहता है; जैसेकि—

विभक्तारꣳहवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्॥ ४॥—यजुः० अ० ३०

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस सुखों के निवास के हेतु, आश्चर्यरूप धन का विभाग करनेहारे, सबके उत्पादक, सब मनुष्यों के अन्तर्यामी, स्वरूप से सब कामों के देखनेहारे परमात्मा की हम लोग प्रशंसा करें, उसकी तुम लोग भी प्रशंसा करो॥ ४॥

भावार्थ—हे राजन्! जैसे ईश्वर अपने-अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है, वैसे आप भी देओ। जैसे जगदीश्वर जैसा जिसका पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना, वैसा फल उसके लिए देता है, वैसे आप भी जिसका जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उसको वैसा वा उतना, फल दीजिए। जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़कर सब जीवों में वर्त्तता है, वैसे आप भी हूजिए॥ ४॥

इसकी पुष्टि आपके भाष्यकार उव्वट भी करते हैं कि—

'विभक्तारं कर्मानुरूपेण विभक्तारम्' कर्मों के अनुसार विभाग करनेवाले परमात्मा को स्वीकार करें।

बस इस मन्त्र की रोशनी में सारे अध्याय का अर्थ कर्मानुसार (पेशों के अनुसार) मनुष्यजाति का विभाग करना है, जैसेकि—

(६) **'आक्रयाया अयोगूम्'** [३०।५] में अयोगू किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो लोहे के हथियारविशेष के साथ चलनेवाला जन हो, उसी का नाम अयोगू है।

(७) **'अतिक्रुष्टाय मागधम्'** [३०।५] इस मन्त्र में मागध किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो मनुष्यों की प्रशंसा करे, उसी का नाम मागध है।

(८) **'नृत्ताय सूतम्'** [३०।६] इस मन्त्र में सूत किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो नाचने का काम करे, उसी का नाम सूत है।

(९) **'गीताय शैलूषम्'** [३०।६] में शैलूष किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो गानेहारा नट का काम करे, उसी का नाम शैलूष है।

(१०) **'मेधायै रथकारम्'** [३०।६] इस मन्त्र में रथकार किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो विमानादि का रचनेहारा कारीगर हो, उसी का नाम रथकार है।

(११) **'रूपाय मणिकारम्'** [३०।७] इस मन्त्र में मणिकार किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी मणियों के बनाने का काम करे, उसी का नाम मणिकार है।

(१२) **'नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम्'** [३०।८] इस मन्त्र में पौंजिष्ठ नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो जन नदियों को बिगाड़ने के लिए प्रवृत्त हो, उसका नाम पौंजिष्ठ है।

(१३) **'अर्मेभ्यो हस्तिपम्'** [३०।११] यहाँ पर हस्तिप नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो हाथियों का रक्षक हो, उसी का नाम हस्तिप है।

(१४) **'जवायाश्वपम्'** [३०।११] यहाँ पर अश्वप किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो कोई भी घोड़ों का रक्षक, शिक्षक होगा, उसी का नाम अश्वप होगा।

(१५) **'पुष्ट्यै गोपालम्'** [३०।११] यहाँ पर गोपाल किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो गौवों के पालनेहारा हो, उसी का नाम गोपाल है।

(१६) **'वीर्यायाविपालम्'** [३०।११] यहाँ पर अविपाल किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भेड़ों का पालन-पोषण करे, उसी का नाम अविपाल है।

(१७) **'तेजसेऽजपालम्'** [३०।११] यहाँ पर अजपाल किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो बकरियों की रक्षा करे, उसी का नाम अजपाल है।

(१८) **'कीलालाय सुराकारम्'** [३०।११] यहाँ पर सुराकार किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी सोम आदि ओषधियों का रस निकालनेवाला हो, उसी का नाम सुराकार है।

(१९) **'सरोभ्यो धैवरम्'** [३०।१६] यहाँ पर धीवर नाम किसी विशेषजाति का नहीं है अपितु जो समुद्र, नदी, तालाब आदि में तैरने आदि की बुद्धिपूर्वक क्रिया को ग्रहण करता है, उसी का नाम धीवर है।

(२०) **'उपस्थावराभ्यो दाशम्'** [३०।१६] इस मन्त्र में दाश नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जिसको खानपान देकर सेवक के काम पर लगाया जावे, उसी का नाम दाश है।

(२१) **'वैशन्ताभ्यो वैन्दम्'** [३०।१६] यहाँ पर वैन्द नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो छोटे-छोटे जलाशयों का प्रबन्ध करे, उसी का नाम वैन्द है।

(२२) **'अवाराय कैवर्तम्'** [३०।१६] यहाँ पर कैवर्त नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो जल में नौका को इस पार, उस पार पहुँचानेवाला हो, उसी का नाम कैवर्त है।

(२३) **'गुहाभ्यः किरातम्'** [३०।१६] यहाँ किरात नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो पहाड़ों की गुहा में रहनेवाला, जंगली मनुष्य हो, उसी का नाम किरात है।

(२४) **'वर्णाय हिरण्यकारम्'** [३०।१७] यहाँ पर हिरण्यकार नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो भी सोने आदि धातुओं का काम करे, उसी का नाम हिरण्यकार है।

(२५) **'महसे वीणावादम्'** [३०।२०] यहाँ पर वीणावाद किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी वीणा बजावे, उसी का वीणावाद है।

(२६) **'आनन्दाय तलवम्'** [३०।२०] यहाँ पर तलव नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो भी राग में ताली आदि के बजानेवाला हो, उसे ही तलव कहते हैं।

(२७) **'वायवे चाण्डालम्'** [३०।२१] यहाँ पर चाण्डाल नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो भी नीच काम करे, उसी का नाम चाण्डाल है।

(२८) **'अन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनम्'** [३०।२१] यहाँ पर वंशनर्ती किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी बाँस लेकर उससे नाचने, खेलने का काम करे, उसी का नाम वंशनर्ती है।

(२९) **'मेधाय वासः पल्पूलीम्'** [३०।१२] यहाँ पर वास:पल्पूली किसी विशेषजाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी वस्त्रों को साफ करनेवाली ओषधि वा स्त्री हो उसी का नाम

वास:पल्पूली है।

(३०) **'प्रकामाय रजयित्रीम्'** [३०।१२] यहाँ पर रजयित्री नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो भी उत्तम रंग करनेवाली ओषधि व स्त्री हो, उसका नाम रजयित्री है।

(३१) **'साध्येभ्यश्चर्मम्नम्'** [३०।१५] यहाँ पर चर्मम्न नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो चमड़े के विज्ञान में अभ्यास करनेवाला है, उसी का नाम चर्मम्न है।

(३२) **'स्वनेभ्यः पर्णकम्'** [३०।१६] यहाँ पर्णक नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो रक्षा करने में निन्दित हो, उसी का नाम पर्णक है।

(३३) **'मन्यवेऽयस्तापम्'** [३०।१४] यहाँ पर अयस्ताप नाम किसी विशेषजाति का नहीं है, अपितु जो भी लोहे को तपाकर उससे विविध प्रकार की वस्तुएँ बनावे, उसी का नाम अयस्ताप है।

ये जातियाँ नहीं हैं, अपितु कर्मानुसार, पेशे के अनुसार मनुष्यजाति के भेदों का वर्णन है और पेशे के बदलने से नाम भी बदल जाते हैं। इनमें से मागध, शैलूष, तलव, वीणावाद—ब्राह्मण; और अयोगू, वैन्द, पर्णक—क्षत्रिय; तथा तक्ष, रथकार, कुम्भकार, मणिकार, हस्तिप, अश्वप, गोपाल, अविपाल, अजपाल, सुराकार, धैवर, कैवर्त, हिरण्यकार, वंशीनर्ती, पल्पूली, रजयित्री, चर्मम्न, अयस्ताप, ये सब वैश्य; तथा दाश शूद्र वर्ण में हैं। चाण्डाल, पौंजिष्ठ, सूत, निषाद, तथा किरात—ये अतिशूद्र हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्यजाति में ये कर्मानुसार नामभेद चार वर्णों में आ जाता है और जो चार वर्ण से बाहर हैं वे अतिशूद्र कहे जाते हैं, अत: यहाँ जन्म-जाति का वर्णन नहीं, अपितु कर्मानुसार मनुष्यजाति में वर्णभेद तथा नामभेद का वर्णन है।

(३५४) प्रश्न—जाति का आधार पेशा नहीं है, किन्तु रज-वीर्य है, फिर हम कैसे मान लें कि जाति पेशे से होती है? —पृ० ३१२, पं० १४

उत्तर—हम जाति का आधार पेशा नहीं मानते, अपितु वर्ण का आधार पेशा मानते हैं। और यदि जाति शब्द से आपका अभिप्राय वर्ण से है तो वर्ण का आधार रज-वीर्य नहीं है, अपितु गुण-कर्म-स्वभाव है और गुण-कर्म-स्वभाव की तब्दीली हो जाती है, जैसेकि—

शरीरमेव सृजतः पिता माता च भारत। आचार्यशिष्टा या जातिः सा दिव्या साजरामरा॥ १८॥

—महा० शान्ति० अ० १०८

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः॥ १३॥ —महा० भीष्म० अ० २८

वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम्॥ १०॥
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योधव्यं क्षत्रबन्धुना। शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल॥ ११॥
सलिलादुत्थितो वह्निर्येन व्याप्तं चराचरम्। दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम्॥ १२॥
आग्नेयः कृत्तिका पुत्रो रौद्रो गाङ्गेय इत्यपि। श्रूयते भगवान् देवः सर्वगुह्यमयो गुहः॥ १३॥
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः। विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम्॥ १४॥
आचार्यः कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्रभृतां वरः। गौतमस्यान्ववाये च शरस्तम्बाच्च गौतमः॥ १५॥
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं मया॥ १६॥

—महा० आदि० अ० १३९ [गी० सं० में अ० १३६]

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये। सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति॥ ३५॥
यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति। तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते॥ ३६॥

—महा० आदि० अ० १३८ [गी० सं० में अध्याय १३५।—सं०]

एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान्॥ ९॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्। देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत्॥ १०॥
तथा च कौशिकस्तात तपो नित्यो जितेन्द्रियः। तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान्॥ ११॥

—महा० शल्य० अ० ४०

भाषार्थ—हे भारत! माता-पिता तो शरीर को ही बनाते हैं, परन्तु आचार्य्य से नियत की हुई जो जाति है वही दिव्य है, वही अजर और अमर है॥ १८॥ मैंने चारों वर्णों को गुण-कर्म के विभाग से बनाया है॥ १३॥ हे भीम! इस प्रकार की बात कहना तुम्हें योग्य नहीं है॥ १०॥ क्षत्रियों में बल ही प्रधान है, क्षत्रियबन्धु से युद्ध करना चाहिए। शूरवीर और नदियों के निकास जानने कठिन हैं॥ ११॥ पानी से आग पैदा हुई जो सारे जगत् को व्याप्त कर रही है। दधीचि की हड्डी से दानवों का नाशक वज्र बनाया गया॥ १२॥ कृत्ति का पुत्र कार्तिकेय अग्नि से पैदा हुए, गाङ्गेय रुद्र से पैदा हुआ, सुनते हैं कि देव सर्वगुह्यमय गुहक था॥ १३॥ क्षत्रियों में से कई-एक ब्राह्मण बन गये, विश्वामित्र आदि अक्षय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए॥ १४॥ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य कलश से पैदा हुए। गौतम के कुल में शरस्तम्ब से कृपाचार्य पैदा हुए॥ १५॥ और आप लोगों का भी जैसे जन्म हुआ है, मैं जानता हूँ॥ १६॥

हे आचार्य! शास्त्र के निश्चयानुसार राजाओं की तीन प्रकार की योनि है—सत्कुलीन, शूरवीर, और सेनापति॥ ३५॥ यदि यह अर्जुन युद्ध में बिना राजा के साथ युद्ध करना नहीं चाहता तो मैं दुर्योधन इस कर्ण का अङ्गदेश के राज्य के लिए अभिषेक करता हूँ॥ ३६॥

वह प्रतापी अर्ष्टिषेण इस प्रकार से सिद्ध बन गया॥ ९॥ उसी तीर्थ में प्रतापी सिन्धुद्वीप और देवापि दोनों ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये॥ १०॥ हे प्यारे! विश्वामित्र भी इन्द्रियों को जीत, तपकर, उस तप से ब्राह्मण बन गया॥ ११॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि कोई मनुष्य कहीं से भी पैदा हुआ हो, किन्तु वह गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार प्रत्येक वर्ण को प्राप्त हो सकता है। वर्ण का आधार जन्म तथा रजवीर्य शरीर में ही कारण है। वर्ण की तब्दीली के लिए शरीर की तब्दीली की आवश्यकता नहीं, पेशे के बदलने से वर्ण भी बदल जाता है।

(३५५) प्रश्न—ब्राह्मण्यां वैश्यसंर्गाज्जातो मागध उच्यते।
वन्दित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः॥ —औशनसस्मृति

भाषार्थ—ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग से उत्पन्न हो उसे मागध कहते हैं। यह ब्राह्मणों तथा विशेषकर क्षत्रियों का वन्दी [स्तुति करनेवाला] होता है।

एक मागधजाति का यह नियम नहीं है, वरनां जितनी भी जातियाँ स्मृतियों ने दिखलाई हैं, पहले उन जातियों की उत्पत्ति का कारण, फिर जाति का नाम, नाम के पश्चात् जाति का पेशा बतलाया है। इस व्यवस्था को देखकर कोई भी न्यायशील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि पेशे से जातियाँ बनती हैं।

—पृ० ३१२, पं० २६

उत्तर—वेद ने **'क्षत्तृभ्यो नमः'** यजुः० १६।२६ में इशारा करके हमें बतला दिया कि प्रतिलोमजों की कर्मानुसार यथावर्ण आदर-सत्कार, नमस्कारादि प्रियवचनों से पूजा करो। इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिलोमजों की उनके कर्मों के अनुसार वर्णव्यवस्था करके तदनुसार उनका सत्कार करना चाहिए। इसी बात का मनुजी महाराज ने वर्णन किया है—

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ ४२॥

—मनु० १०

भाषार्थ—वे अनुलोमज तथा प्रतिलोमज प्रत्येक युग में प्रतिलोमज तप के प्रभाव से तथा अनुलोमज तप और बीज के प्रभाव से इस संसार में मनुष्यों में जन्म की अपेक्षा ऊँचे तथा नीचे

वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं॥ ४२॥

जब अनुलोमज तथा प्रतिलोमज कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बन सकते हैं तो फिर आपकी वह थ्यूरी कि पहले वर्ण का निश्चय होकर फिर कर्म का निश्चय होना चाहिए, वेद के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है और आपकी स्मृति भी वेदविरुद्ध होने से अप्राण तथा मिथ्या प्रलाप ही है।

(३५६) प्रश्न—वन्ध्या गौ न प्रसूता होती है और न दूध ही देती है, किन्तु जाति की वह गौ ही रहती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण का कार्य न कर सकने पर भी ब्राह्मण ही रहता है। —पृ० ३१३, पं० १

उत्तर—आपका दृष्टान्त विषम होने से असत्य है, क्योंकि गौजाति की भाँति ब्राह्मणजाति नहीं है, अपितु ब्राह्मण वर्ण है। हाँ, गौजाति की भाँति मनुष्यजाति है। जैसे वन्ध्या गौ प्रसूता न होने तथा दूध न देने पर भी गौ ही रहती है, इसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी विद्या और गुणहीन होने पर भी जाति से मनुष्य ही रहता है। जैसे वन्ध्या गौ को दुधार नहीं कह कते, ऐसे ही मूर्ख मनुष्य को भी ब्राह्मण नहीं कह सकते। मनुष्यजाति में गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं, जो कि गुण-कर्म-स्वभाव के तब्दील होने पर तब्दील हो जाते हैं, जैसाकि—

(१) **पृथुस्तु विनयाद् राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।**
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः॥ —मनु० ७।४२
गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्। —कुल्लूकभट्ट

भावार्थ—विनय से पृथु और मनु ने राज्य को प्राप्त किया तथा कुबेर ने विनय से धनैश्वर्य को प्राप्त किया। और गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने क्षत्रिय होते हुए उसी देह से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया॥ ४३॥

(२) **सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।**
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥ —मनु० १०।९२

भाषार्थ—ब्राह्मण मांस, लाख और नमक के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है और तीन दिन दूध बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

(३) **वासिष्ठीं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः॥** —महा० वन० अ० ८४।४८

भाषार्थ—वासिष्ठी नदी में स्नान करने से सब वर्ण ब्राह्मण बन जाते हैं॥ ४८॥

(४) **इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मणाभवत्॥** —महा० शान्ति० अ० २२।११

भाषार्थ—इन्द्र ब्रह्मा का पुत्र होकर भी कर्म से क्षत्रिय बन गया॥ ११॥

(५) **शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धुर्दुश्चरित्रो यश्च धर्मादपेतः।**
वृषलीपतिः पिशुनो नर्त्तनश्च ग्रामप्रेष्यो यश्च भवेद्विकर्मा॥ ४॥
—महा० शान्ति० अ० ६३

भाषार्थ—हे राजन्! जो ब्राह्मण बदचलन, धर्म से पतित, शूद्रापति, चुग़लखोर, नचनवा, सिंधारा पहुँचानेवाला, और दुष्कर्मी हो, वह शूद्र हो जाता है॥ ४॥

(६) युधिष्ठिर उवाच — **वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः।**
तदेव तावद् गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो॥ ३॥
भीष्म उवाच — **शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।**
राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्॥ ५॥
—महा० अनुशा० अ० ३०

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि मैंने सुना है कि राजा वीतहव्य ब्राह्मण बन गया। हे गाङ्गेय प्रभो! वह अब मैं सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

भीष्म ने उत्तर दिया कि हे राजन्! जिस प्रकार से राजर्षि वीतहव्य महान् यशस्वी, पूजा के योग्य ब्राह्मणपद को प्राप्त हुआ, वह सुनिए॥ ५॥

राजा प्रतर्दन ने वीतहव्य के पुत्रों पर चढ़ाई की और उसने वे सब लड़ाई में मार दिये। तब वीतहव्य नगर से भागकर भृगु के आश्रम में चला गया। भृगु ने उसको अभयदान दिया। उसके पीछे-ही-पीछे प्रतर्दन गया और आश्रम में आवाज़ दी। तब भृगुमुनि बाहर निकले और राजा प्रतर्दन का सत्कार किया। प्रतर्दन ने कहा कि आपके आश्रम में वीतहव्य राजा आया है। उसने हमारा वंशनाश कर दिया है। मैं उसका वध करूँगा। यह सुनकर भृगुजी बोले—

तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्मभृतां वरः॥ ५२॥
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित् सर्वे हीमे द्विजातयः। एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः॥ ५३॥
पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्। एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः॥ ५४॥
य एष राजा वीर्येण स्वजातिं त्याजितो मया। अनुजानीहि मां ब्रह्मन् ध्यायस्व च शिवेन माम्॥ ५५॥
त्याजितो हि मया जातिमेष राजभृगूद्वह। ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः॥ ५६॥
यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिवोरगः। भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः॥ ५७॥
एवं विप्रत्वमगमद् वीतहव्यो नराधिपः। भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ॥ ६६॥

—महा० अनुशा० प्र० ३०

भाषार्थ—धर्म धारण करनेवालों में श्रेष्ठ भृगु दयालु होकर प्रतर्दन से बोले॥ ५२॥ इनमें से क्षत्रिय यहाँ कोई भी नहीं है। ये सब ब्राह्मण हैं। इस प्रकार से भृगु की सत्य वाणी को सुनकर प्रतर्दन॥ ५३॥ आहिस्ता से पाँव छूकर हर्षपूर्वक यूँ बोला—''भगवन्! मैं इस प्रकार से भी निःसन्देह कृतकृत्य हूँ॥ ५४॥ क्योंकि मैंने अपने बल से इस राजा को अपनी जाति से हीन कर दिया। हे ब्राह्मण! मुझे आज्ञा दें तथा मेरे लिए कल्याण-वचन दें॥ ५५॥ हे भृगुद्वह! मैंने यह राजा जाति से हीन कर दिया। उसके पीछे राजा प्रतर्दन आज्ञा लेकर चला गया॥ ५६॥ जिधर से आया था उधर ही चला गया, जैसे साँप विष का त्याग करके चला जाता है। भृगु के वचनमात्र से ही वह वीतहव्य ब्रह्मर्षिपद को प्राप्त हो गया॥ ५७॥ राजा वीतहव्य इस प्रकार से ब्राह्मणपद को प्राप्त हो गया। हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर! हे राजेन्द्र! इस प्रकार भृगु की कृपा से क्षत्रिय वीतहव्य ब्राह्मण बन गया॥ ६६॥

(७) **नाभागो दिष्टपुत्रोऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः। स्वक्षत्रवंशं संस्थाप्य ब्रह्मकर्मभिरावृतः॥ ४८॥**
धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ॥ ४९॥ —शिव० उमा० अ० ३६

भाषार्थ—नाभाग दिष्ट के पुत्र हुए और ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए, अपने क्षत्रियवंश का स्थापन करके ब्राह्मण के कर्मों में प्रवृत्त हुए॥ ४८॥ धृष्ट से धार्ष्ट हुए, वे पहले क्षत्रिय थे, फिर पृथिवी पर ब्राह्मण बन गये॥ ४९॥

(८) **वृषघ्नस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणाः कृतः।**
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः॥ ५३॥
स एकदाऽऽगतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली।
श्रुत्वा गोक्रन्दनं बुद्धो हन्तुं तं खड्गधृग्ययौ॥ ५४॥
अजानन्नहनद् बभ्रोशिशरश्शार्दूलशंकया।
निश्चक्राम सभीर्व्याघ्रो दृष्ट्वा तं खड्गिनं प्रभुम्॥ ५५॥

श्रुत्वा तद् वृत्तमाज्ञाय तं शशाप कृतागसम्।
अकामतो विचार्येति शूद्रो भव न क्षत्रियः॥५८॥
एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्येण कोपतः।
निसृतश्च वृषघ्नस्तु जगाम विपिनं महत्॥५९॥

—शिव० उमा० अ० ३६

भाषार्थ—वृषघ्ननाम मनुपुत्र को गुरु ने गोपाल बनाया और वह वीरासन लगा सावधान हो रात्रि में गौवों का पालन करता था॥५३॥ किसी समय गौवों को मारने के लिए गोशाला में आये व्याघ्र को देख गौवों के रुदन को सुन, जागके उसको मारने के लिए खड्ग धारण करके वह बली गया॥५४॥

और सिंह के भ्रम से बिना जाने गाय के बछड़े के शिर को काट दिया। तब उस खड्गधारी प्रभु को देख वह व्याघ्र भयभीत हो बाहर निकल गया॥५५॥ उस वृत्तान्त को सुनके गुरु ने उस अपराधी को शाप दिया। अकाम से, बिना विचार के काम करने से तू शूद्र होगा, क्षत्रिय न रहेगा॥५८॥ इस प्रकार कुलाचार्य गुरु ने उसे क्रोध से शाप दिया। तब वृषघ्न निकलके सघन वन में चला गया॥५९॥

(९) **इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः।**
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति॥९३॥ —मनु० १०

भाषार्थ—और व्यापार की चीज़ों को इच्छानुसार इस संसार में बेचने से ब्राह्मण सात रात में वैश्यपद को प्राप्त हो जाता है॥९३॥

ये थोड़े-से प्रमाण दे दिये हैं। इस प्रकार के सैकड़ों प्रमाण ग्रन्थों में भरे पड़े हैं, जिनसे यह सिद्ध है कि मनुष्यजाति में ये चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार हैं और गुण-कर्म-स्वभाव के तब्दील होने से ये भी तब्दील हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध है कि ब्राह्मणादि वर्ण गौ आदिवत् जातियाँ नहीं हैं, अपितु ये मनुष्यजाति के ही कर्मानुसार वर्णभेद हैं। ब्राह्मण के घर पैदा होकर ब्राह्मण के कर्म न करनेवाला इतना ही नहीं कि ब्राह्मण नहीं रहता अपितु क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यहाँ तक कि रावण की भाँति राक्षस भी हो जाता है।

(३५७) प्रश्न— तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥

—महाभाष्य पस्पशाह्निक

भाषार्थ—तप, विद्या, योनि—इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है। विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ही ब्राह्मण है।

उत्तर—निम्न हेतुओं से आपका श्लोक तथा तत्प्रतिपादित विषय मिथ्या होने से अप्रमाण हैं—

(१) यह श्लोक महाभाष्य के पस्पशाह्निक में नहीं है।

(२) आपने अपनी पुस्तक में पृ० १२९, पं० २२ में लिखा है कि शब्दविषय में व्याकरण स्वत:प्रमाण है, अतः धर्मविषय में आपके ही लेखानुसार महाभाष्य प्रमाण नहीं हो सकता।

(३) जमदग्नि की माता गाधी की लड़की सत्यवती क्षत्राणी थी, किन्तु वह ब्राह्मण बने।

—महा० अनु० अ० ४

(४) विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी, किन्तु आप उसे जन्म से ही ब्राह्मण मानते हैं।

—महा० अनु० अ० ४

(५) **हरिणीगर्भसम्भूतः ऋष्यशृङ्गो महामुनिः।**
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २६॥

भाषार्थ—हरिणी के गर्भ से पैदा होकर मुनि ऋष्यशृङ्ग तप से ब्राह्मण बन गये, इसमें संस्कार कारण था॥ २६॥

(६) **श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिवः।**
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २७॥

भाषार्थ—चाण्डाली के गर्भ से पैदा होकर व्यास का पिता पराशर तप से ब्राह्मण बन गया, इसमें संस्कार कारण है॥ २७॥

(७) **उलूकीगर्भसम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः।**
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २८॥

भाषार्थ—उलूकी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि कणाद तप से ब्राह्मण बन गये, इसमें संस्कार कारण था॥ २८॥

(८) **गणिकागर्भसम्भूतो वसिष्ठश्च महामुनिः।**
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २९॥

भाषार्थ—गणिका के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये, इसमें संस्कार कारण था॥ २९॥

(९) **नाविकागर्भसम्भूतो मन्दपालो महामुनिः।**
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ ३०॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

भाषार्थ—नाविका के गर्भ से पैदा होकर महामुनि मन्दपाल तप से ब्राह्मण बन गये, इसमें संस्कार कारण था॥ ३०॥

(१०) व्यास की माता सत्यवती ब्राह्मणी न थी, किन्तु व्यासजी ब्राह्मण थे।

—महा० आदि० अ० १०५

(११) कृपाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी, किन्तु वह ब्राह्मण बन गये।

—महा० आदि० अ० १३०

(१२) द्रोणाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी, किन्तु वह ब्राह्मण बन गये।

—महा० आदि० अ० १३१

(१३) सोमश्रवा की माता साँपनी थी, किन्तु वह ब्राह्मण बन गये।

—महा० आदि० अ० ३

(१४) **शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।** —वाल्मी० अयो० स० ६३।५१
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिपः॥ —वाल्मी० अयो० स० ६४।५५

भाषार्थ—श्रवण ने कहा—हे राजन्! मैं वैश्य से शूद्रा में पैदा हुआ हूँ॥५१॥ श्रवण के बाप ने कहा कि हे दशरथ! चूँकि तुझ क्षत्रिय ने अज्ञान से श्रवणमुनि को मार दिया, इसलिए तुझे ब्रह्महत्या नहीं लगी॥५५॥ श्रवण की माता शूद्रा थी, वह ब्राह्मण बन गया।

(१५) **तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।**
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वपत्यं समं भवेत्॥ ११॥ —महा० अनु० अ० ४४

अब्राह्मणन्तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत्॥ १७॥ —महा० अ० अ० ४७

भाषार्थ—ब्राह्मण की ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्या तीन स्त्रियाँ हैं, क्षत्रिय की क्षत्राणी तथा वैश्या दो, वैश्या की एक वैश्या ही स्त्री है, उनसे पैदा हुई सन्तान समान वर्ण ही होगी, अर्थात् पिता के अनुकूल वर्ण होगा॥ १०॥

मूर्खता से कई लोग शूद्रा के पुत्र को ब्राह्मण नहीं मानते, किन्तु तीनों वर्णों की स्त्रियों में ब्राह्मण से पैदा हुआ ब्राह्मण ही होता है॥ १७॥

(१६) **एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः।**
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः॥ ४६॥
ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः॥ ४७॥
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्॥ ५०॥

—महा० अनु० अ० १४३

भाषार्थ—हे देवि! इन कर्मों के फल से हीनजाति-कुल में पैदा हुआ शूद्र भी वेद से सम्पन्न हुआ संस्कार से द्विज हो जाता है॥ ४६॥ और दुराचारी, सर्वभक्षी ब्राह्मण भी ब्राह्मणपद को छोड़कर शूद्र ही हो जाता है॥ ४७॥ ब्राह्मण बनने में न योनि कारण है, न संस्कार और न श्रुत और न सन्तति कारण हैं, अपितु ब्राह्मण बनने में आचरण, अर्थात् कर्म ही कारण है।

(३५८) प्रश्न—'**भूतानां प्राणिनः**' इत्यादि [मनु० १। ९६-९७] इन श्लोकों में साफ़ लिखा है कि मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ है। बिना पढ़े भी ब्राह्मण होते हैं तभी तो मनु ने दो प्रकार के ब्राह्मण माने—एक बिना पढ़े और एक विद्वान्।

—पृ० ३१३, पं० १०

उत्तर—कुर्बान जाएँ आपकी मन्तक़दानी [तार्किता] के! आपने तो लालबुझक्कड़ को भी मात कर दिया! यदि मनु ने यह कह दिया कि ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं तो क्या इससे यह सिद्ध हो गया कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है? क्या सबकी विद्या समान ही होती है? कदापि नहीं। श्रीमान्‌जी! ब्राह्मणों में भी विद्या की न्यूनता-अधिकता के कारण अनेक भेद हैं। जैसे विप्र, ब्राह्मण, मुनि, ऋषि, उपाध्याय, गुरु, आचार्य, ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्‌गाता, होता, अतः यहाँ पर ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं, इसका यह अभिप्राय है कि ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान् हैं, वे श्रेष्ठ हैं। इन श्लोकों का अर्थ निम्न प्रकार है—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥
ब्रह्माणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः॥

—मनु० अ० १। ९६-९७

भाषार्थ—भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धि से जीवन व्यतीत करनेवाले श्रेष्ठ हैं। बुद्धिवालों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥ ९६॥ ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान् हैं वे श्रेष्ठ हैं, और विद्वानों में भी जो विशेष बुद्धि रखते हैं वे श्रेष्ठ हैं। बुद्धिवालों में भी जो कर्मकाण्डी हैं, वे श्रेष्ठ हैं, कर्मकाण्डियों में से भी ब्रह्म के जाननेवाले श्रेष्ठ हैं॥ ९७॥

कहिए महाराजजी! जैसे आप 'ब्रह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं' इस वाक्य से यह अभिप्राय निकालते हैं कि 'मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है' वैसे ही 'विद्वानों में बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं' इस वाक्य

से भी यह अभिप्राय निकाल लीजिएगा कि 'विद्वानों में भी बुद्धिहीन और मूर्ख होते हैं', कैसी मज़ेदार बात है और कैसे सुन्दर अर्थ और युक्तियुक्त अभिप्राय हैं! शर्म तो नहीं आती! क्या इन्हीं प्रमाणों के आधार पर जन्म से वर्णव्यवस्था सिद्ध करने चले थे? मूर्खों को ब्राह्मण सिद्ध करते-करते विद्वानों को भी मूर्ख सिद्ध कर बैठे। होश कीजिए महाराज! मूर्खों का नाम भी कहीं ब्राह्मण हो सकता है? आप तनिक ब्राह्मण के लक्षण तो पढ़िए—

योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयीत वा। दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥ ३६॥
ब्रह्मचारी च वेदान् योऽप्यधीयाद् द्विजपुंगवः। स्वाध्याये चाप्रमत्तो वै तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥ ३७॥

—महा० वन० अ० २०५

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्। कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥ १०६॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते। योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ १०९॥

—महा० वन० अ० ३१२

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥ १५५॥

—मनु० २

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ १०३॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ १६८॥

—मनु० २

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्॥ १९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ २०॥

—महा० अनु० अ० १०४

भाषार्थ—जो वेद पढ़ावे, वेद पढ़े, यज्ञ करे, यज्ञ करवावे और यथाशक्ति दान दे, विद्वान् लोग उसको ब्राह्मण कहते हैं॥ ३६॥ जो ब्रह्मचारी हो, वेदों को पढ़े, स्वाध्याय में सुस्ती न करे, उसको विद्वान् लोग ब्राह्मण कहते हैं॥ ३७॥

हे प्यारे यक्ष! सुन, ब्राह्मण बनने में न कुल कारण है, न केवल स्वाध्याय और विद्या कारण हैं, अपितु ब्राह्मण बनने में कर्म ही कारण हैं, इसमें संशय नहीं है॥ १०६॥ चारों वेदों का पढ़ा हुआ भी दुराचारी शूद्र से अधिक नहीं है। जो अग्निहोत्र करनेवाला, पवित्र आचारवाला हो वही ब्राह्मण कहा जाता है॥ १०९॥ ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई है, क्षत्रियों में बल से बड़ाई है, वैश्यों में धान्यधन से बड़ाई है, केवल शूद्रों में ही जन्म से बड़ाई है॥ १५५॥

इन श्लोकों से यह सिद्ध हो गया कि मूर्ख का नाम ब्राह्मण नहीं है, अपितु जो वेद पढ़े तथा तदनुकूल आचरण करे उसी का नाम ब्राह्मण है तथा यह भी सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में ज्ञान थोड़ा-बहुत होने से छुटाई-बड़ाई है, अतः 'ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं' इसका यही अभिप्राय है कि 'जो ब्राह्मणों में विशेष ज्ञानवाले हैं, वे श्रेष्ठ हैं'। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है, क्योंकि विद्या तथा कर्महीन तो ब्राह्मण रहता ही नहीं, अपितु वह शूद्र हो जाता है, जैसाकि—

जो प्रातःकाल सन्ध्या नहीं करता और शाम को भी सन्ध्या नहीं करता, उसे शूद्रों की भाँति सब द्विजकर्मों से बाहर निकाल देना चाहिए॥ १०३॥ जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर अन्यत्र परिश्रम करता है, वह जीते हुए ही परिवार-समेत शूद्रपद को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ १६८॥ जो ब्राह्मण प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करते, धार्मिक राजा का यह कर्त्तव्य है कि उन सबसे शूद्र का काम करवावे॥ १९-२०॥

अतः आपकी कल्पना कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है सर्वथा वेदविरुद्ध और मिथ्या है।

(३५९) प्रश्न—स्वामीजी गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाते हैं और फिर अपने मत को वैदिक कहते हैं, यही आश्चर्य है! श्रुति, स्मृति में कहीं पर भी गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं लिखी। —पृ० ३१७, पं० २५

उत्तर—**'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** की विद्यमानता में गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था से इन्कार करना आश्चर्य नहीं तो क्या है? सम्पूर्ण श्रुति-स्मृति तथा इतिहास इस वैदिक सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो जन्म से वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करता हो।

(३६०) प्रश्न—सत्यकाम, विश्वामित्र और मतंग को बतलाया है कि ये तीनों अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। सत्यकाम आदि का अब्राह्मण से ब्राह्मण बन जाना लिखना सुफ़ैद झूठ है। —पृ० ३१८, पं० ४

उत्तर—स्वामीजी का लिखना सर्वथा सत्य है कि सत्यकाम, विश्वामित्र तथा मतंग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार न करना हठधर्मी तथा आत्महत्या के बिना क्या कहा जा सकता है?

(३६१) प्रश्न—**'किं गोत्रो नु सौम्येत्यादि'** छान्दो० [प्र० ४ खं० ४] में सत्यकाम के पूछने पर उसकी माता जबाला ने कहा कि 'युवावस्था में घर आये अतिथिरूप ऋषियों की सेवा किया करती थी। युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ। फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये, मैं गोत्र नहीं पूछ पाई। मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मैं इतना जानती हूँ कि मेरा नाम जबाला, तेरा नाम सत्यकाम है।' इससे सत्यकाम अब्राह्मण कैसे सिद्ध हुए? —पृ० ३१८, पं० १०

उत्तर—यदि सत्यकाम अब्राह्मण न थे तो कृपया आप ही बतलावें कि इस पाठ में वे कौन-से वाक्य हैं जिनसे सत्यकाम का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है? और भी बतलाने की कृपा करें कि 'घर आये अतिथिरूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी। फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये, मैं गोत्र नहीं पूछ पाई' यह अर्थ कौन-से संस्कृतवाक्यों का है? वास्तविक बात तो यह है कि 'अज्ञातकुलोत्पन्न जबाला ने आवारागर्दी करते हुए यौवन-अवस्था में अनेक पुरुषों से व्यभिचार करते-करते गर्भधारण किया था। वह निश्चयपूर्वक न बतला सकती थी कि सत्यकाम का पिता कौन है। छान्दोग्य का पूरा पाठ तथा अर्थ इस प्रकार है—

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किं गोत्रो न्वहमस्मीति॥ १॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद् गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साऽ हमेतन्न वेद यद् गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति॥ २॥ स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति॥ ३॥ तꣳहोवाच किं गोत्रो नु सौम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद् गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद् गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳसत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति॥ ४॥ तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुः शता गां निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रेजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तयेति स वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳसम्पेदुः॥ ५॥—छान्दो० अ० ४ खं० ४

भाषार्थ—जाबाली सत्यकाम अपनी माता जबाला से कहने लगे। श्रीमतीजी! मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहता हूँ, मेरा गोत्र क्या है?॥ १॥ वह उसको बोली—'हे प्यारे! मैं यह नहीं जानती

तेरा गोत्र क्या है। मैंने बहुत फिरते हुए यौवन में आवारागर्दी करते हुए तुझे प्राप्त किया है। सो मैं यह नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मेरा नाम जबाला है, तेरा नाम सत्यकाम है। वह तू जाबाल सत्यकाम ही अपने को बोल॥ २॥ वह हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर बोला—मैं आपके पास ब्रह्मचर्यवास करूँगा, इस कारण आपको प्राप्त हुआ हूँ॥ ३॥ उसको गौतम ने कहा—सौम्य! तेरा क्या गोत्र है? उसने कहा मैं यह नहीं जानता मेरा क्या गोत्र है। मैंने माता से पूछा था, उसने मुझसे कहा मैंने बहुत फिरते हुए यौवन में आवारागर्दी से तुझे प्राप्त किया है, वह मैं यह नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है। मैं जबाला नामा हूँ, तेरा नाम सत्यकाम है। सो मैं सत्यकाम जाबाल हूँ॥ ४॥ उसको गौतम बोला यह बिना ब्राह्मण के कोई नहीं कह सकता। हे सौम्य! तू समिधा ला। मैं तेरा यज्ञोपवीत करूँगा। तू सत्य से नहीं डिगा। उसको यज्ञोपवीत देकर कमज़ोर और दुबली चार सौ गौ बाहर निकालकर बोला—हे सौम्य! इनके पीछे जा। उनको रवाना करते हुए बोला—एक हज़ार होने से पहले मत लौटना। वह बहुत वर्षों तक बाहर रहा, वे जबतक एक हज़ार हो गईं॥ ५॥

(१) गोत्र पूछने से ऋषि का अभिप्राय खानदान तथा पिता का वर्ण पूछना था ताकि तदनुकूल संस्कार किया जावे तभी तो पता न लगने पर गौतम ने सत्य के लक्षण से सत्काम का सम्भावित ब्राह्मणवर्णानुसार यज्ञोपवीत किया।

(२) क्या अतिथिसेवा में लगने तथा पति के तपस्या को चले जाने से गोत्र, वर्ण तथा पति के नाम का भी पता न लग सकता था? क्या अड़ोसी-पड़ोसी, सम्बन्धी, पुरोहित आदि सभी पति का गोत्र, वर्ण तथा नाम भूल गये थे?

(३) यदि सत्यकाम को व्यभिचार से पैदा न किया था तो जबाला ने पिता का नाम क्यों न बतलाया, अपना ही नाम क्यों बतलाया?

(४) यदि पिता का निश्चित ज्ञान न होने से वह पिता का नाम तथा गोत्र न बतला सकती थी तो अपना वर्ण तो बतला सकती थी, किन्तु जबाला ने अपना भी कोई वर्ण नहीं बतलाया।

(५) छान्दोग्य के किसी पाठ से भी जबाला तथा सत्यकाम का जन्म से ब्राह्मण होना सिद्ध नहीं होता।

(६) गौतम ने जो सत्यकाम की बात को सुनकर कहा कि यह बात बिना ब्राह्मण के कोई नहीं बतला सकता तो अपनी पैदाइश को व्यभिचार से बताना ही गौतम की दृष्टि से इतना उसके लिए गौरव का कारण हो सकता है। साधारण बात से इतना गौरव नहीं हो सकता, क्योंकि माता का अतिथिसेवा में लगना, पिता का तपस्या को जाना तो कोई भी बतला सकता है। यह सचाई कोई कड़वी सचाई नहीं है। हाँ, अपने को व्यभिचार से पैदा हुआ बताना यह एक ऐसी कड़वी सचाई है कि जिसको प्रत्येक आदमी नहीं बतला सकता, अपितु साधारण मनुष्य छिपाने का यत्न करता है, किन्तु सत्यकाम ने ऐसी कड़वी सचाई भी गौतम से कह सुनाई, अतः गौतम के मुख से अनायास यह वाक्य निकल गये कि ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता।

इससे सिद्ध हुआ कि केवल सत्यकाम ही अज्ञातकुलोत्पन्न तथा अब्राह्मण न था, अपितु जबाला भी अजातकुलोत्पन्ना तथा अब्राह्मणी आवारागर्द चलती-फिरती वेश्या ही थी।

(३६२) प्रश्न—वेदारम्भ से पहले जो वेदारम्भ के लिए उपनयन-संस्कार हुआ करता है, अभी वह भी नहीं हुआ, फिर सत्यकाम में कौन विद्या का गुण आया और बिना वेद पढ़े-कौन-कौन उसने वैदिक कर्म किये, जिससे वह गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण बना?

—पृ० ३१९, पं० २

उत्तर—यद्यपि छान्दोग्य के पाठ से यह सिद्ध नहीं होता कि सत्यकाम की आयु छोटी थी,

क्योंकि उसका स्वयं माता से गुरुकुल में जाने की प्रार्थना करना और गुरु से इस प्रकार की बातचीत करना तथा चार सौ गौओं को चराकर एक हज़ार बनाना, ये काम सत्यकाम की छोटी आयु को सिद्ध नहीं करते, तथापि वेदारम्भ से पूर्व तथा यज्ञोपवीत से भी पूर्व सम्भावित वर्णानुसार यज्ञोपवीतादि संस्कार होते हैं, अर्थात् बालक के माता-पिता, कुल, गोत्र, आचार को दृष्टि में रखकर भावी जीवन में उस बालक के जिस वर्ण में जाने की आशा होती है उस वर्ण के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये जाते हैं। वह बालकों का सम्भावित वर्ण होता है और जब विद्या पूरी होने के पश्चात् गुण-कर्म-स्वभाव-अनुसार आचार्य वर्ण नियत करता है, वह उनका व्यवस्थित वर्ण होता है। गौतम आचार्य ने सत्यकाम में सत्यभाषण गुण देखकर उसके ब्राह्मण बनने की सम्भावना से उसको सम्भावित ब्राह्मण जानकर ब्राह्मणवर्णानुसार उसका यज्ञोपवीत संस्कार करवा दिया। भावी कर्मों की सम्भावना के अनुसार भी नाम रक्खे जाते हैं। इसमें निरुक्त का प्रमाण उपस्थित है, जैसेकि—

यथो एतदपरस्माद्भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यते इति पश्यामः पूर्वोत्पन्नानां सत्त्वानामपरस्माद्भावान्नामधेयप्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा बिल्वादो लम्बचूडक इति॥

—निरु० अ० १ खं० १४

भाषार्थ—यह कहा जाता है कि आनेवाले भाव से पूर्ववाले का प्रदेश उत्पन्न नहीं होता, परन्तु हम देखते हैं कि पहले पैदा हुए प्राणियों के होनेवाले कर्मों को दृष्टि में रखकर किन्हीं के नाम रक्खे जाते हैं, किन्हीं के नहीं, जैसे लम्बचूड़क [लम्बी चोटीवाला] बिल्वाद [बिल्व खानेवाला]।

जो बालक अभी पैदा हुए हैं, न उनकी लम्बी चोटी है और न ही वे बिल्व खाते हैं, किन्तु आगामी जीवन में उनकी लम्बी चोटी होने तथा बिल्व खाने की सम्भावना से उनका नाम लम्बचूड़क तथा बिल्वाद रक्खा जाता है। इसी का नाम सम्भावित संज्ञा है।

(३६३) प्रश्न—यहाँ पर तो उपनयन-संस्कार होने से पहले ही गौतम ने सत्यकाम से कह दिया 'मैं जानता हूँ तू ब्राह्मण है, ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता', फिर सत्यकाम का गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण बन जाना संसार की आँख में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है? —पृ० ३१९, पं० ५

उत्तर—सत्यकाम की माता जबाला ब्राह्मणी न थी। सत्यकाम के बाप का उसकी माता भी निश्चय न कर सकी कि कौन, किस वर्ण तथा किस नाम का था। सत्यकाम के गोत्र, कुल, वर्ण आदि का कोई पता न था। गौतम ने सत्यकाम के यह कड़वी सचाई बयान करने पर कि 'मेरी माता ने फिरते-फिरते आवारागर्दी में, यौवनावस्था में मुझे प्राप्त किया है, मेरे गोत्र का कोई पता नहीं' उसके ब्राह्मण होने की सम्भावना की। इतने पर भी सत्यकाम को जन्म से ब्राह्मण बतलाना संसार की आँखों में धूल झोंकना नहीं तो क्या है?

(३६४) प्रश्न—विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना वे लोग मानेंगे कि जिन्होंने विश्वामित्र की गाथा को न पढ़ा हो। —पृ० ३१९, पं० ११

उत्तर—वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। आपकी गाथा वेद, स्मृति, रामायण और स्वयं महाभारत के विरुद्ध है, यह हम आगे चलकर सिद्ध करेंगे। अब विश्वामित्र की वास्तविक कथा सुनिए—

राजाऽऽसीदेष धर्मात्मा दीर्घकालमरिन्दमः। धर्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः॥ १७॥
प्रजापतिसुतस्त्वासीत्कुशो नाम महीपतिः। कुशस्या पुत्रो बलवान् कुशनाभः सुधार्मिकः॥ १८॥
कुशनाभसुतस्त्वासीद् गाधिरित्येव विश्रुतः। गाधेः पुत्रो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ १९॥

विश्वामित्रो महातेजाः पालयामास मेदिनीम्। बहुवर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत्॥ २०॥

—वाल्मीकि० बाल० स० ५१

भाषार्थ—यह बहुत पहले शत्रुओं का जीतनेवाला धर्मात्मा राजा था। धर्म का जाननेवाला, विद्वान्, प्रजा के हित में लगा रहता था॥ १७॥ प्रजापति का पुत्र महाराज कुश था। कुश का पुत्र धार्मिक और बलवान् कुशनाभ था॥ १८॥ कुशनाभ का पुत्र गाधि नाम से प्रसिद्ध था। गाधि का पुत्र महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र था॥ १९॥ महातेजस्वी विश्वामित्र ने पृथिवी का पालन किया और राजा विश्वामित्र ने कई सहस्र वर्ष राज्य किया॥ २०॥

कभी राजा विश्वामित्र सेना साथ में लेकर पृथिवी का चक्कर लगाते हुए वसिष्ठ के आश्रम में आये। उस आश्रम में वसिष्ठ ने विश्वामित्र का स्वागत करके कुशल पूछा। पश्चात् वसिष्ठ ने सेनासहित विश्वामित्र का अतिथि-सत्कार किया। राजा विश्वामित्र ने वसिष्ठ से शबला गौ माँगी। वसिष्ठ ने शबला के देने से इनकार कर दिया। तब राजा विश्वामित्र ने ज़बरदस्ती गौ को ले-जाना चाहा। वसिष्ठ ने विश्वामित्र से युद्ध किया और विश्वामित्री की सारी सेना का नाश कर दिया। पराजित होकर विश्वामित्र घर आया और अपने एक पुत्र को राज्य सौंपकर आप तप करने वन में चला गया और बड़े भारी तप से दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त किये। तब बड़े घमण्ड से वसिष्ठ के आश्रम पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में वसिष्ठ ने अपने ब्रह्मदण्ड से विश्वामित्र के सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रों का नाश कर दिया। यह देखकर विश्वामित्र ने कहा कि—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्। एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥ २३॥
तदेतत्प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानसः। तपो महत्समास्थास्ये यद्वै ब्रह्मत्वकारणम्॥ २४॥

—वाल्मी० बाल० स० ५६

भाषार्थ—क्षत्रियों के बल को धिक्कार है! ब्रह्मतेज ही बल है। एक ही ब्रह्मदण्ड ने मेरे सारे अस्त्रों को निकम्मा कर दिया॥ २३॥ यह सब-कुछ देखकर प्रसन्न मन होकर मैं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए बड़ा भारी तप करूँगा॥ २४॥

यह कहकर वन में तप करने चले गये और बड़ा भारी तप किया—

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः॥ १८॥
विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन्। ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः॥ १९॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक। दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन् ददामि समरुद्गणः॥ २०॥
ततः प्रसादितो देवैर्वसिष्ठो जपतां वरः। सख्यं चकार ब्रह्मर्षिरेवमस्त्विति चाब्रवीत्॥ २५॥
ब्रह्मर्षिस्त्वं न सन्देहः सर्वं सम्पद्यते तव। इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम्॥ २६॥

—वाल्मी० बाल० स० ६५

भाषार्थ—तब ब्रह्मा समेत सारे देवता॥ १८॥ महात्मा विश्वामित्र को मीठे वचन बोले—"हे ब्रह्मर्षे! हम तेरा स्वागत करते हैं। आपने हमको तप से सन्तुष्ट कर दिया है॥ १९॥ हे कौशिक! आपने घोर तप से ब्राह्मण पद को प्राप्त कर लिया है। और हे ब्राह्मण! देवताओं समेत मैं तुझे बड़ी आयु देता हूँ।"॥ २॥ तब देवताओं ने जप करनेवालों में श्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रसन्न किया तब वसिष्ठ ने मित्रता करके कहा—"ऐसा ही होगा"॥ २५॥ तू ब्रह्मर्षि है इसमें सन्देह नहीं है और तुझमें सब-कुछ योग्य है। यह कहने पर सब देवता भी चले गये॥ ६॥ यही कथा अक्षरशः संक्षेप से महाभारत आदिपर्व अध्याय १७७ में लिखी हुई है और इस कथा के आदि तथा अन्त में ये श्लोक विद्यमान हैं—

कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसम्भवः॥ ३॥

तस्य धर्मात्मनः पुत्र समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः॥ ४॥
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विण्णो वाक्यमब्रवीत्। धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्॥ ४४॥
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम्। स राज्यं स्फीतिमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम्॥ ४५॥
भोगाँश्च पृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे। स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान् विष्टभ्य तेजसा॥ ४६॥
ततापं सर्वान् दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान्। अपिबच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः॥ ४७॥

—महा० आदि० अ० १७७ [गी० सं० में आ०—१७४।—सं०]

भाषार्थ—कान्यकुब्ज देश में कुशिक का बड़ा प्रसिद्ध गाधि नाम का राजा था॥ ४॥ विश्वामित्र ने क्षत्रभाव से दुःखी होकर यह बात कही कि ''क्षत्रियबल को धिक्कार है ब्रह्मतेज ही बल है॥ ४४॥ बल-अबल का निश्चय करके तप ही परम बल है।'' उसने राज्य को तथा प्रकाशित श्री को छोड़कर॥ ४५॥ भोगों को पीछे छोड़कर तप में ही मन को लगाया। उसने तप से सिद्धि को प्राप्त करके और लोकों को तेज से वश में करके॥ ४६॥ अपने तेज से सबको तपाकर ब्राह्मणपद को प्राप्त किया और उस कौशिक विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोमरस का पान किया॥ ४७॥

यहाँ पर वाल्मीकि तथा व्यास दोनों ने ही विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना लिखा है। आपके विचार के अनुसार क्या इन दोनों को विश्वामित्र के इतिहास का पूर्ण ज्ञान न था? यदि था तो फिर साफ़ सिद्ध हो गया कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

(३६५) प्रश्न—अनुशासनपर्व के आरम्भ में भीष्म ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि कर्म के द्वारा कोई अन्य जाति ब्राह्मण नहीं बन सकती। —पृ० ३१९, पं० १२

उत्तर—श्रीमान्‌जी! अनुशासनपर्व के वे श्लोक तो पेश कर दिये होते जहाँ भीष्म ने दूसरी जातियों के लिए कर्म द्वारा ब्राह्मणत्व को अप्राप्य वस्तु लिखा है। अनुशासनपर्व के प्रथम अध्याय में 'मनुष्य की मृत्यु में अपने ही किये हुए कर्म कारण हैं' और दूसरे अध्याय में 'गृहस्थी मृत्यु को कैसे जीत सकता है' इन दो विषयों का वर्णन है। इन अध्यायों में वर्णव्यवस्था का ज़िक्र तक भी नहीं है। न जाने आपने यह सुफ़ैद झूठ लिखकर क्यों आत्महत्या की है। क्या इस झूठ का आप कोई प्रायश्चित्त करेंगे?

(३६६) प्रश्न—राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप। कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना॥ १॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ। श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह॥ २॥

—महा० अनु० अ० ३

भगवान् नरेश भीष्म! यदि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते तो फिर विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे बन गये, यह हम याथातथ्य सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके हमसे कहें। पृ० ३१९, पं० १४

उत्तर—या बेईमानी तेरा ही आसरा! ऊपर तो भीष्म के नाम से गप्प हाँक दी। यहाँ दुष्प्राप्य के अर्थ ही ''तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते'' कर दिया। श्रीमान्‌जी! दुष्प्राप्य का अर्थ कष्टसाध्य है, असाध्य नहीं है। आर्यसमाज भी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र से ब्राह्मण बनना सुसाध्य नहीं मानता, अपितु कष्टसाध्य मानता है। हाँ, पौराणिक साहित्य सुसाध्य अवश्य मानता है, जैसाकि—

विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्वजिगीषया।
तपश्चचार विपुलं सन्तापाय दिवौकसाम्। ब्राह्मणत्वं न लेभेऽसौ लेभे विघ्नाननेकशः॥ ५६॥

ततस्तु नियमात्तासां तिथीनां प्रवरा तिथिः। उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम्॥ ५७॥
ततो देवो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते। इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम्॥ ५८॥
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमातिथिः। क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः॥ ५९॥

—भविष्य० ब्राह्म० अध्याय० १६

भाषार्थ—हे राजेन्द्र! विश्वामित्र ने तो ब्राह्मणत्व के प्राप्त करने की इच्छा से देवताओं को सन्ताप देने के लिए घोर तप किया किन्तु वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं हुआ, अपितु अनेक विघ्नों को प्राप्त हुआ॥ ५६॥ फिर तो उन तिथियों में से श्रेष्ठ तिथि प्रतिपदा में बहुत प्रकार से नियमानुसार उपवास किया इस बात को जानकर कि यह तिथि ब्रह्मा की प्यारी है॥ ५७॥ तब देव ब्रह्मा ने बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिए इसी जन्म में इसी देह से दुर्लभ ब्राह्मणत्व दिया॥ ५८॥ यह तिथि तिथियों में श्रेष्ठ है, यह तिथि तिथियों में उत्तम है। इससे क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ब्राह्मणपद को प्राप्त हो सकते हैं॥ ५९॥

कहिए महाराज! यह तो केवल प्रतिपदा के व्रत से ही ब्राह्मणपद की प्राप्ति होने लगी। क्या इससे सस्ता सौदा भी कहीं संसार में हो सकता है? फिर युधिष्ठिर के प्रश्न से पता लगता है कि वह विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बना ही मानते थे।

(३६७) प्रश्न—भीष्म ने उत्तर दिया कि गाधि क्षत्रिय की लड़की सत्यवती का विवाह ऋचीक ब्राह्मण से हुआ। गाधि की स्त्री के कहने से सत्यवती ने सन्तानार्थ अपने पति से कहा। ऋचीक ने दोनों के लिए दो चरु बनाये। गाधि की स्त्री के लिए क्षात्रतेज प्रधान चरु बनाया तथा अपनी स्त्री के लिए ब्रह्मतेज-प्रधान चरु बनाया। अपनी स्त्री को गूलर तथा गाधि की स्त्री को पीपल से मिलने को कहा। माँ-बेटी ने आपस में चरु भी तब्दील कर लिये और पेड़ों का मिलना भी तब्दील कर दिया। जब ऋचीक को इस बात का पता लगा तो उन्होंने अपनी स्त्री सत्यवती से कहा कि चरु तथा वृक्षों के तब्दील करने का यह परिणाम होगा कि तेरी माता श्रेष्ठ ब्राह्मण को तथा तू उग्रकर्मा क्षत्रिय को पैदा करेगी। सत्यवती की प्रार्थना पर ऋषि ने कहा कि अच्छा तुम्हारा पुत्र इस प्रकार का न होगा किन्तु पौत्र इस प्रकार का होगा। समय आने पर सत्यवती के जमदग्नि नामक बालक पैदा हुआ और जमदग्नि के परशुराम पैदा हुआ, तथा गाधि की स्त्री ने यशस्वी ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को पैदा किया। अब कौन मनुष्य कह सकता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया? जबकि उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मवक्ता एवं ब्रह्मर्षि कहा है, फिर इसका क्षत्रिय होना मानेगा कौन? —पृ० ३१९, पं० १५

उत्तर—वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के आदि पर्व में विश्वामित्र की पैदाइश गाधि से लिखी है और उनको क्षत्रिय राजा से ब्राह्मण होना माना है। वहाँ चरु आदि का क़तई ज़िक्र नहीं है। [देखो नं० ३६४]।

(२) गाधि की लड़की सत्यवती क्षत्रिया थी और ऋचीक ब्राह्मण थे। ऋचीक से विवाह होने पर सत्यवती ब्राह्मणी बन गई या कि क्षत्रिया ही रही? यदि क्षत्रिया ही रही तो उनकी सन्तान जमदग्नि को वर्णसंकर मानना पड़ेगा। यदि ब्राह्मणी बन गई तो इससे ही क्षत्रिय का ब्राह्मणी बनना गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था का साधक है।

(३) महाभारत वनपर्व अध्याय ११५ श्लोक २१ से ४३ तक में यह वर्णन है कि चरु ऋचीक के पिता सत्यवती के श्वसुर भृगु ने तैयार किये, जैसेकि—

ततः प्रसादयामास श्वशुरं सा पुनः पुनः॥ ४२॥ —महा० वन० अ० ११५

भाषार्थ—तब सत्यवती ने अपने श्वसुर भृगु को बार-बार प्रसन्न किया॥ ४२॥ इत्यादि-इत्यादि।

इन दोनों में कौन-सी बात ठीक है? हमारे विचार से तो परस्पर विरोध होने के कारण चरु की कल्पना ही मिथ्या है।

(४) वृक्षों के साथ आलिंगन का क्या प्रयोजन था? क्या वृक्षों का आलिंगन भी गर्भस्थिति में कारण था? क्या वृक्ष भी स्त्री में गर्भाधान कर सकते हैं? यदि कर सकते हैं तो सन्तान किस वर्ण की होगी?

(५) चरुभक्षण के पश्चात् गाधि की स्त्री तथा ऋचीक की स्त्री ने गाधि तथा ऋचीक से समागम किया या नहीं? यदि कहो कि पतियों से गर्भाधान द्वारा वीर्यदान लिया था तो फिर विश्वामित्र की माँ क्षत्राणी तथा पिता गाधि क्षत्रिय और विश्वामित्र भी क्षत्रिय ही हुआ।

(६) यदि कहो कि पतियों से वीर्यदान नहीं लिया तो गर्भ कैसे ठहरा? क्योंकि वेद कहता है कि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। —इत्यादि [यजुः० १९।७६]

अर्थ—पुरुष की इन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रविष्ट होकर गर्भ में वीर्य छोड़ती है तब गर्भ होता है। तथा मनु भी कहते हैं कि—

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्। क्षेत्रबीजसमायोगात्सम्भवः सर्वदेहिनाम्।

—मनु० ९।३३

भाषार्थ—स्त्री खेत है और पुरुष बीज है, खेत और बीज के संयोग से ही सब शरीरधारियों का पैदा होना सम्भव है।

(७) यदि कहो कि चरु में बीज मौजूद था उससे गर्भ हो गया, तो क्या बीज के खाने से स्त्री के गर्भ होना सम्भव है या चरु का योनि की ओर से ही प्रयोग किया गया था?

(८) यदि चरु में बीज था तो वह किस प्रकार का बीज था? क्या ऋचीक के शरीर से पैदा हुआ बीज था या वेदमन्त्रों से पैदा हुआ विशेष बीज था, जिसमें ऋचीक का शारीरिक भाग न था?

(९) यदि कहो कि ऋचीक का शारीरिक बीज चरु में था तो वह किस विधि से ऋचीक के शरीर से निकालकर चरु में प्रविष्ट किया गया था और ऋचीक के बीज से गाधि की स्त्री में गर्भाधान, अर्थात् जवाई के बीज से सास में गर्भ क्या शास्त्रविहित है? यदि नहीं तो क्या विश्वामित्र को अवैध सन्तान मानना पड़ेगा?

(१०) एक ही ऋचीक के शरीर से दो प्रकार का वीर्य होना कैसे सम्भव है, अर्थात् एक क्षत्रिय पैदा करनेवाला, दूसरा ब्राह्मण पैदा करनेवाला।

(११) यदि कहो कि ऋचीक के शरीर का बीज में कोई भाग न था अपितु वेदमन्त्रों की शक्ति से ही इस चरु में बीज पैदा किया गया था तो क्या बिना मनुष्य के शरीर के इस प्रकार का बीज तैयार किया जा सकता है जो गर्भधारण में काम दे सके और क्या वेदमन्त्रों से किसी वस्तु में ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा किये जा सकते हैं?

(१२) और यदि बिना किसी प्रकार के शारीरिक सम्बन्ध के केवल वेदमन्त्रों से ही ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा किये जा सकते हैं, तो फिर न ब्राह्मणकुल में पैदा होना आवश्यक है, न ब्राह्मण का बीज और न ब्राह्मणी की योनि ही ब्राह्मण बनने के लिए आवश्यक है, अपितु जहाँ भी वेदमन्त्रों से ब्राह्मणपन और क्षत्रियपन के गुण पैदा कर दिये जावें, वही ब्राह्मण तथा क्षत्रिय हैं। इससे तो वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, अपितु गुण-कर्म-स्वभाव से सिद्ध हो गई।

(१३) पुत्र के न होने की शिकायत सत्यवती की माता को थी, सत्यवती को तो न थी, फिर दोनों के लिए चरु क्यों तैयार किया गया, क्योंकि ऋचीक के सत्यवती से तीन पुत्र थे—

जमदग्नि, शुनक तथा शुनःशेप। (वाल्मी० बाल० स० ६१) विश्वामित्र के साथ-साथ चरु से तो केवल जमदग्नि ही पैदा हुआ था, शेष दो तो बिना चरु के ही हुए। पिछले दो बिना चरु के पैदा हो गये तो पहले के लिए भी चरु की क्या आवश्यकता थी? अतः दोनों के लिए चरु बनाने की बात केवल चरु के परिवर्तन से विश्वामित्र को जन्म से ब्राह्मण सिद्ध करने के लिए जन्माभिमानी लोगों की कल्पना ही है।

(१४) इन सब बातों को छोड़कर यदि इस कथा को ठीक भी मान लिया जावे तो विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी। चरु ब्राह्मणतेज प्रधान खाया तो विश्वामित्र ब्राह्मण पैदा हो गया। किन्तु, जमदग्नि की माता सत्यवती क्षत्रिया थी और चरु भी क्षात्रतेज-प्रधान खाया, तब जमदग्नि क्षत्रिय क्यों न बना? यदि पुत्र नहीं तो पौत्र ही परशुराम क्षत्रिय क्यों न माना गया? इससे सिद्ध है कि यह गाथा वेदशास्त्र, युक्तिविरुद्ध होने से क़तई मिथ्या है। वास्तव में गाधि क्षत्रिय था, विश्वामित्र गाधि का पुत्र जन्म से क्षत्रिय था, वह तप से कर्मानुसार ब्राह्मण बन गया। इस घटना का संस्कृतग्रन्थों में अनेक स्थलों में वर्णन किया गया है—

(१) **पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।**
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः॥ —मनु० ७।४२
गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्। —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—पृथु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया और मनु ने भी। कुबेर ने विनय से धन-ऐश्वर्य को प्राप्त किया और बिनय से ही गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए उसी शरीर से ब्राह्मण बन गया॥ ४२॥

यहाँ मनु तथा कुल्लूक दोनों ने विश्वामित्र को क्षत्रिय माना है।

(२) **तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।**
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ —मनु० १०।४२
तपः प्रभावेन विश्वामित्रवत्। बीजप्रभावेन ऋष्यशृङ्गवत्॥ —कुल्लूकभट्ट

मनुष्यों में प्रत्येक युग में इस संसार में कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भाँति, कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृङ्ग की भाँति अपने जन्म की अपेक्षा उन्नति तथा अवनति को प्राप्त हो जाते हैं॥ ४२॥ यहाँ कुल्लूकभट्ट ने विश्वामित्र की उन्नति में बीज को कारण नहीं माना अपितु तप को कारण माना है।

(३) **यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।**
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥ —मनु० ११।२३८
यद् दुःखेन प्राप्यते क्षत्रियादिना यथा विश्वामित्रेण तेनैव ब्राह्मण्यादि॥
—कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—जो कठिनता से तैरने योग्य है, जो दुःख से प्राप्त करने योग्य है जैसे क्षत्रिय विश्वामित्र ने उसी शरीर से ब्राह्मणपद प्राप्त किया, जो कठिनता से गमन करने योग्य है, जो कठिनता से करने योग्य है, वे सब तप से साध्य हैं, क्योंकि तप दुर्लंघ्य शक्ति है॥ ३३८॥

(४) **पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः॥ ५४॥**
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया। तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम॥ ५५॥
—वाल्मी० बाल० स० १८

भाषार्थ—राजा दशरथ ने विश्वामित्र से कहा कि आप पहले तप के कारण राजर्षि शब्द से प्रकाशित हुए॥ ५४॥ फिर ब्रह्मर्षि बन गये, अतः मेरे द्वारा अत्यन्त पूज्य हैं। हे विप्र! यह अद्भुत

घटना है। आप मेरी दृष्टि में परम पवित्र हैं॥५५॥

(५) **विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने।**
क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवेत्विदम्॥५३॥ —शिव० उमा० अ० १२

भाषार्थ—हे महामुने! गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए तप से ब्राह्मण बन गया। यह तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है॥५३॥

(६) **शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रियबालकः।**
विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः॥९॥
विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षिर्नात्र संशयः।
अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि॥१३॥
ततोऽकार्षीत् स संस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा॥१४॥
—शिव० रुद्र० कुमार अ०३

भाषार्थ—विश्वामित्र ने कहा—हे प्यारे! सुन, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। गाधिक्षत्रिय का बालक हूँ। विश्वामित्र नाम से प्रसिद्ध हूँ, ब्राह्मणों का सेवक क्षत्रिय हूँ॥९॥ शिवपुत्र ने कहा—हे विश्वामित्र! मेरे वर से तू ब्राह्मर्षि है, इसमें संशय नहीं है, इसलिए तू मेरी आज्ञा से मेरा संस्कार कर सकता है॥१३॥ तब विश्वामित्र ने शिवपुत्र का यथाविधि प्रीति से सम्पूर्ण संस्कार करवाया॥१४॥

(७) **क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः।**
धर्मस्य वचनात्प्रीतो विश्वामित्रस्तथाभवत्॥१८॥ —महा० उद्योग० अ० १०६

भाषार्थ—तथा विश्वामित्र धर्म के वचन से प्रीतिपूर्वक क्षात्रभाव को छोड़कर ब्राह्मणपद को प्राप्त हो गया।

(८) **विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम्।**
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः॥१६॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत्॥१७॥ —महा० अनुशा० अ० १८

भाषार्थ—तब विश्वामित्र बोला कि तब मैं क्षत्रिय था। मैं ब्राह्मण होना चाहता हूँ, मैंने ऐसी प्रार्थना ब्रह्मा से की। उस ब्रह्मा की कृपा से मैंने दुर्लभ ब्राह्मणपद को प्राप्त किया॥१६॥

इतने स्पष्ट प्रमाणों की विद्यमानता में विश्वामित्र के क्षत्रिय से ब्राह्मण बनने में किसको शंका हो सकती है, अतः विश्वामित्र को जन्म से ब्राह्मण या ब्रह्मर्षि मानना पौराणिक गप्पाष्टक ही है।

(३६८) प्रश्न—ब्राह्मण से जो क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न होता है उसमें माता के रज से कुछ क्षत्रियत्व विकार रहता है, इसी कारण मन्वादि धर्मशास्त्रों ने ऐसी सन्तान को पूर्ण ब्राह्मण न लिखकर मूर्धाभिषिक्त लिखा है। विश्वामित्र ने अपने घोर तप से मातृ-रज को अपने शरीर से निकाल दिया। निकालने के पश्चात् वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। जब चरु ब्रह्मवीर्य से युक्त था और महाभारत ने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि मान लिया, इतना होने पर भी विचारशील मनुष्य यह नहीं मान सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय के वीर्य से पैदा हुआ, विद्या पढ़कर ब्राह्मण बन गया। —पृ० ३२१, पं० ११

उत्तर—(१) आपने विश्वामित्र को ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में पैदा होने के कारण मूर्धाभिषिक्त माना है और चरु में ब्रह्मवीर्य की विद्यमानता मानी है तथा गाधि के वीर्य से उत्पत्ति का निषेध कर दिया है। तब आपके लेख से सिद्ध हुआ कि ऋचीक के वीर्य तथा गाधि की स्त्री के रज मिलने से विश्वामित्र उत्पन्न हुए, अर्थात् जवाई के वीर्य से सास में गर्भ का होना आपने स्वीकार कर लिया। क्या इसे सनातनधर्म शास्त्र के अनुकूल धर्म मानता है?

(२) एक ओर तो आप विश्वामित्र को जन्म-समय अपूर्ण ब्राह्मण मानते हैं, दूसरी ओर जन्म से ही ब्रह्मर्षि मानते हैं, क्या यह परस्पर विरोध तो नहीं है?

(३) जब आप यह मानते हैं कि तप से मातृ-रज को शरीर से निकाला जा सकता है तो क्या उसी प्रकार से पितृ-वीर्य को भी तप से बाहर निकालकर प्रत्येक मनुष्य ब्राह्मण नहीं बन सकता? अत: आपकी सारी कल्पना निर्मूल होने से सर्वथा मिथ्या है। वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय, क्षत्रिया के रजवीर्य से पैदा होकर तप से ब्राह्मण बना था।

(३६९) प्रश्न—'केवल चरुमात्र से गर्भ नहीं रह सकता यह निरी गप्प है' यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि यह महाभारत में लिखा है। यदि महाभारत गप्प है तो गाधि का होना गप्प, गाधि की स्त्री से विश्वामित्र का होना गप्प, तथा विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना गप्प। फिर इस गप्पयुक्त विश्वामित्र की कथा को तुमने क्यों सत्य माना? —पृ० ३२१, पं० २३

उत्तर—श्रीमान्जी! महाभारत स्वत:प्रमाण नहीं है, अपितु परत:प्रमाण है। महाभारत की बातें भी यदि वेद के विरुद्ध हों तो वे प्रमाण नहीं मानी जा सकतीं। वेद कहता है कि रज-वीर्य के योग से ही सन्तानोत्पत्ति हो सकती है (देखो नं० ३६७), अत: केवल चरु से गर्भस्थिति वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण तथा गाधि और गाधि की स्त्री के रजवीर्य से विश्वामित्र का पैदा होना वेदानुकूल होने से प्रमाण है। भला! यह तो बतलाइए कि महाभारत में यह कहाँ लिखा है कि चरु खाने के पीछे उन स्त्रियों ने पति से समागम नहीं किया और फिर कौन-सी खुराफ़ात है जो मौजूदा महाभारत से नहीं मिल सकती? व्यास कहते हैं महाभारत चौबीस हज़ार श्लोकयुक्त है। गरुड़ कहता है छह हज़ार श्लोकयुक्त था, अब लगभग एक लाख श्लोकयुक्त है। जिस ग्रन्थ में इतना हेर-फेर हो वह भी कहीं प्रमाण के योग्य हो सकता है? देखिए—

दैत्या: सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा कृते युगे भारते षट्सहस्त्र्याम्।
निष्कास्य कांश्चन् नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥ ६९॥

—गरु० उत्तरब्रह्म० अ० १

भाषार्थ—सब राक्षस लोग ब्राह्मणों के कुलों में पैदा होकर धर्मात्मा राजा के राज्य में बनी छह हज़ार श्लोकों की भारत-संहिता में से कुछ श्लोक निकालकर और कुछ नये बनाये श्लोकों को डालने का काम हमेशा करते हैं॥ ६९॥

अत: महाभारत की बात वेदानुकूल होने से ही प्रमाण मानी जा सकती है अन्यथा नहीं, और आप तो विश्वामित्र में रज और वीर्य दोनों की मौजूदगी भी मानते हैं (देखो नं० ३६८)।

(३७०) प्रश्न—प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥ —सायणाभाष्यभूमिका

भाषार्थ—जो उपाय प्रत्यक्ष में नहीं आता और जो अनुमति अक़लिया दलील में नहीं बैठता वह वेद के अनुष्ठान से मिल जाता है। यह वेद की वेदता है। —पृ० ३२२, पं० ६

उत्तर—आपका तथा आपके सायण का यह ख़याल कि 'वेद उन्हीं बातों का प्रतिपादन करता है जो प्रत्येक्ष तथा अनुमान से न जानी जावें' क़तई निर्मूल है। वेद सब सत्य विद्याओं के भण्डार हैं; जिनमें मनुष्योपयोगी सम्पूर्ण विषयों का वर्णन है। जैसाकि मनु ने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा: पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥ —१२।९७

भाषार्थ—चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रमों के उपयोगी जो विद्या हो चुकी, हैं और होंगी वे सब वेद से ही प्रसिद्ध होती हैं। चूँकि वेद **'रेतो मूत्रम्'** इत्यादि [यजु:० १९।७६] में कहता

है कि रजवीर्य के संयोग से गर्भ होता है, अतः केवल चरु से गर्भस्थिति वेदविरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

(३७१) प्रश्न—वेदोक्त पुत्रेष्टियज्ञ होने पर केवल चरुमात्र से पुत्र उत्पन्न होता है, इसको न्यायदर्शन ने माना है कि त्रिपिंडीश्राद्ध के मध्यमपिण्ड के भक्षण से स्त्री को गर्भ रहता है यह भी एक वेद का महत्त्व है। इसको मनु ने भी लिखा है। कात्यायनश्रौतसूत्र में इसकी विधि है।

—पृ० ३२२, पं० १०

उत्तर—आपने न्यायदर्शन का कोई प्रमाण नहीं दिया कि पुत्रेष्टियज्ञ होने पर केवल चरु से ही गर्भ हो जाता है। पुत्रेष्टियज्ञ के शेष भोजन से प्रसव-विरोधी रोगों का ही दूर होना सम्भव है। केवल चरुणभक्षण से गर्भ असम्भव तथा वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या है। मध्यम पिण्ड के भोजन से गर्भस्थिति पौराणिक गप्प ही है, चाहे वह मनु में लिखा हो चाहे किसी श्रौतसूत्र में उसकी विधि हो। चूँकि वेद रज और वीर्य के योग से गर्भस्थिति मानता है, अतः रज-वीर्य के योग के बिना गर्भस्थिति बतलानेवाले सम्पूर्ण लेख वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

(३७२) प्रश्न—आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। —यजुः० २।३३

हे पितरो! तुम गर्भस्थापन करो और कमल की माला पहिननेवाला इस स्त्री के पुत्र पैदा हो—यह स्वतः वेद कहता है, फिर हम कैसे मान लें कि चरु से गर्भ नहीं रहता?

—पृ० ३२२, पं० १४

उत्तर—यहाँ वेद में गर्भाधान का प्रकरण ही नहीं है। यहाँ पर तो वेदारम्भ का वर्णन है। यजमान अपने पुत्र को आचार्य को सौंपते हुए कहता है कि हे ज्ञान से रक्षा करनेवाले आचार्य तथा अध्यापको! आप इस बालक को गर्भवत् धारण करें। जैसाकि महाभारत में भी आता है—

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य, भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम्॥ ६॥

—महा० उद्योग० अ० ४४

भाषार्थ—जो इस संसार में आचार्यरूप योनि में प्रवेश करके गर्भरूप होकर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, वे इसी संसार में शास्त्रों के कर्त्ता बनते हैं और देह को त्यागकर परमधाम को प्राप्त होते हैं॥ ६॥

कहिए श्रीमान्‌जी! यहाँ वेदमन्त्र में यह कौन-से शब्दों का अर्थ है कि रज-वीर्य के योग के बिना केवल चरु से ही गर्भस्थिति हो जाती है? इस वेदमन्त्र में तो इस बात की गन्ध भी नहीं है, अतः विश्वामित्र गाधि तथा उसकी धर्मपत्नी के रज-वीर्य के योग से ही पैदा हुआ था और जन्म से क्षत्रिय होता हुआ तप करके गुण-कर्म-स्वभावानुसार ब्राह्मण बन गया।

(३७३) प्रश्न—किसी ब्राह्मण का पुत्र मतङ्ग नामक था। वह रथ पर सवार होकर यज्ञ कराने को जा रहा था कि उसको गधी के साथ बातचीत से पता लगा कि मैं ब्राह्मणी में नाई से पैदा हुआ चाण्डाल हूँ। उसने वापस आकर पिता को सब वृत्तान्त कह सुनाया और स्वयं मतङ्ग ने ब्राह्मण बनने के लिए घोर तप किया, किन्तु इन्द्र ने कहा कि ब्राह्मणजाति तप से प्राप्त नहीं हो सकती, अतः मतङ्ग पूर्ववत् चाण्डाल बना रहा। यह मतङ्ग का इतिहास है (महा० अनु० अ० २७-२९) इस कथा से मतङ्ग का ब्राह्मण होना लिखना सर्वथा अन्याय है। —पृ० ३२२-३२४

उत्तर—श्रीमान्‌जी स्वामीजी का लेख बिलकुल सत्य है कि मतंग ऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण बन गये थे और यह वही मतंग थे कि जिनके घर से विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस चुराकर खाया था जिसका संवाद कि महाभारत शान्तिपर्व अ० १४१ में दर्ज है, जिसमें यह श्लोक विद्यमान है कि—

विश्वामित्रस्तु मातंगमुवाच परिसान्त्वयन्।
क्षुधितोऽहं गतप्राणो हरिष्यामि श्वजाघनीम्॥ ४९॥

—महा० शान्ति० अ० १४१

भाषार्थ—विश्वामित्र ने मतंग को शान्त करते हुए कहा कि मैं भूख से मरा जाता हूँ। मैं कुत्ते की जाँघ ज़रूर चुराऊँगा॥ ४९॥

महाभारत के पढ़ने से यह भी पता लगता है कि वह वेदशास्त्र का ज्ञाता था तभी तो उसने वेद तथा धर्मशास्त्र का प्रमाण देकर विश्वामित्र को उपदेश किया है, जैसाकि—

नेदं सम्यग् व्यवसितं महर्षे धर्मगर्हितम्।
चाण्डालस्वस्य हरणमभक्ष्यस्य विशेषतः॥ ५६॥
यद्येष हेतुस्तव खादनेऽस्य न ते वेदः कारणं नार्यधर्मः।
तस्माद्भक्षेऽभक्षणे वा द्विजेन्द्र दोषं न पश्यामि यथेदमत्र॥ ८७॥

—महा० शान्ति० अ० १४१

भाषार्थ—हे महर्षे! आपने यह धर्म से निन्दित सम्यक् यत्न नहीं किया कि चाण्डाल के धन का चुराना और विशेष करके अभक्ष्य वस्तु का॥ ५६॥ यदि इस कुत्ते के मांस खाने में आपका यह हेतु है तो पता लगा कि आपके लिए वेद तथा आर्यधर्म प्रमाण नहीं हैं। इसलिए भक्ष्य-अभक्ष्य में आप दोष नहीं समझते जैसाकि मैं यहाँ देख रहा हूँ॥ ८७॥

अब वह उन्नति करके ब्राह्मण बना, यह हम महाभारत से दिखाते हैं, जैसाकि—

उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र ह।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः॥ १३॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्च द्रुपदो मत्स्य एव च॥ १५॥
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽऽश्रयात्॥ १६॥

—महा० शान्ति० अ० २९६

भाषार्थ—हे राजन्! मुनि लोगों ने जहाँ-तहाँ से पुत्रों को पैदा करके उनको अपने तप से ही ऋषि बना दिया॥ १३॥

हे राजन्! यवक्रीत, द्रोणाचार्य, द्रुपद, आयु, दत्त और मत्स्य तथा 'मतङ्ग', हे जनक! ये सब तप के आश्रय से ही अपनी अवस्था को प्राप्त हुए हैं॥ १५-१६॥ विशेष देखो (नं० ३५२)।

इससे सिद्ध है कि मतङ्ग ऋषि भी चाण्डाल से द्रोणाचार्य-जैसा ब्राह्मण बन गया। जन्माभिमानी लोगों ने इस सचाई को छिपाने के लिए उपर्युक्त कथा घड़ी, जोकि सर्वथा असम्भव, मिथ्या, वेदशास्त्र तथा इतिहास के विरुद्ध है। इस कथा के मिथ्यात्व में निम्न हेतु हैं—

(१) मतङ्ग के पिता का नाम नहीं लिखा कि वह किस ब्राह्मण का पुत्र था और उसकी माता तथा नाई का क्या नाम था?

(२) एक स्थान में ब्राह्मण का पुत्र तथा दूसरे स्थान में नाई का पुत्र लिखना परस्पर विरोध होने से दोनों मिथ्या हैं।

(३) गधी का बोलना तथा उससे मतङ्ग को ज्ञान होना अत्यन्त असम्भव बात है। क्या गधी नाई तथा मतङ्ग की माता के व्यभिचार के समय मौजूद थी और क्या गधी और मतङ्ग परस्पर एक-दूसरे की भाषा को समझते थे? जिस बात को गधी ने जान लिया तथा उस समय का ब्राह्मण न जान पाया, क्या वे ब्राह्मण उस गधी से भी बुद्धिहीन थे? ऐसा नहीं माना जा सकता, अतः

यह कथा सर्वथा मिथ्या ही है।

(४) क्या मतङ्ग पहले यज्ञ कराता रहा था वा नहीं? यदि कराता रहा था तो आपके लेखानुसार ही चाण्डाल होते हुए ब्राह्मण का काम करता रहा, किन्तु कोई उसे न पहचान सका, अत: पता लगा कि ब्राह्मणों में सिवाय कर्म करने के क्षत्रिय, चाण्डाल आदि से और कोई विशेषता नहीं है।

(५) गधी ने भी उसके क्रूर कर्म से ही चाण्डाल होने का अन्दाज़ा लगाया शक्ल से नहीं, अत: पता लगा कि मनुष्यों में कर्मानुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रं, चाण्डालादि का पता लग सकता है, अन्यथा नहीं।

(६) मतङ्ग ने जो ब्राह्मण बनने के लिए तप किया तो उस समय तप करने से ब्राह्मण बन जाते होंगे तभी तप किया। यदि तप से ब्राह्मण बनने का रिवाज ही न होता तो ब्राह्मणार्थ तप का साहस कैसे होता?

(७) इन्द्र का कहना कि तप से कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता स्वयं महाभारत के ही विरुद्ध है, क्योंकि इससे अगले ही अध्याय में वीतहव्य के ब्राह्मण बनने का ज़िक्र है—

शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः। राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्॥ ५॥

—महा० अनु० अ० ३०

भाषार्थ—हे राजन्! सुनो जैसे महायश राजर्षि राजा वीतहव्य दुर्लभ, पूज्य ब्राह्मणपद को प्राप्त हुआ॥ ५॥

(८) विश्वामित्र तथा अनेक व्यक्तियों ने यत्र-तत्र जन्म लेकर तप से ब्राह्मणपद को प्राप्त किया, जिनका वर्णव्यवस्था-प्रकरण में विस्तारपूर्वक वर्णन है।

(९) भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व खण्ड १ अध्याय ३३ श्लोक ३ से २४ तक में लिखा है 'त्रिपाठी नाम का एक ब्राह्मणा था, उसकी स्त्री का नाम कामिनी था। एक बार वह ब्राह्मण किसी दूसरे ग्राम में कथा करने गया और वह एक मास तक घर न आया, तो कामिनी ने कामातुर होकर एक लकड़ियाँ बेचनेवाले निषाद को पाँच रुपये देकर उससे भोग किया। उसके गर्भ हो गया। दश मास पश्चात् पुत्र पैदा हुआ। त्रिपाठी ने उसका जातकर्म-संस्कार किया और वही व्याधकर्मा अन्त में राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य्य बना, जैसेकि—

विक्रमादित्यराज्ये तु द्विजः कश्चिदभूद् भुवि।
व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत्॥ ३॥
विक्रमादित्यभूपस्य यज्ञाचार्यो बभूव ह॥ २४॥

—भविष्य० प्रति० स० खं० १, अ० ३३

भाषार्थ—विक्रमादित्य के राज्य में कोई ब्राह्मण हुआ था। उसका नाम व्याधकर्मा प्रसिद्ध था तथा वह ब्राह्मणी में शूद्र से पैदा हुआ था॥ ३॥ वह विक्रमादित्य के यज्ञ में आचार्य बना।

जब व्याधकर्मा चाण्डाल से ब्राह्मण बन गया तो मतङ्ग के ब्राह्मण बनने में रुकावट क्यों?

(१०) इस कथा के अन्त में लिखा है कि—

छन्दोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि।
कीर्तिश्च ते अतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति॥ २४॥

—महा० अनु० अ० २९

भाषार्थ—इन्द्र ने वर दिया कि हे वत्स! तू वेदों का विद्वान् प्रसिद्ध होगा तथा स्त्रियों से पूज्य होगा और तेरी तीनों लोकों में अत्यन्त कीर्ति होगी॥ २४॥

इस मिथ्या कथा में भी यहाँ वेदों का विद्वान् होना तथा ब्राह्मणी आदि समस्त स्त्रियों का पूज्य तथा तीनों लोकों में कीर्तिवाला होना भी ब्राह्मणपद की प्राप्ति को सिद्ध करता है।

अत: प्रत्येक अवस्था से सिद्ध है कि मतङ्ग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गया।

(३७४) प्रश्न—फिर स्वामीजी ने जो **'स्वाध्यायेन'** इत्यादि [मनु० २।२८] यह श्लोक देकर सिद्ध किया है कि स्वाध्याय आदि से यह शरीर ब्राह्मण का हो जाता है, यह लेख ग़लत है।

—पृ० ३२४, पं० १५

उत्तर—स्वामीजी ने जो लिखा है वह बिल्कुल ठीक है। वह श्लोक तथा अर्थ इस प्रकार है—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ २८॥

—मनु० २

इसका अथ पूर्व कर आये हैं। यहाँ भी संक्षेप से कहते हैं। **(स्वाध्यायेन)** पढ़ने-पढ़ाने **(जपैः)** विचार करने-कराने **(होमैः)** नानाविधि होम के अनुष्ठान, **(त्रैविद्येन)** सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने-पढ़ाने **(इज्यया)** पूर्णमासी, इष्टि आदि के करने **(सुतैः)** पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति **(महायज्ञैश्च)** पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ **(यज्ञैश्च)** अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषाण, परोपकारादि सत्यकर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़के दुष्टाचार छोड़, श्रेष्ठाचार में वर्तने से **(इयम्)** यह **(तनुः)** शरीर **(ब्राह्मी)** ब्राह्मण का **(क्रियते)** किया जाता है॥ २८॥

(३७५) प्रश्न—प्रथम तो मनु का यह श्लोक किसी भी वेदमन्त्र के अनुकूल नहीं, फिर यह आर्यसमाज को कैसे प्रमाण होगा?

—पृ० ३२४, पं० १८

उत्तर—मनु का यह श्लोक **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** [यजुः० ३१।११] के अनुकूल होने से आर्यसमाज को प्रमाण है। आप कोई वेदमन्त्र पेश करके इस श्लोक को वेद के विरुद्ध सिद्ध करें।

(३७६) प्रश्न—यज्ञ स्वामीजी ने वेदों से उड़ा दिये। जब वेद में यज्ञ रहे ही नहीं, तो आर्यसमाजी करेंगे कहाँ से?

—पृ० ३२४, पं० २०

उत्तर—स्वामीजी वेदों में यज्ञ के विधान को स्वीकार करते हैं और उपर्युक्त श्लोक के अर्थ में स्वामीजी ने अपने मन्तव्य के अनुकूल ही 'इज्यया, यज्ञ, महायज्ञ' शब्दों का अर्थ करते हुए यज्ञशब्द की व्याख्या भी कर दी है। हाँ, स्वामीजी आपके मन्तव्यानुसार अश्वमेध, गोमेध, अजामेध, नरमेध आदि यज्ञों में घोड़े, गौ, बकरे तथा मनुष्य आदि को मारकर उनके मांस से हवन करने को वैदिक नहीं मानते।

(३७७) प्रश्न—स्वामीजी ने पाठ बदलकर श्लोक में **'व्रतैर्होमैः'** के स्थान में **'जपैर्होमैः'** बना लिया। जप बार-बार उच्चारण का नाम है। उसका स्वामीजी मूर्त्तिपूजा में खण्डन कर चुके हैं। यहाँ पर उसको ही शुभकर्म बतला दिया।

—पृ० ३२४, पं० २७

उत्तर—स्वामीजी ने यहाँ चौथे समुल्लास में वर्णव्यवस्था प्रकरण में इस श्लोक को दर्ज करते हुए लिखा है कि 'इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं'। सो यही श्लोक स्वामीजी ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचारियों को उपदेश-प्रकरण में दिया है। वहाँ पर पाठ **'व्रतैर्होमैः'** ही है और और उसका अर्थ इस प्रकार से किया है कि '**(व्रतैः)** ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम पालने' और यहाँ पर इस प्रकार से अर्थ किया है कि '**(जपैः)** विचार करने-कराने' ये दोनों ही अर्थ स्वामीजी के मन्तव्य के अनुकूल हैं और दोनों ही शुभकर्म भी हैं। इस पाठ को बदलने में स्वामीजी का कोई स्वार्थ प्रतीत नहीं होता, और न ही इस पाठभेद से वास्तविक श्लोक के अर्थों में कोई भेद पड़ता

है। जैसे सनातनधर्म व्रत तथा जप को शुभकर्म मानता है वैसे ही आर्यसमाज भी मानता है। केवल अर्थों का अन्तर है। स्वामीजी व्रत का अर्थ ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम तथा जप का अर्थ विचार करना-कराना मानते हैं, अतः यह पाठभेद हमारे सिद्धान्त का बाधक तथा स्वार्थसाधक नहीं है।

(३७८) प्रश्न—'ब्राह्मीयम्' का अर्थ **'ब्राह्मण का'** नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि 'इने अनुष्ठानों से ब्रह्मप्राप्ति के योग्य शरीर बनता है'। —पृ० ३२४, पं० २२

उत्तर—श्रीमान्‌जी यह **'ब्राह्मीयम्'** एक शब्द नहीं है। अपितु **'ब्राह्मी इयम्'** इन दो शब्दों का समूह है। स्वामीजी ने यहाँ चौथे समुल्लास में संक्षेप से 'ब्राह्मी' का अर्थ किया है 'ब्राह्मण का' किन्तु तीसरे समुल्लास में विस्तारपूर्वक 'ब्राह्मी' का अर्थ किया है 'वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर' स्वामीजी वेद तथा परमेश्वर की प्राप्ति को ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं। ब्रह्म नाम वेद तथा परमेश्वर दोनों का है। इसलिए 'शरीर का ब्रह्मप्राप्ति के योग्य' बनाना तथा 'ब्राह्मण का शरीर' बनना एक ही बात है, इसमें तनिक भी अन्तर नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण का लक्षण भी यही है, जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है, जैसेकि—

जन्मना जायते शूद्रो व्रतबन्धाद् द्विजो भवेत्। वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणो भवेत्॥

—'वज्रसूची' सटीक लघुटंकनामटीका पृ० २४, सं० १८३९ ई०

प्रकाशक ऐल विलकिंसन, पोलीटिकल एजण्ट, भूपाल। वर्त्तमान पुस्तक स्वतन्त्रानन्द पुस्तकालय, हीरा मारकीट बाज़ार, कसेरियाँ, अमृतसर, में प्राप्य है।

भाषार्थ—जन्म से प्रत्येक मनुष्य शूद्र पैदा होता है। यज्ञोपवीत धारण करने से द्विज हो जाता है। वेद का अभ्यास करनेवाला विप्र हो जाता है। ब्रह्म का जाननेवाला ब्राह्मण होता है।

यद्यपि वर्त्तमान वज्रसूची उपनिषद् में जोकि उपनिषदों के गुटके में ३७वीं संख्या पर पाई जाती है, यह श्लोक नहीं है। जन्माभिमानी लोगों ने उसे निकाल दिया है। तो भी वर्त्तमान वज्रसूची उपनिषद् वर्णव्यवस्था को कर्मानुसार ही प्रतिपादन करती है, जैसेकि—

वज्रसूचिकोपनिषत्

यज्ज्ञानाद्यान्ति मुनयो ब्राह्मण्यं परमाद्भुतम्। तत् त्रैपदब्रह्मतत्त्वमहमस्मीति चिन्तये॥ १॥

ओ३म्। आप्यायन्त्विति शान्तिः॥

चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्तिसाक्षिणे। नमो वेदान्तवेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे।

ओं वज्रसूचीं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम्।
दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम्॥ १॥

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मणा एव प्रधाना इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम्॥ तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम्, किं कर्म, किं धार्मिक इति॥ तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न। अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्त्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसम्भवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च। तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति॥ तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न। आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामरणधर्माधर्मादिसाम्यदर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात्। पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादिदोषसम्भवाच्च। तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति॥ तर्हि जातिर्ब्राह्मण इति चेत्तन्न। तत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसम्भवा महर्षयो बहवः सन्ति। ऋष्यशृङ्गो मृग्याः। कौशिकः कुशात्। जाम्बूको जम्बूकात्। वाल्मीको वल्मीकात्। व्यासः कैवर्तकन्यायाम्। शशपृष्ठात् गौतमः। वसिष्ठ उर्वश्याम्। अगस्त्यः कलशे

जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति तस्मान्न जातिर्ब्राह्मण इति॥ तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न। क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति। तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति॥ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न। सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचितागामिकर्मसाधर्म्यदर्शनात्कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति। तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति॥ तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न। क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्तिः। तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति॥ तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम॥ यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षडूर्मिषड्भावेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः, शमदमादि सम्पन्नो भावमात्सर्यतृष्णाशामोहादिरहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेतावर्तते॥ एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः॥ अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव॥ सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्मभावयेदात्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्म भावयेदित्युपनिषत्। ओं आप्यायन्त्विति शान्तिः॥

इति वज्रसूच्युपनिषत्समाप्ता॥

(३७९) प्रश्न—इस श्लोक में कई बातें ऐसी हैं, जिनको आर्यसमाज वैदिक ही नहीं मानता।
—पृ० ३२५, पं० ७

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है। यदि आर्यसमाज इस श्लोक को वेदानुकूल न मानता तो इसका प्रमाण ही न देता, अतः आर्यसमाज इस श्लोक में प्रतिपादित सब सत्कर्मों को वैदिक मानता है, जैसेकि—

(१) **स्वाध्याय—'अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः'** [मनु० १०।१] इस श्लोक में व्यवस्थित तीनों वर्णों को प्रतिदिन स्वाध्याय करने की आज्ञा है, ताकि वे अपना ब्रह्मचर्य अवस्था का पढ़ा हुआ भूल न जावें, और पढ़ाने की आज्ञा केवल ब्राह्मण को ही है। व्यवस्थित शूद्र को स्वाध्याय की आज्ञा नहीं, क्योंकि शूद्र कहते ही उसको हैं जो प्रयत्न के पश्चात् भी न पढ़ सका हो। हाँ, सम्भावित चारों वर्णों को पढ़ने का अधिकार है, अर्थात् चारों वर्णों की सन्तान को वेदादि पढ़ने का अधिकार है।

(२) **व्रत**—ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि नियम का पालन तथा मधु-मांस-वर्जनादि नियमों का पालन आर्यसमाज वेदानुकूल मानता है, जिसका पूरा वर्णन सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में विद्यमान है।

(३) **होम**—नानाविध होम के अनुष्ठान को आर्यसमाज वैदिक मानता है। तीसरे समुल्लास में सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र से भी होम की आज्ञा दोनों समय करने की है, और चरु नाम सामग्री का है, जो हवन में एक आवश्यक वस्तु है।

(४) **त्रैविद्या**—सम्पूर्ण वेदों को शब्द-अर्थ-सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने-पढ़ाने के व्रत का आर्यसमाज के गुरुकुलों में ब्रह्मचारीगण हमेशा ही पालन करते हैं।

(५) **इज्या**—पौर्णमासी आदि पार्वणिक यज्ञ तथा ब्रह्मचर्य अवस्था में देव, अर्थात् विद्वानों, ऋषि, अर्थात् वेद के ज्ञाताओं, पितृ अर्थात् अन्न-बल तथा ज्ञान से रक्षा करनेवाले आचार्य आदि पितरों की सेवा करके उनकी तृप्ति करना आर्यसमाज को इष्ट है।

(६) **सुत**—धर्म से सन्तानोत्पत्ति आर्यसमाज वेदानुकूल मानता है।

(७) **महायज्ञ**—पाँच महायज्ञों को आर्यसमाज वेदानुकूल धर्म मानता ही है।

(८) यज्ञ—अग्निष्टोम अर्थात् ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को भी आर्यसमाज वेदानुकूल स्वीकार करता है।

अब बतलाइए, इस श्लोक में वह कौन-सी बात है जिसको आर्यसमाज अवैदिक कहता है? यदि नहीं, तो आपका झूठ बोलना आत्महत्या है या नहीं? इससे सिद्ध है कि आप झूठ बोलकर आत्महत्या करके सनातनधर्मियों को गुमराही के समुद्र में गिरा रहे हैं।

(३८०) प्रश्न—'येनास्य' इत्यादि पर स्वामीजी! पिता-पितामहादिक इस आपके नक़ली ईसाई मार्ग से नहीं चले। वर्णव्यवस्था का न बदलना यही वेद का सिद्धान्त है।

—पृ० ३२५, पं० २९

उत्तर—आपने वेद का कोई प्रमाण नहीं दिया, जिससे यह सिद्ध हो कि वर्णव्यवस्था तब्दील नहीं होती और हमने वेद, स्मृति, इतिहास के अनेक प्रमाण दिये हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि वर्ण कर्मानुसार है जन्म से नहीं है, क्योंकि यदि वर्ण जन्म से हो तो उसकी व्यवस्था करने की क्या आवश्यकता रही जब वह जन्म से व्यवस्थित ही है? अतः वर्ण के साथ व्यवस्था शब्द की विद्यमानता ही वर्णों को गुण-कर्म-स्वभावानुसार व्यवस्था शब्द का मोहताज सिद्ध कर रही है। गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णों का बदलना ही वेद का सिद्धान्त है। स्वामीजी ने यह सिद्धान्त ईसाइयों से नहीं लिया, अपितु ईसाइयों ने यह सिद्धान्त हमारे वेदशास्त्रों से लिया है और हमारे पिता-पितामहादि परम्परा से इस सिद्धान्त को मानते आये हैं, जैसाकि हमने वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के प्रमाणों से इसको सिद्ध किया है। हम गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था की पुष्टि में महाभारत का एक और प्रमाण पेश करते हैं। न्यायप्रिय सज्जन न्यायानुसार इसपर विचार करके सत्यसिद्धान्त को स्वीकर करें—

युधिष्ठिर उवाच — **कीदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते।**
शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यं न भारत॥ १९॥

भीष्म उवाच — **मातापितृभ्यां यस्त्यक्तः पथि यस्तं प्रकल्पयेत्।**
न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः॥ २०॥
अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन् सम्प्रति लक्षयेत्।
यो वर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते॥ २१॥

युधिष्ठिर उवाच — **कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्य वा कथम्।**
देया कन्या कथं चेति तन्मे ब्रूहि पितामह॥ २२॥

भीष्म उवाच — **आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा।**
त्यक्तो मातापितृभ्यो यः सवर्णं प्रतिपद्यते॥ २३॥
तद् गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात् संस्कारमच्युत।
अथ देया तु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर॥ २४॥

—महा० अनुशा० अ० ४९

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि—किया हुआ पुत्र कैसे संग्रह से जाना जाता है? जहाँ पर बीज तथा क्षेत्र प्रमाण नहीं माना जाता॥ १९॥ भीष्म ने उत्तर दिया कि—माता और पिता ने जिसको त्याग दिया हो, उसे जो रास्ते में प्राप्त कर ले और उसके माता-पिता को हम जानते नहीं वही कृत्रिम पुत्र है॥ २०॥ अनाथ बच्चों का जो भी स्वामी हो, जो वर्ण भी उसका पालन-पोषण करे वही वर्ण उसका हो जाता है॥ २१॥ युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि—उसका संस्कार कैसे करना चाहिए और वह किसका, कैसे है, और उसको कन्या कौन दे, यह मुझसे कहिए॥ २२॥ भीष्म ने उत्तर

दिया कि—जो वर्ण उसका पालन-पोषण करता है वह अपने समान ही स्वामी बनकर उसका संस्कार करे। जो माता-पिता ने त्याग दिया वह पालनेवाले का सवर्ण ही होता है॥ २३॥ अपने गोत्र तथा बन्धु के समान उसका संस्कार करे और उसी वर्ण का पुरुष उसे कन्या भी दे॥ २४॥

यह सब वृत्त कर्ण के साथ हुआ। —महाभारत

कहिए महाराज! यदि शूद्र का पुत्र ब्राह्मण को तथा ब्राह्मण का पुत्र शूद्र को पड़ा हुआ मिल जावे और वह उसका पालन-पोषण करके अपने ही वर्ण में उसकी शादी कर दे तो बालकों का वर्ण पालन करनेवाले के अनुकूल होने से वर्ण में परिवर्तन हो गया, या नहीं? अब आप किस मुख से कह सकते हैं कि वेदों तथा धर्मशास्त्र में वर्ण-परिवर्तन का विधान नहीं है।

(३८१) प्रश्न—जो ब्राह्मण या क्षत्रिय ईसाई, मुसलमान हो गया वह अब भी जाति का ब्राह्मण-क्षत्रिय ही है। जाति तो शरीर के पतन पर बदलेगी। यदि कहो उससे खान-पान और विवाहादि सम्बन्ध क्यों नहीं करते तो वह भ्रष्ट हो गया है, इस कारण उस जाति में ग्रहण नहीं होता। —पृ० ३२६, पं० ३

उत्तर—यदि कोई ब्राह्मण वा क्षत्रिय ईसाई वा मुसलमान हो जाए तो आप उससे रोटी-बेटी का व्यवहार क्यों नहीं करते, जब आप वर्ण-व्यवस्था जन्म से मानते हैं कर्म से नहीं तो ईसाई या मुसलमान होने से उनका जन्म तो तब्दील होता नहीं और कर्मों का आपकी दृष्टि में कोई महत्त्व ही नहीं है। और जाति की तब्दीली शरीर की तब्दीली से होती है और शरीर उनका तब्दील होता नहीं, अत: आपके खयाल में वे दोनों जाति से भी ब्राह्मण-क्षत्रिय ही हैं, फिर यह बतलावें कि वे भ्रष्ट किस पदवी से हो गये जो आप उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करने को तैयार नहीं हैं और उनको जाति में भी ग्रहण करने को तैयार नहीं हैं। बस, जिस तब्दीली के कारण उनको भ्रष्ट माना जाता है और जिस तब्दीली के कारण आप उससे रोटी-बेटी का व्यवहार करने को तैयार नहीं हैं, और प्रायश्चित्त करने के पीछे जिसकी तब्दीली के कारण आप फिर से उसे उत्कृष्ट मानने तथा रोटी-बेटी का व्यवहार भी करने को तैयार हो जाते हैं, उसी का नाम ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व है जो कर्मों के तब्दील होने से तब्दील होते रहते हैं। शरीर या जन्म का नाम ब्राह्मण-क्षत्रिय नहीं है, अपितु शरीर का नाम मनुष्यत्व है जोकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ईसाई, मुसलमान है। इन सबमें शरीर, जन्म-मरण आदि समान होते हुए भी कर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो एक-दूसरे में ब्राह्मणत्वादि भेद का कारण है। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण आदि वर्ण कर्मानुसार ही हैं, जन्म से नहीं हैं।

(३८२) प्रश्न—सभी मनुष्य लड्डू खाते हैं, किन्तु जो लड्डू मैले से भिड़ गया, उसको कोई नहीं खाएगा, क्योंकि वह भ्रष्ट हो गया। इसी प्रकार ब्राह्मण-क्षत्रिय ईसाई-मुसलमान हो जाने से जाति के ब्राह्मण, क्षत्रिय रहने पर भी भ्रष्ट हो जाते हैं, अतएव उनका व्यवहार छोड़ दिया जाता है। —पृ० ३२६, पं० ९

उत्तर—यद्यपि यह नियम कि गन्दी नाली में गिरने से व्यवहार के योग्य नहीं रहता, महज़ मनुष्यों से बनाई हुई खाने की चीज़ों पर ही लागू होता है वरना लड़का, लड़की स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस कपड़ा, रुपया, चाँदी, सोना, सब्ज़ी, फल, अन्न सब गन्दी नाली से निकालकर शुद्ध करके बरते जाते हैं। इन्सान कोई खाने की चीज नहीं। इसकी शुद्धि भी लिखी है। **'अद्भिर्गात्राणि'** इति मनु०। ब्राह्मण के लिए लड्डू की मिसाल उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जैसे लड्डू अपनी विशेष गोल आकृति के कारण जलेबी, बालुशाही, शक्करपारा, बरफ़ी आदि मिठाइयों में से स्पष्ट पहचाना जाता है, वैसे ब्राह्मण की कोई विशेष आकृति नहीं है जिससे वह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राक्षस, चाण्डाल, ईसाई, मुसलमानों में स्पष्ट रूप से पहचाना जावे। हाँ, मनुष्य के लिए लड्डू की मिसाल

उपयुक्त है, क्योंकि मनुष्य भी लड्डू की भाँति गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि में से अपनी विशेषाकृति के कारण स्पष्ट पहचाना जाता है। जैसे लड्डू नाली में गिरने के पश्चात् रहता तो लड्डू ही है, परन्तु अपनी पवित्रता नष्ट हो जाने के कारण खाने के योग्य नहीं रहता, वैसे ही मनुष्य भी ब्राह्मण वर्ण से गिरकर ईसाई या मुसलमान हो जाने पर भी रहता मनुष्य ही है, किन्तु ब्राह्मणवर्ण नष्ट हो जाने के कारण वह व्यवहार के योग्य नहीं रहता, अतः ब्राह्मणवर्ण लड्डू की भाँति नहीं, अपितु मनुष्य लड्डू की भाँति तथा ब्राह्मणवर्ण लड्डू की पवित्रता की भाँति है, जोकि तब्दील होकर अपवित्रता, भ्रष्टता की सूरत में तब्दील हो जाती है, वैसे ही ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ण भी ईसाई-मुसलमान की सूरत में तब्दील हो जाता है। इससे सिद्ध है कि मनुष्यजाति में ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ईसाई, मुसलमानादि भेद कर्मानुसार हैं, जन्म से नहीं हैं और गन्दी नाली में गिरने से लड्डू की भ्रष्टता भी हीनकर्म से मनुष्य गिर जाता है, यही सिद्ध करती है।

(३८३) प्रश्न—'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इस मन्त्र में निराकार ईश्वर की अनुवृत्ति स्वामीजी बतलाते हैं। इस अध्याय में तो निराकार ईश्वर कहा ही नहीं। इस अध्याय में तो **'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'** इस मन्त्र द्वारा साकार विराट् का वर्णन है। आगे चलकर **'तं यज्ञम्'** इस मन्त्र में यह वर्णन किया कि जो सबसे पहले पैदा हुआ था, उस विराट् यज्ञपुरुष का ऋषियों ने पूजन किया। फिर यहाँ निराकार कहाँ से धँस बैठा? —पृ० ३२६, पं० १२

उत्तर—आपने स्वामीजी के लेख को चुराकर मनमाना पाठ लिख दिया। स्वामीजी का लेख यूँ है कि 'यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार, व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है', इससे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामीजी 'पुरुष' शब्द के अर्थ 'निराकार व्यापक परमात्मा' करते हैं और पुरुष शब्द इससे पहले मन्त्र **'यत्पुरुषम्'** में ही पड़ा है। पुरुष शब्द के अर्थ करते हुए निरुक्त लिखता है—

पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा। पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य॥
'यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित्।
वृक्षइव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' इत्यपि निगमो भवति॥ १॥

—निरु० अ० २ खं० ३। १

भाषार्थ—पुरुष उसको कहते हैं कि जो इस सारे संसार में व्यापक हो रहा है। जो परमेश्वर स्वयं इस सारे जगत् को अपने स्वरूप से व्याप्त कर रहा है, उसी का नाम पुरुष है। 'पुर' कहते हैं ब्राह्मण्ड और शरीर को। उसमें जो सर्वत्र व्याप्त और जो जीव के भीतर भी व्यापक अर्थात् अन्तर्यामी है, उसका नाम पुरुष है।

जिस पूर्ण परमेश्वर से उत्तम कोई नहीं और जिससे प्राचीन कोई नहीं और जिस परमात्मा से सूक्ष्म तथा महान् कोई नहीं, जो अद्वितीय वृक्ष की भाँति सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि को धारण करके अचलरूप से आकाश में व्यापक होकर ठहरा है उस, परमात्मा से ही यह सारा जगत् पूर्ण हो रहा है। यह भी प्रमाण है। इस प्रमाण से सिद्ध है कि पुरुष का अर्थ सर्वव्यापक है॥ १॥

सर्वव्यापक निराकार पदार्थ ही हो सकता है। साकार सर्वव्यापक नहीं होता, अतः पुरुष का अर्थ निराकार, व्यापक परमात्मा बिल्कुल ठीक है। **'सहस्त्रशीर्षा'** तथा **'तं यज्ञं'** इन दोनों मन्त्रों में भी व्याप्त तथा निराकार परमात्मा बिल्कुल ठीक है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य तथा वेदानुकूल है।

(३८४) प्रश्न—आपका यही तो अर्थ है कि 'जो सबमें उत्तम हो वह ब्राह्मण, आपके हिसाब से राजा ब्राह्मण, मन्त्री ब्राह्मण, पहलवान ब्राह्मण, गायकशिरोमणि ब्राह्मण, खूबसूरत ब्राह्मण, रण्डी ब्राह्मण, जो उत्तम होंगे, ये सब ब्राह्मण होंगे इनमें कुछ-न-कुछ उत्तमता अवश्य रहती है।
—पृ० ३२६, पं० २०

उत्तर—वाह महाराज! खूब समझे! इस समझ ने तो आपको बूझबुझक्कड़ का भी दादा सिद्ध कर दिया। क्या आप उपमालंकार को भी नहीं समझते? श्रीमान्‌जी! उपमालंकार में उपमान के गुण का उतना ही हिस्सा लिया जाता है जितने गुणों से कहनेवाला उपमेय के गुणों की साम्यता करना चाहता है। यदि मैं आपको किसी समय यह कह दूँ कि आप बड़े शेर हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि मैं आपको हैवान, दरिन्दा या पूँछवाला कहना चाहता हूँ, अपितु मेरा अभिप्राय यही होगा कि आप शेर-जैसे बहादुर हैं। यदि मैं आपकी धर्मपत्नी को 'माताजी नमस्ते' कह दूँ तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं उसको अपने बाप की पत्नी कहना चाहता हूँ, अपितु मैं उसे माता के समान पूज्या समझता हूँ। इसी प्रकार स्वामीजी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि 'जो पूर्णव्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो वह द्विज' इसका यह अभिप्राय है कि जैसे मुख में शेष शरीर की अपेक्षा पाँच गुणा ज्ञान है और मुख शरीर को उलटे रास्ते से हटाकर सीधे रास्ते पर चलाता है और मुख ही अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ाता है, वैसे ही जो मनुष्य साधारण लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक उत्तम ज्ञान रखता हो, लोगों को उलटे रास्ते से हटाकर सीधे रास्ते पर चलावे तथा अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावे वह द्विज कहाने का अधिकारी है। जैसाकि मनु ने भी लिखा है कि **'विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्।'** (मनु० २।१५५)। विप्रों को ज्ञान के कारण ज्येष्ठ माना जाता है। यदि कोई राजा, मन्त्री, पहलवान, गायक, खूबसूरत तथा रण्डी भी अपने-अपने काम को छोड़कर मुख के समान अत्यन्त ज्ञानी होकर उपदेश तथा अध्यापक का काम करने लग जावें तो निःसन्देह वे द्विज बन सकते हैं अन्यथा नहीं। हाँ, सनातनधर्म के सिद्धान्तानुसार एक पुरुष या स्त्री, विप्र के घर जन्म लेकर मद्यपान, मांस-भक्षण, वेश्यापन, वेश्यागमन, गोघात, गोमांस-भक्षण, चोटी कटा, यज्ञोपवीत उतार, मुसलमान, ईसाई हो गोमांस का व्यापार इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रकार के कुकर्म करते हुए भी ब्राह्मण ब्राह्मणी कहा सकते हैं, क्योंकि सनातनधर्म जन्म से वर्णव्यवस्था मानता है, कर्म से नहीं, (देखो नं० ३८१)।

(३८५) प्रश्न—'जिसमें बल, वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय' बलवान् क्षत्रिय, शेर क्षत्रिय और भैंसा क्षत्रिय।

—पृ० ३२६, पं० २४

उत्तर—बेशक जिस मनुष्य में बल वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय। जैसे दोनों भुजा अपने-आपको आपत्ति में डालकर भी बाकी शरीर की रक्षा करती हैं, वैसे ही जो पुरुष अपने-आपको आपत्ति में डालकर भी सब प्रजा की रक्षा करता है वह क्षत्रिय कहाता है, जैसाकि **'क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।'** [मनु० २।१५५] क्षत्रियों की बल से उत्तमता मानी जाती है। वेद ने चूँकि वर्णव्यवस्था पुरुषों के लिए प्रतिपादन की है पशुओं के लिए नहीं और न ही पशु अपने बल और वीर्य से दूसरे पशुओं की रक्षा कर सकते हैं, अपितु बलवान् पशु निर्बलों को सताते और मार खाते हैं, अतः शेर तथा भैंसे को क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता।

(३८६) प्रश्न—'ऊरू के बल से जो देश-विदेश जावे वह वैश्य' कोई आर्यसमाजी पण्डित पेशावर से पैदल चलकर कलकत्ते पहुँच जावे तो वह आपकी दृष्टि में वैश्य, क्योंकि ऊरू के बल से आया है। आपके इस लक्षण से तो द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, गाय, भैंस, भेड़, बकरी सभी वैश्य हो जावेंगे, क्योंकि ये सब ऊरू के बल से चलते हैं।

—पृ० ३२६, पं० २७

उत्तर—ग़लत उद्धरण देकर जनता को धोखा देना आपका मुख्य धर्म है। देखिए, स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—'जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से आवे-जावे, प्रवेश करे वह वैश्य' बेशक जो भी मनुष्य पदार्थों में प्रवेश करने के लिए अर्थात् व्यापार वा खेती वा

शिल्पकारी के लिए, पदार्थों को प्राप्त करने के लिए ऊरू के बल से देश-देशान्तर में जावेगा वह वैश्य कहा जावेगा। चाहे वह आर्यसमाज का उपदेशक हो वा जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि कोई भी हो, जैसेकि—

विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरुचिः शुचिः। वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥ ६॥

—महा० शान्ति० अ० १८९

वैश्यानां धान्याधनतः। —मनु० २। १५५

भाषार्थ—जो पशुओं तथा खेती आदि में शीघ्र प्रवेश करता है, दान देता है, पवित्रता-प्रेमी है, वेद पढ़ता है वह वैश्य है॥ ६॥ वैश्यों में धान्य-धन से बड़प्पन है॥ १५५॥

अतः पशु, खेती, अन्न, धन आदि समस्त पदार्थों में हर प्रकार से प्रवेश करनेवाले का नाम वैश्य है। हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशुओं को वैश्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रथम तो वेद ने वर्णव्यवस्था पशुओं के लिए नहीं लिखी, दूसरे पशु सम्पूर्ण पदार्थों चाँदी, सोना, हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा आदि व्यपार तथा शिल्प की वस्तुओं में प्रवश की बुद्धि नहीं रखते। शब्दों की व्युत्पत्ति करके भी उसको योग्यता से ही चरितार्थ किया जाता है। जैसे पति के अर्थ हैं रक्षा करनेवाला तो क्या आप बिना योग्यता का विचार किये प्रत्येक रक्षा करनेवाले पिता, पुत्र, भाई, चौकीदार, सेनापति, राजा, कुत्ता, बैल, गधा, घोड़ा आदि को प्रत्येक स्त्री का पति स्वीकार कर लेंगे, अतः योग्यता के अनुसार ही व्युत्पत्ति के अर्थ चरितार्थ हुआ करते हैं।

(३८७) प्रश्न—'जो पैर के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र'—आपकी दृष्टि में पैर मूर्ख हैं और भुजा चारों वेद पढ़ी हैं, पेट दर्शनों का पण्डित है और ऊरू वैयाकरण हैं। यह आप कहाँ की अक़्ल खर्च कर रहे हैं। पैर बोलते नहीं, तो भुजा, पेट, ऊरू भी तो सत्यार्थप्रकाश नहीं बाँचते। —पृ० ३२७, पं० ३

उत्तर—आप यहाँ पर उपमालंकार के सिद्धान्त को फिर भूल गये, यहाँ पर स्वामीजी का लेख यूँ है कि 'जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है'। यहाँ पर स्वामीजी का यह अभिप्राय है कि जैसे पाँव नीचा अंग है, वैसे ही मूर्खत्वादि घटिया गुण जिसमें हों, वह शूद्र है। दूसरे, जैसे पाँव सारे शरीर के बोझ को उठाते हैं वैसे ही जो मनुष्य केवल बोझ उठाने, अर्थात् कुलीपन का काम जानता हो वह शूद्र है। यह स्पष्ट है कि जैसे मुख में ज्ञान, भुजा में रक्षा, तथा पेट में कच्चे पदार्थ को पक्का बनाने के गुण हैं, वे गुण पगों में नहीं हैं। मुख, बाहु, पेट, ऊरू की अपेक्षा पैर गुणहीन हैं, तभी शूद्रों को पगों से उपमा दी गई है, क्योंकि शूद्र भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की अपेक्षा गुणहीन हैं। अन्यत्र साहित्य में भी यदि किसी को किसी से हीन वर्णन करना हो तो कहा जाता है कि वह उसके पाँवों के बराबर भी नहीं है। जैसेकि—

न पादरजसा तुल्या ममेयं गोपकन्यका। —पद्म० सृष्टि० अ० १७ ब्रह्मा-सावित्री-संवाद

राधेयस्य न पादभाक्। —महाभारत

भाषार्थ—सावित्री ने ब्रह्मा से कहा कि जिस गोपकन्या से आपने विवाह किया है यह तो मेरे पैर की धूल के बराबर भी नहीं है।

अर्जुन तो कर्ण के पाओं के समान भी नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि स्वामीजी का अर्थ बिल्कुल ठीक है। आपने उपमालंकार के सिद्धान्त को छोड़कर स्वामीजी के अर्थ पर मखौल उड़ाने की चेष्टा की है। इस प्रकार से तो प्रत्येक उपमा पर मखौल उड़ाया जा सकता है। जैसे गीता का श्लोक है कि—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्वान्, विनीत ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समान दृष्टिरखते हैं, वे पण्डित हैं। आपके पण्डित होने में तो किसे सन्देह हो सकता है, तो क्या आप इस श्लोक की शिक्षा के अनुसार—

(१) गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को ब्राह्मण मानकर उनसे वेद पढ़ने के लिए जाते हैं? अथवा उनको कभी दूसरे ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध में भोजन कराते हैं? अथवा उनके लड़के-लड़कियों के साथ आप अपने लड़के-लड़कियों का रिश्ता करने को तैयार हैं?

(२) ब्राह्मण, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल को गौ मानकर उनका दूध निकालकर कभी स्वयं तथा अपने परिवार को पिलाते हैं?

(३) ब्राह्मण, गौ, कुत्ते और चाण्डाल को हाथी मानकर उनके ऊपर सवारी करते हैं?

(४) ब्राह्मण, गौ, कुत्ते और चाण्डाल को हाथी मानकर उनसे कुत्ते का-सा व्यवहार करते हैं?

(५) ब्राह्मण, गौ, हाथी और कुत्ते को चाण्डाल मानकर उनसे चाण्डाल का-सा व्यवहार करते हैं?

यदि ऐसा नहीं करते तो क्या आप पण्डित कहलाने के अयोग्य हैं? आप गौ को माता कहते हैं। क्या वह आपके बाप की धर्मपत्नी है? और जैसे आप गौ को साँड के पास ले-जाते तथा उसका दूध निकालकर उससे मक्खन निकालते हैं, वैसे ही माता के साथ भी व्यवहार करते हो? यदि नहीं तो स्पष्टरूप से आपको मानना पड़ेगा कि उपमा का उतना ही भाग लिया जावेगा जितना कहनेवाले का तात्पर्य हो। जैसे गीता के श्लोक में सबकी आत्मा को अपनी आत्मा के समान जानने का उपदेश है तथा गौ को माता कहने से यह प्रयोजन है कि माता के समान पालन करनेवाली होने से माता के समान ही पालन करने, रक्षा करने तथा आदर करने के योग्य है। वैसे ही शूद्रों को पाँवों की उपमा देने का भी यही प्रयोजन है कि जो पग के समान बोझ उठानेवाले, हीनकर्म करनेवाले तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की अपेक्षा विद्या आदि गुणों से हीन हैं, वे शूद्र कहाते हैं।

भला! आपके सिद्धान्तानुसार यदि मुख, बाहु, पेट, ऊरू तथा पगों में गुणों की न्यूनाधिकता नहीं और सब अङ्ग गुणों में समान ही हैं तो शूद्रों को पगों से पैदा होने के कारण आप उन्हें दूसरों से नीच क्यों मानते हैं?

अतः स्वामीजी ने जो अर्थ किया है, वह वेदानुकूल होने से सर्वथा सत्य है।

(३८८) प्रश्न—आपने शतपथ का जो प्रमाण दिया वह तो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है। शतपथ का अर्थ यह है कि 'ब्राह्मण सबमें मुख्य हैं। इसलिए इनको विराट् के मुख से रचा'। इस अर्थ से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि है या आपके सिद्धान्त की? —पृ० ३२७, पं० १३

उत्तर—शतपथ के प्रमाण से स्वामीजी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है, आपके सिद्धान्त की नहीं। आपने इसका अर्थ ग़लत किया है। इस प्रमाण में विराट् शब्द का चिह्न भी नहीं है। देखिए, इसका अर्थ इस प्रकार है—

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त' इत्यादि।

'जिससे ये मुख्य हैं, इससे मुख के सदृश उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है, अर्थात् जैसे मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्णविद्या और उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है।'

अतः शतपथ का प्रमाण भी गुण-कर्म-स्वभाव से ही वर्णव्यवस्था को मानता है, जन्म से

नहीं।

(३८९) प्रश्न—आप विराट् को भी निराकार मानते हैं, यह आपकी विलक्षण बुद्धि है। —पृ० ३२७, पं० १९

उत्तर—स्वामीजी ने इस स्थल में कहीं भी विराट् के अर्थ निराकार नहीं किये, अपितु यह लिखा है कि 'जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुखादि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसाकि—यजुः० ४०।८ में परमात्मा को स्पष्ट **'अकायमस्नाविरम्'** 'शरीर से रहित तथा नाड़ी-नस के बन्धन से रहित' बतलाया गया है।' हाँ, यदि स्वामीजी के विराट् शब्द के अर्थ देखने हों तो—

ततो विराडजायत। —यजुः० ३१।५

(ततः)—उस सनातन, पूर्ण परमात्मा से **(विराट्)** विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान, विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार **(अजायत)** उत्पन्न होता है।

यह है, अतः आपका लेख सर्वथा असत्य है।

(३९०) प्रश्न—'कार्य उपादानकारण के सदृश होता है।' यदि कार्य उपादानकारण के सदृश होता है तो फिर यह मनुष्य पानी से पैदा होता है। यह कठिन शरीर का क्यों हो गया? वट का वृक्ष ज़रा-से गोल बीज से उत्पन्न होता है तो फिर यह बीज के सदृश गोल क्यों नहीं? सरसों का पेड़ लम्बा क्यों? यह भी कारण के सदृश होना चाहिए? —पृ० ३२३, पं० २९

उत्तर—स्वामीजी का लेख सत्य है कि 'कार्य, उपादानकारण के सदृश होता है।' यदि द्विजादि का उपादानकारण मुखादि हैं तो द्विजादि को मुखादि के सदृश शक्ल में गोलादि आकृति का होना चाहिए। मनुष्य पानी से पैदा नहीं होता, अपितु पुरुष के शरीर में पाँचों तत्त्व हैं, जिनमें पृथिवी प्रधान है और वीर्य पुरुष के अङ्ग-अङ्ग से पैदा होता है, अतः वीर्य का उपादानकारण पुरुष का शरीर है, अतः उस वीर्य से जो मनुष्य उत्पन्न होता है वह भी पिता के शरीर की तरह कठोर अर्थात् पृथिवीतत्त्व प्रधान होता है। इसी प्रकार से वट और सरसों के बीज का उपादानकारण भी बड़ तथा सरसों का वृक्ष ही होता है, अतः बड़ तथा सरसों के बीज से जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं वे बड़ तथा सरसों के वृक्षों के समान ही होते हैं अन्यथा नहीं। अब या तो आप भी यह स्वीकार करें कि ब्राह्मणादि का उपादानकारण ब्रह्म का सारा शरीर है, मुखादि योनिवत् केवल बाहर आने के साधारणकारण ही हैं, तो ऐसी सूरत में आपके मत में ब्राह्मण तथा शूद्र में कोई भेद न रहेगा और यदि आप ब्राह्मणादि में मुखादि को पृथक्-पृथक् उपादानकारण मानते हैं तो फिर स्वामीजी का एतराज़ ठीक है कि ब्राह्मण आदि की आकृति अपने उपादानकारण मुखादि के सदृश गोल आदि होनी चाहिए।

(३९१) प्रश्न—स्वामीजी लिखते हैं कि 'सृष्टि के आरम्भ में जो लोग मुख से पैदा हुए थे वे ब्राह्मण थे, किन्तु आजकल के ब्राह्मण तो मुख से पैदा नहीं हुए फिर ये ब्राह्मण कैसे?' ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होता है। जैसे बैल का पुत्र बैल और ऊँट का पुत्र ऊँट, इस प्रकार से जब घोड़े का पुत्र घोड़ा और गधे का पुत्र गधा होता है तो फिर ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, का पुत्र क्षत्रिय एवं वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र कैसे न होगा? जो व्याकरण पढ़े हैं वे जानते हैं **'ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान् ब्राह्मणः'।**

उत्तर—स्वामीजी का आक्षेप ठीक है कि 'यदि तुम मुखादि से पैदा होना ही ब्राह्मणादि होने में कारण मानते हो तो जो मुखादि से पैदा हुए होंगे वे ब्राह्मणादि होंगे, किन्तु तुम तो सब लोगों की भाँति गर्भाशय से पैदा हुए हो, मुखादि से पैदा नहीं हुए, तुम ब्राह्मणादि कैसे?' आपने इसके उत्तर में लिखा है कि जैसे गधे, घोड़े, ऊँट, बैल के पुत्र गधे, घोड़े, बैल, ऊँट ही होते हैं वैसे

ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के पुत्र भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही होंगे। आपका यह उत्तर ठीक नहीं है, क्योंकि जैसे गधे, घोड़े, बैल, ऊँट में परस्पर आकृतिभेद है और वे भिन्न पहचाने जाते हैं, वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में परस्पर आकृतिभेद नहीं है और न ही वे भिन्न-भिन्न पहचाने जाते हैं, अपितु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एक ही मनुष्यजाति के कर्मानुसार भेद हैं। इसी जन्म में कोई गधे से बैल और बैल से गधा नहीं बन सकता, किन्तु शूद्र से ब्राह्मण और ब्राह्मण से शूद्र बन जाता है, जैसाकि हम सिद्ध कर आये हैं, अतः ब्राह्मणादि वर्णों के लिए बैलादि जातियों का दृष्टान्त ठीक नहीं है। हाँ, यह ठीक है कि मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होगा। फिर वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से जिस वर्ण के कर्मों को करेगा, उसी वर्ण में गिना जावेगा। आपने व्याकरण की भी खूब टाँग तोड़ी है। ज़रा बतला तो दिया होता कि ब्राह्मण शब्द से अपत्य अर्थ में किस सूत्र से कौन-सा प्रत्यय होकर, किस सूत्र से सर्वथा लोप होकर, ब्राह्मण का ब्राह्मण ही शेष रह जाता है? हम आपको डंके की चोट चैलैंज करते हैं कि आप व्याकरण से '**ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान् ब्राह्मणः**' सिद्ध करके दिखलावें, वरना व्याकरण का नाम लेकर जनता को धोखे में डालना ईमानदारी नहीं है। ब्राह्मणादि किसको कहते हैं, (देखो नं० ३५१)।

(३९२) प्रश्न—'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। स्वामीजी ने इसको प्रमाण कैसे माना?
—पृ० ३२८, पं० २०

उत्तर—मनुस्मृति का यह श्लोक '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' के अनुकूल है, अतः स्वामीजी ने प्रमाण माना है।

(३९३) प्रश्न—इस श्लोक में कहीं पर गुण-कर्म-स्वभाव नहीं है। इन तीनों को स्वामीजी ने अर्थों में लिख दिया है।
—पृ० ३२८, पं० २०

उत्तर—श्रीमान्‌जी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र शरीर का नाम नहीं है और न ही आत्मा का नाम है। ये गुण-कर्म-स्वभाव से ही मनुष्यजाति में चार भेद हैं और इनकी तब्दीली से ही शूद्र से ब्राह्मण तथा ब्राह्मण से शूद्र बन सकता है, अतः स्वामीजी ने इस श्लोक का अर्थ ठीक ही किया है, जैसाकि—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥
—मनु० १०।६५

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण-कर्म-स्वभाववाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाए। वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण-कर्म-स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जावे। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है, अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो वह-वह उस-उस वर्ण में गिनी जावे।

(३९४) प्रश्न—'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' इसके पहले '**शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः**' श्लोक है। इन दोनों श्लोकों का इकट्ठा अर्थ होता है। एक श्लोक को छोड़ा और एक को लिया। स्वामीजी की यह चालाकी है।
—पृ० ३२८, पं० १७

उत्तर—'शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः' यह श्लोक वेद के विरुद्ध है और दोनों श्लोकों को मिलाकर आप जो अर्थ करते हैं वह अर्थ वेद, स्मृति, रामायण और महाभारत सबके विरुद्ध है। वास्तव में यह श्लोक जाति-अभिमानी लोगों ने पीछे से मनु में शामिल किया है। इसका प्रमाण यह है कि '**शूद्रो ब्राह्मणतामेति**' यह श्लोक भविष्यपुराण ने भी वर्णव्यवस्था प्रकरण में दिया है, किन्तु इसके साथ '**शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः**' यह श्लोक नहीं है। भविष्यपुराण का पाठ इस

प्रकार है—

वेदानध्यापयन्तोऽपि तेऽधीयानाः श्रुतिक्रमात्। ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः॥ ४३॥
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्त्यनपायिनी। नाशित्वादत्र च श्लोकान्मानवाः समधीयते॥ ४४॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी॥ ४५॥
गोरक्षकान् वाणिजिकाँस्तथा कारुकुशीलवान्। प्रेष्यान् वार्धुषिकाँश्चैव शूद्राँस्तान्मनुरब्रवीत्॥ ४६॥
शद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च॥ ४७॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०

भाषार्थ—वेद को पढ़ाते हुए तथा श्रुतिक्रम से पढ़ते हुए भी दुराचारी लोग ब्राह्मणपद से गिर जाते हैं॥ ४३॥ इस कारण नाश होनेवाला होने से वर्ण एक ही आत्मा में स्थिर नहीं है। इस विषय में मनु के श्लोक पढ़े जाते हैं॥ ४४॥ मांस, लाक्षा और नमक के बेचने से द्विज तत्काल ही पतित हो जाता है, और जो द्विज दूध बेचता है वह तीन दिन में शूद्र हो जाता है॥ ४५॥ गोरक्षक, व्यापारी, सेवा का काम करनेवाले, नौकर, दूत, सूदखोर ब्राह्मणों को मनु ने शूद्र कहा है॥ ४६॥ शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, तथा ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। क्षत्रिय विप्र बन जाता है और वैश्य भी ब्राह्मण वा शूद्र हो जाता है॥ ४७॥

आशा है कि आपको इस लेख से वर्णव्यवस्था-विषयक सन्तोष हो जावेगा और यह भी निश्चय हो जाएगा कि '**शूद्रायाम्**' यह श्लोक प्रक्षिप्त है, वरना भविष्यपुराण इसे अवश्य लिखता।

(३९५) प्रश्न—इन दोनों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्॥ ६४॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ ६५॥

—मनु० १०

शूद्रा में ब्राह्मण से जो सन्तान उत्पन्न हो वह पारशवाख्य वर्ण होता है। यदि वह कन्या हो और उसको द्विज विवाह ले, फिर उसके भी कन्या हो, इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाए तथा उसका विप्र से सम्बन्ध होता जाए तो पारशव वर्ण में जो शूद्रत्व है उसका नाश होकर सप्तम कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जाएगी। इसी प्रकार '**शूद्रो ब्राह्मणतामेति**' शूद्रवर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। यदि शूद्रा में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उसका सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में ब्राह्मणत्व का नाश हो जावेगा और वह ब्राह्मणवीर्य शूद्रता को प्राप्त हो जाएगा। ऐसी ही '**ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्**' ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्तम पीढ़ी तक यदि उसका सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी। यदि शूद्रस्त्री में क्षत्रिय से लड़का हो और उसका सम्बन्ध बराबर शूद्रा से होता जाए तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा। ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उसका सम्बन्ध बराबर सातवीं पीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में वह वणिक् कन्या होगी। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जाएगा, इस प्रकार वैश्या शूद्र और शूद्र वैश्य होगा। —पृ० १३०, तथा पृ० ३२८, पं० २२

उत्तर—आपके इस लेख में निम्न प्रकार से दोष हैं—

(१) यदि ब्राह्मण से क्षत्रिया तथा वैश्या में तथा क्षत्रिय से वैश्या में पुत्र-पुत्री हों तो उनकी वर्णव्यवस्था क्या होगी, यह आपने नहीं बतलाया। यदि वीर्य की प्रधानता से पिता का वर्ण सन्तान का होगा तो शूद्रों में भी पैदा की गई सन्तान वीर्य की प्रधानता से पिता के वर्ण की क्यों न हो?

(२) शूद्रा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से पैदा हुई सन्तान यदि विवाह न करे तो किस वर्ण में गिनी जावेगी ?

(३) आपका यह अर्थ कि सातवीं पीढ़ी में सन्तान पिता के वर्ण की होगी, मनु के निम्न लेख के विरुद्ध है—

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद् गुणैः॥ १०।६७॥
यस्माद् बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्मात् बीजं प्रशस्यते॥ १०।७२॥
तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ १०।४२॥

भाषार्थ—शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से पैदा किया पुत्र गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाता है॥ ६७॥ जिस कारण बीज के प्रभाव से तिर्यग् (टेढ़ी-नीच) जाति में पैदा हुए भी ऋषि बन गये, पूजा तथा प्रशंसा के योग्य हो गये, इसलिए बीज ही प्रधान है॥७२॥ वह अनुलोमज तथा प्रतिलोमज—कोई तप के प्रभाव से, कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक युग में इस संसार तथा इसी जन्म में, जन्म की अपेक्षा मनुष्यों में उन्नति तथा अवनति को प्राप्त होते हैं॥४२॥

जब मनु के कथनानुसार वीर्य प्रधान है तो फिर सातवीं पीढ़ी में वर्ण की उन्नति स्वयं मनु के ही विरुद्ध है।

(४) मनु कहते हैं कि स्त्री का वर्ण पति के अनुसार है—

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथाविधि। तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा॥ ९।२२॥
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा। शारङ्गी मन्दपालेन जगामभ्यर्हणीयताम्॥ २३॥
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः। उत्कर्षं योषिताः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः॥ २४॥

भाषार्थ—जिस प्रकार के गुणोंवाले पति से स्त्री संयुक्त होती हैं, उसी प्रकार के गुणोंवाली हो जाती है, जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है॥ २२॥ अधमयोनि से पैदा हुई अक्षमाला वसिष्ट से विधिपूर्वक संयुक्त होकर और अधमकुलोत्पन्न शारङ्गी मन्दपाल से संयुक्त होकर पूजा के योग्य पदवी को प्राप्त हो गईं॥ २३॥ ये भी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ इस संसार में अधम कुल में पैदा होकर अपने-अपने पतियों के गुणों से उन्नति को प्राप्त हो गईं॥ २४॥ जब मनु के कथनानुसार विवाह होने पर स्त्री का वर्ण पति के अनुसार ही हो जाता है तो फिर उनकी सन्तान का सातवीं पीढ़ी में पिता का वर्ण प्राप्त करना मनु के लेख के घोर विरुद्ध है।

(५) निम्नलिखित महात्मा शूद्रा तथा चाण्डाली आदि में पैदा होकर तप से ब्राह्मण बन गये—

(१) पराशर चाण्डाली से, (२) वसिष्ठ कञ्जरी से, (३) मन्दपाल मल्लाहनी के उदर से, (४) व्यास कैवर्ती के पेट से (भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२), (५) वाल्मीकि भीलनी के पेट से (भारतसार अ० ५५ श्लो० २१), (६) श्रवण शूद्रा के पेट से (वाल्मी० अयो० स० ६३) इत्यादि।

जब इस प्रकार के अनेक ऋषि-मुनि शूद्रा तथा चाण्डाली के उदर से पैदा होकर उसी जन्म में ब्राह्मण बन गये तो फिर सात पीढ़ी की सीमा स्वयं ही वेद, शास्त्र, इतिहासविरुद्ध है।

इससे यह भी सिद्ध है कि '**शूद्रायाम्**' इत्यादि स्लोक स्वयं मनु के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है।

भला! यह तो बतलाइए '**आसप्तमाद्युगात्**' का अर्थ 'सातवीं पीढ़ी' कैसे किया? इससे तो यदि 'सातवाँ वर्ष' इसका अर्थ कर लो तो यह श्लोक मनु के अनुकूल बन सकता है कि 'शूद्रा में ब्राह्मण से पैदा हुआ यदि श्रेष्ठ हो तो सातवें वर्ष में निकृष्ट जाति से उत्कृष्ट जाति को प्राप्त

हो जाता है, अर्थात् यज्ञोपवीत के समय गुण देखकर उसे ब्राह्मण के ढंग से यज्ञोपवीत दिया जा सकता है, देखिए—

अब्राह्मणं तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात्। त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत्॥

—महा० अनु० अ० ४७।१७

भावार्थ—शूद्रा के पुत्र को लोग मूर्खता से ब्राह्मण नहीं मानते वरना ब्राह्मण से क्षत्रिया, वैश्या, तथा शूद्रा तीनों वर्णों में पैदा हुआ ब्राह्मण ही है॥१७॥

अतः सातवीं पीढ़ी में उसका ब्राह्मण होना मानना डबल बेवकूफ़ी है।

(३९६) प्रश्न—आपस्तम्ब के सूत्रों में स्वामीजी 'जातिपरिवृत्तौ' पद के अर्थ को दबा लेते हैं। अर्थ यह होता है 'धर्माचारण से छोटे वर्ण-बड़े-बड़े वर्ण को प्राप्त होते हैं, जाति बदल जाने पर। अधर्माचरण से बड़े-बड़े वर्ण छोटे-छोटे वर्ण को प्राप्त होते हैं, जाति बदल जाने पर।' जाति शरीर में रहती है। शरीर बदलने पर जाति बदलती है। सूत्र तो कहते हैं कि शरीर के बदलने पर वर्ण बदल जाता है और स्वामीजी सूत्रों के दो पद चुराकर तुरन्त ही वर्ण बदल देते हैं।

—पृ० ३२९, पं० ३

उत्तर—इन सूत्रों में जहाँ-जहाँ जाति शब्द वर्ण का वाचक आता है, वहाँ-वहाँ इसका इसी जन्म में, इसी शरीर से परिवर्तन भी मिलता है, जैसेकि—

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा॥

—मनु० २।१४८

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेय मद्यपोः। जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्।

—मनु० ११।६७

भाषार्थ—वेदों के पार को जाननेवाला आचार्य तो इस मनुष्य की जिस जाति (वर्ण) को गायत्री से पैदा करता, अर्थात् बनाता है, वही सत्य है, वही अजर, अमर है॥१४॥ ब्राह्मण को कष्ट देना, सूँघने के अयोग्य वस्तु तथा शराब का सूँघना, कुटिलता, पुरुषों में मैथुन, ये काम जाति से भ्रंश करनेवाले हैं॥६७॥ यहाँ पर पहले श्लोक में इसी जन्म में आचार्य द्वारा जाति का पैदा होना तथा दूसरे श्लोक में दुष्ट कर्मों के बदले जाति का नाश माना गया है। इससे सिद्ध हुआ कि यहाँ पर जाति नाम वर्ण का है जोकि इसी जन्म के कर्मानुसार बनता और नाश भी हो जाता है। बस, इसी प्रकार से इन सूत्रों में भी जाति नाम वर्ण का ही है, जोकि परिवर्तनशील है।

अतः इन दोनों सूत्रों से पहला तथा पिछला प्रकरण सिद्ध करता है कि यह सब इसी जन्म में कर्त्तव्य हैं। अगले जन्म का यहाँ वर्णन नहीं है, जैसेकि—

राज्ञः पन्था ब्राह्मणेनाऽसमेत्य॥५॥ समेत्य तु ब्राह्मणस्यैव पन्थाः॥६॥ यानस्य भाराभिनिहितस्याऽऽतुरस्य स्त्रिया इति सर्वैर्दातव्यः॥७॥ वर्णज्यायसां चेतरैर्वर्णैः॥८॥ अशिष्टपतितमत्तोन्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थेन सर्वैरेव दातव्यः॥९॥ धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥१०॥ अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥११॥ धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नाऽन्यां कुर्वीत॥१२॥ अन्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयात्॥१३॥ आधाने हि सति कर्मभिस्सम्बध्यते येषामेतदङ्गम्॥१४॥ सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्॥१५॥ मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः॥१६॥

—आपस्तम्बीयधर्मसूत्र द्वितीयः प्रश्नः, क० ११

भाषार्थ—यदि मिलनेवाला अब्राह्मण हो तो राजा के लिए मार्ग छोड़ दे॥५॥ यदि ब्राह्मण से मेल हो तो राजा ब्राह्मण के लिए मार्ग छोड़े॥६॥ सवारी, बोझ उठानेवाले, रोगी और स्त्री

के लिए सब रास्ता छोड़ दें॥ ७॥ ऊँचे वर्ण के लिए सब नीचे वर्ण मार्ग छोड़ें॥ ८॥ असभ्य, पतित, मूर्ख तथा पागल के लिए अपनी आत्मा के कल्याणार्थ सब मार्ग छोड़ दें॥ ९॥ धर्म के आचरण से छोटा-छोटा वर्ण बड़े-बड़े वर्ण को प्राप्त होता है, वर्णपरिवर्तन होने में॥ १०॥ पापाचरण से ऊँचा-ऊँचा वर्ण नीचे-नीचे को प्राप्त होता है, वर्णपरिवर्तन होने में॥ ११॥ धर्म तथा सन्तानवाली स्त्री की मौजूदगी में दूसरी स्त्री न करे॥ १२॥ यदि धर्म या सन्तान से हीन हो तो अग्नि-आधान से पहले दूसरी कर ले॥ १३॥ अग्नि-आधान होने पर कर्मों के साथ सम्बन्ध हो जाता है, जिनका यह अङ्ग है॥ १४॥ समान गोत्रवाले को कन्या न दे॥ १५॥ माता के साथ जिनका योनिसम्बन्ध हो, उनको भी न दे॥ १६॥

उपर्युक्त सारी आज्ञाएँ इसी जन्म के साथ सम्बन्ध रखती हैं, अतः वर्णपरिवर्तन की आज्ञा भी इसी जन्म के साथ सम्बन्ध रखती है, परजन्म के साथ नहीं। मनु ने हूबहू इन्हीं सूत्रों के भाव का यों वर्णन किया है—

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥

—मनु० १०।४२

भाषार्थ—अनुलोमज तथा प्रतिलोमज सब मनुष्य कोई तप, कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक समय में इसी जन्म में जन्म की अपेक्षा ऊँचे तथा नीचे वर्ण को प्राप्त होते हैं।

स्वामीजी ने 'जातिपरिवृत्तौ' पद को चुराया नहीं अपितु सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि में भी इस पद के अभिप्राय को स्पष्ट लिख दिया है 'कि वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिसके योग्य होवे'। आप ज़रा आँखें खोलकर पढ़ें तो आपको पता लग जावेगा। वर्ण शरीर के बदलने से नहीं, अपितु कर्मों के बदलने से बदल जाता है। यह इन सूत्रों से सिद्ध है।

(३९७) प्रश्न—'न तिष्ठति तु यः पूर्वाम्' इत्यादि [मनु० २।१०३] इस श्लोक में ब्राह्मण शूद्र हो जाता है, ऐसा नहीं है अपितु शूद्रवत् हो जाता है, ऐसा है। आर्यसमाजियो! तुम शूद्र और शूद्रवत् में घपला मचाकर मूर्खों को जाल में फँसा सकते हो, विद्वान् को नहीं।

—पृ० ३२९, पं० २७

उत्तर— न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ —मनु० २।१०३

जो मनुष्य प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करता वह समस्त द्विजकर्मों से शूद्र की भाँति बाहर कर देने योग्य है॥ १०३॥ अब आप ही न्याय से बतलावें कि जिसको समस्त द्विजकर्म से बाहर निकाल दिया जावे वह शूद्र नहीं तो क्या है? इसी बात को महाभारत में यों लिखा है—

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्॥ १९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ २०॥

—महा० अनु० अ० १०४

भाषार्थ—जो ब्राह्मण प्रातः-सायं सन्ध्या न करें, धार्मिक राजा उन सबसे शूद्र के काम करवावे।

कहिए महाराज! शूद्र के काम करता हुआ भी क्या वह शूद्र न होगा? इसलिए आर्यसमाजी घपला नहीं मचाते आप घपला मचाते हैं। आर्यसमाजी तो यह श्लोक भी पेश करते हैं कि—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥

—मनु० १०।९२

भाषार्थ—ब्राह्मण लाख, नमक तथा मांस के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है और दूध

बेचने से ब्राह्मण तीन दिन में शूद्र हो जाता है॥९२॥

कहिए महाराज! अब तो शूद्रवत् का भी घपला नहीं है। अब तो साफ शूद्र होना लिखा है। अब तो स्वीकार कीजिए कि वर्णव्यवस्था कर्म से है, जन्म से नहीं।

(३९८) प्रश्न—वेदव्यास कहारी का लड़का नहीं, क्षत्रिय कन्या का पुत्र है।

—पृ० ३३०, पं० १९

उत्तर—श्रीमान्‌जी! आपके ही मान्य ग्रन्थ कह रहे हैं कि—

(१) जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः। —भविष्य० ब्राह्म० ४२।२२

(२) व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्। —वज्रसूची उपनिषत्

(३) कैवर्तगर्भसम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥ —भारतसार, अध्याय ५५।२०

(४) कैवर्ते दाशधीवरौ॥ १५॥ —अमरकोश क० १, वर्ग १०

व्यासजी मल्लाहनी से पैदा हुए (१)। व्यासजी मल्लाह की कन्या से पैदा हुए (२)। मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि व्यास तप से ब्राह्मण बन गये। इसलिए जाति कारण नहीं (३)। कैवर्त, दाश, धीवर—ये तीन नाम मल्लाह के हैं (४)। व्यासजी कहारी के नहीं तो मल्लाहनी के पुत्र अवश्य हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु क्षत्रियकन्या के पुत्र न थे।

(३९९) प्रश्न—महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ६३ में कथा इस प्रकार है कि उपरिचरवसु नाम के राजा के एक पुत्री और एक पुत्र हुआ। पुत्री दाश को पालने को दे दी और लड़का आप रख लिया। उस लड़की से व्यासजी पैदा हुए। जब सत्यवती उपरिचर वसुनामक राजा के वीर्य से उतपन्न हुई तब हम उसको दाश की पुत्री किस प्रकार मान लें। —पृ० ३३०, पं० २२

उत्तर—हम ऊपर सिद्ध कर आये हैं कि व्यासजी मल्लाहकन्या के गर्भ से पैदा हुए थे। जन्माभिमानी लोगों को यह बात कैसे रुच सकती थी कि कोई मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर ब्राह्मणों का गुरु बन जावे? इस बात को मलियामेट करने तथा जनता की आँखों में धूल झोंककर जन्माभिमान को कायम रखने के लिए एक असम्भव कथा घड़कर महाभारत में मिलाई गई, जिस कथा के अनुसार सत्यवती की पैदाइश को आप मछली समेत श्राद्ध के लड्डू की भाँति हड़प कर गये और बनावटी बातें लिखकर जनता को धोखे में डालना चाहा है। कहिए महाराज! उपरिचर राजा के जो एक पुत्र और एक पुत्री हुई वह कौन-सी रानी के गर्भ से हुई, और पुत्री को जो दाश को पालनार्थ दिया तो क्या जहाँ पुत्र का पालन हो सकता था वहाँ पुत्री का पालन न हो सकता था? और फिर यदि पालन के लिए ही दी थी तो दाश को यह साहस कैसे हुआ कि लड़की को किश्ती चलाने के काम में लगावे, और उसकी शादी के विषय में भी राजा शन्तनु से स्वयं ही बातचीत करे और राजा उपरिचर इसका कोई नोटिस न ले। और फिर यह भी न बतलाया कि सत्यवती से व्यास की पैदाइश कैसे हुई? महाभारत की जिस कथा को आप छिपाना चाहते हैं, वह इस प्रकार है—

उपरिचर नाम का एक राजा था, उसकी स्त्री का नाम गिरिका था। वह ऋतुस्नाता हुई तो राजा शिकार खेलने चला गया। वहाँ वन में स्त्री के ख़याल से राजा का वीर्यपात हो गया। राजा ने उसे पत्ते में बन्द करके अपनी स्त्री के पास पहुँचाने के लिए बाज़ को रवाना किया; बाज़ लिये जा रहा था कि दूसरे बाज़ से लड़ाई होने के कारण उससे वह वीर्य यमुना नदी में गिर पड़ा। उसको एक मछली ने खा लिया। मछली के गर्भ हो गया। दश मास के पीछे मछली को मछलीहारों ने पकड़ लिया। उसका पेट चीरा तो उससे एक लड़का और एक लड़की निकले। मछलीहारों ने इन दोनों को राजा को पेश किया। राजा ने लड़का रख लिया जो मत्स्य नाम का

प्रतापी राजा बना। और बदबू के कारण लड़की मछलीहारे को दे दी। बड़ी होकर वह किश्ती चलाने लगी। एक बार यात्रा करते हुए पराशर यमुना नदी से पार होने लगे तो लड़की पर मोहित हो गये और उससे समागम की इच्छा की। लड़की ने कहा लोग देख रहे हैं। पराशर ने कुहरा पैदा करके अँधेरा कर दिया। लड़की ने कहा, मेरा कन्यापन नष्ट हो जावेगा। ऋषि ने वर दिया कि समागम करने पर भी तू कन्या ही हो जावेगी। ऋषि ने वर देकर उसकी बदबू दूर करके खुशबू पैदा कर दी। तभी सत्यवती ऋतुमती हो गई। पराशर ने उससे समागम किया। उसी समय व्यासजी पैदा हुए और माता को यह कहकर कि कभी काम हो तो मुझे याद करना, वन में तप करने चले गये।

—महा० आदि० अ० ६३

यह सारी-की-सारी कथा सर्वथा असम्भव है—

(१) राजा को जंगल में फिरते वीर्यपात हो गया। क्या पौराणिक लोगों में यह असाध्य रोग सबको तंग करता है?

(२) पत्ते में बन्द करके वीर्य को स्त्री के पास भेजने का प्रयोजन, क्या उससे गर्भ सम्भव है?

(३) मछली के पेट में तो लड़का-लड़की दश मास में पैदा होने योग्य बने तथा व्यासजी मिनटों में ही पैदा हो गये?

(४) यदि राजा को ज्ञान था कि लड़का-लड़की मेरे हैं तो लड़का लेकर लड़की क्यों न ली? यदि बदबू के कारण न ली तो यह बदबू लड़के में भी होगी?

(५) पराशर ने व्यभिचार किया तो ऋषिपन में फर्क क्यों नहीं आया?

(६) पराशर ने कुहरा पैदा किया, क्या पहले न होता था?

(७) यदि सत्यवती ऋतुमती हो गई तो चार दिन से पहले समागम शास्त्रविरुद्ध है।

(८) व्यास का पैदा होते ही माँ से बात करना तथा तप करने जाना भी असम्भव ही है।

(१०) क्या अण्डज मछली में जरायुज मनुष्य का गर्भ सम्भव है?

सारांश यह कि यह सारी कथा ही असम्भव और सर्वथा असत्य है। वास्तविक बात वही सत्य है कि सत्यवती मल्लाह की पुत्री थी। उसके कन्यावस्था में व्यभिचार से व्यासजी पैदा हुए और वह तप से ब्राह्मण बन गये। मनुस्मृति का टीकाकार भी सत्यवती को निकृष्टयोनि से ही मानता है। वह **'एताश्चान्याश्च'** [मनु० ९।२४] की टीका में लिखता है कि—

एताश्चान्याश्च सत्यवत्यादयो निकृष्टप्रसूतयः स्वभर्तृगुणैः प्रकृष्टैरस्मिंल्लोके उत्कृष्टतां प्राप्ताः।

ये भी और भी सत्यवती आदि स्त्रियाँ बहुत-सी निकृष्ट योनि में पैदा हुई अपने पतियों के उत्कृष्ट गुणों से संसार में उत्कृष्ट बन गईं।

इससे साफ़ सिद्ध है कि सत्यवती मल्लाह की लड़की थी। यदि आपके लेखानुसार भी सत्यवती को राजा की पुत्री माना जावे तो भी क्षत्रिया के पेट से व्यास ब्राह्मण कैसे बने? यदि आप कहें कि वीर्य प्रधान होने से ब्राह्मण बने, यदि आप वीर्य को प्रधान मानते हैं तो सत्यवती को क्षत्रिया सिद्ध करने में क्यों पानी-पानी हो रहे हैं? सत्यवती यदि मल्लाह की पुत्री हो तो भी पराशर का वीर्य प्रधान होने से व्यासजी ब्राह्मण बन जावेंगे। यदि वीर्य ही प्रधान है तो फिर क्षेत्र की तो कोई क़ैद न रही। स्त्री चाहे कोई भी हो, पुरुष का वीर्य प्रधान होने से पुरुष के अनुसार ही वर्ण माना जावेगा और यदि वीर्य प्रधान है तो व्यासजी ने अम्बिका, अम्बालिका तथा दासी में जो धृतराष्ट्र, पाण्डु, और विदुर को पैदा किया वे ब्राह्मण क्यों न बने, क्षत्रिय क्यों बने? जैसाकि कुल्लूकभट्ट ने भी **'विशिष्टं कुत्रचित्'** इति [मनु० ९।३४] के भाष्य में लिखा है कि—

विचित्रवीर्यक्षेत्रे क्षत्रियायां ब्राह्मणोत्पादिता अपि धृतराष्ट्रादयः क्षत्रियाः क्षेत्रिण एव पुत्रा बभूवुः।

विचित्रवीर्य के क्षेत्र क्षत्रिया में ब्राह्मण से पैदा किये हुए भी धृतराष्ट्र आदि क्षत्रिय क्षेत्रवाले के ही पुत्र हुए।

अतः न क्षेत्र प्रधान है, न वीर्य, अपितु वर्णव्यवस्था में कर्म ही प्रधान है।

(४००) प्रश्न—वाल्मीकि को भील का लड़का कहना जानबूझकर लोगों की आँख में धूल झोंकना है। जबकि वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम्। कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत्॥

—वाल्मी० उत्तर० स० १११।११

यह आख्यान आयु का बढ़ानेवाला, भविष्य और उत्तरसहित प्रचेता के पुत्र वाल्मीकि ने निर्माण किया और ब्रह्मा ने इसका अनुमोदन किया। —पृ० ३३४, पं० २१

उत्तर—हम वाल्मीकि को भील का लड़का नहीं कहते अपितु भीलनी का लड़का कहते हैं और यह आपके ग्रन्थों में लिखा है, जैसेकि—

भिल्लिकागर्भसम्भूतो वाल्मीकिश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥ २१॥

—भारतसार, अध्याय ५५

भाषार्थ—भीलनी के गर्भ से पैदा होकर वाल्मीकि महामुनि तप से ब्राह्मण बन गये, इसलिए जातिकारण नहीं है॥ २१॥

जब वाल्मीकि भीलनी के पुत्र थे तो फिर वाल्मीकि को जन्म से ब्राह्मण कहना जनता की आँखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है?

(४०१) प्रश्न—वसिष्ठ मित्रावरुण से उर्वशी बिजली में अयोनिज मानसिक पुत्र है।

—पृ० ३३०, पं० २०

उत्तर—धन्य हो महाराज! आपने बड़ी ही हिम्मत की जो उर्वशी को बिजली मान लिया। यदि आप उर्वशी का अर्थ बिजली करें तो हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु यहाँ पर मित्रावरुण ये दोनों कौन थे? उनसे वसिष्ठ कैसे पैदा हुए? ज़रा यह तो बतला दिया होता, किन्तु आप बतलावें भी क्या, आपके पुराण आपके अनुकूल नहीं पड़ते। देखिए, इस कथा को रामायण में इस प्रकार से लिखा है कि—

'इतने में उर्वशी इच्छानुसार घूमती हुई आ निकली। उस रूपवती उर्वशी को फिरते देखकर वरुण कामातुर हो गये और मैथुन के लिए प्रार्थना की। उर्वशी ने कहा कि आपसे पहले मुझे मित्र ने बुलाया है। वरुण ने कामातुर होकर कहा कि यह मैं अपना वीर्य घड़े में डालता हूँ यदि तू समागम नहीं करती। उर्वशी ने कहा—मेरा मन तुम्हारा हो चुका है और शरीर मित्र का है। उर्वशी मित्र के पास गई तो क्रोध में आकर मित्र ने कहा कि पहले तो मैंने बुलाई थी, तूने और पति कर लिया? तू दुराचारिणी है। मित्र ने भी अपना वीर्य उसी घड़े में डाल दिया।

कस्यचित्त्वथकालस्य मित्रावरुणसम्भवः। वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम्॥ ७॥

—वाल्मी० उत्तर० स० ५७

भाषार्थ—कुछ काल के पश्चात् मित्रावरुण से पैदा होनेवाला इक्ष्वाकुकुल का देवता तेजस्वी वसिष्ठ पैदा हुआ॥ ७॥

श्रीमान्‌जी! उर्वशी का अर्थ बिजली करके ज़रा इस कथा को सङ्गत करने की कृपा करें और मित्रावरुण तथा वसिष्ठ के भी और अर्थ करके इनकी ऐतिहासिक सत्ता से ही इनकार करें, वरना इस बात को स्वीकार करें कि यहाँ पर उर्वशी बिजली नहीं, अपितु वेश्या का नाम है।

(४०२) प्रश्न—वसिष्ठ कभी गणिका के गर्भ से पैदा ही नहीं हुए।

—पृ० १३१, पं० ४

उत्तर—निम्न हेतुओं से उर्वशी गणिका ही थी—

(१) उपर्युक्त रामायण की कथा में मन वरुण को तथा शरीर मित्र को अर्पण करना वेश्या होने का चिह्न है।

(२) **घृताची मेनका रम्भा पूर्वचित्तिः स्वयंप्रभा। उर्वशी मिश्रकेशी च दण्डगौरी वरूथिनी॥ २९॥**
गोपाली सहजन्या च कुंभयोनिः प्रजागरा। चित्रसेना चित्रलेखा साहा च मधुरस्वना॥ ३०॥
एताश्चान्याश्च ननृतुस्तत्र तत्र सहस्त्रशः। चित्तप्रसादने युक्ताः सिद्धानां पद्मलोचना॥ ३१॥
महाकटितटश्रोण्यः कम्पमानैः पयोधरैः। कटाक्षहावमाधुर्यैश्चेतोबुद्धिमनोहरैः॥ ३२॥

—महा० वन० अ० ४३

भाषार्थ—इन्द्र के दरबार में घृताची आदि तथा और भी हज़ारो नाचती थीं। कमल जैसे नेत्रोंवाली प्रसन्नता से सिद्ध लोगों के चित्त को प्रसन्न कर रही थीं॥ ३१॥ सुन्दर कटि तथा श्रोणिवाली, काँपते हुए स्तनों से, आँखों के मधुर कटाक्षों से चित्त, बुद्धि, मन को हरनेवाली चेष्टाओं से युक्त थीं॥ ३२॥

इनमें उर्वशी का भी होना उसके वेश्यापन का प्रमाण है।

(३) **विभाण्डकस्य विप्रर्षेस्तपसा भावितात्मनः॥ ३२॥**
तस्य रेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम्॥ ३५॥ —महा० वन० अ० ११०

भाषार्थ—तप में श्रेष्ठ, विप्रों में ऋषि विभाण्डक का उर्वशी अप्सरा को देशकर वीर्यपात हो गया॥ ३२-३५॥

सबको लुभायमान करते हुए घूमना तथा सबके वीर्यपात का कारण तथा तप-भंग का कारण होना वेश्यापन के प्रमाण हैं।

(४) **सर्वाप्सरःसु मुख्यासु प्रनृत्तासु कुरूद्वह। त्वं किलानिमिषः पार्थ मामेकां तत्र दृष्टवान्॥ २८॥**
त्वत्कृतेऽहं सुरेशेन प्रेषितो वरवर्णिनि। प्रियं कुरु महेन्द्रस्य मम चैवात्मनश्च ह॥ ३२॥
त्वद् गुणाकृष्टचित्ताहमनङ्गवशमागता। चिराभिलषितो वीर ममाप्येष मनोरथः॥ ३५॥
अनावृत्ताश्च सर्वाः स्म देवराजाभिनन्दन। गुरुस्थाने न मां वीर नियोक्तुं त्वमिहार्हसि॥ ४२॥

—महा० वन० अ० ४६

भाषार्थ—हे अर्जुन! सब नाचनेवाली मुख्य अप्सराओं में से तूने निश्चय मुझे ही टिकटिकी बाँधकर देखा था॥ २८॥ इसलिए इन्द्र ने तेरे लिए मुझे भेजा है। तू इन्द्र को भी खुश कर, मुझे तथा अपने को भी प्रसन्न कर॥ ३२॥ तेरे गुणों से मेरा मन आकर्षित होकर मैं काम के वश हो रही हूँ। मेरे दिल में भी यह मनोरथ देर से था॥ ३५॥ हे इन्द्रपुत्रार्जुन। हम सब पूर्ण स्वतन्त्र हैं। तू मुझे अपने बड़ों के स्थान में न समझ॥ ४२॥

उर्वशी का अर्जुन को भ्रष्ट करने की चेष्टा करना तथा अपने को नंगी, स्वतन्त्र कहना वेश्यापन का प्रमाण है। इससे सिद्ध है कि उर्वशी इन्द्र-सभा की नाचने-गाने तथा इन्द्र की आज्ञा से ऋषियों का तप भंग करनेवाली अप्सरा, वेश्या या गणिका थी और वसिष्ठजी उनके गर्भ से पैदा हुए, जैसाकि—

उर्वशीगर्भसम्भूतो वसिष्ठो हि महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥ २६॥

—भारतसार, अ० ५५

भाषार्थ—उर्वशी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये, अतः ब्राह्मण

बनने में जाति कारण नहीं।

इससे सिद्ध हुआ कि वसिष्ठजी उर्वशी गणिका के गर्भ से पैदा हुए थे।

(४०३) प्रश्न—श्रीमद्भागवत [३।१२।२२] में लिखा है कि—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, नारद , ये दश ब्रह्मा के पुत्र हैं। यही बात मनु ने लिखी है। जब वसिष्ठ इस जन्म में ब्रह्मा के अयोनिज पुत्र हैं तो गणिकापुत्र हो ही नहीं सकते। —पृ० ३३१, पं० ७

उत्तर—(१) यहाँ सृष्टि के आदि में हुए वसिष्ठ नामक ऋषि का विवाद नहीं, अपितु इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित का विवाद है (देखो नं० ४०१)।

(२) भागवत में तो ये दश ब्रह्मा के पुत्र लिखे हैं, किन्तु मनुस्मृति में मनु के ये पुत्र लिखे हैं—

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश॥

—मनु० १।३४

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः॥ —मनु० ३।१९४

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च॥ —मनु० ७।४२

मैंने (मनु ने) प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से घोर तप करके प्रजा के पति दश महर्षियों को पैदा किया॥ ३४॥ हिरण्यगर्भ मनु के ये मरीचि आदि दश पुत्र थे॥ १९४॥ पृथु ने और मनु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया॥ ४२॥

कहिए, भागवत का लेख सत्य है या मनु का? और मनुजी तो राजा, अर्थात् क्षत्रिय थे। उनके पुत्र वसिष्ठ ब्राह्मण बन गये, इससे भी कर्मानुसार वर्णव्यवस्था सिद्ध है, अतः आपके लेखानुसार भी हमारा पक्ष सिद्ध तथा आपका ग़लत है।

(४०४) प्रश्न—श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ९ अध्याय १३ में लिखा है कि वसिष्ठजी निमि के शाप से मर गये। मरने के पीछे दूसरी बार—

मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः॥ ६॥

मित्रावरुण के सकाश से वसिष्ठ ने उर्वशी में जन्म धारण किया। —पृ० ३३१, पं० १८

उत्तर—भागवत का भी खूब प्रमाण दिया, जिससे अपना पक्ष स्वयं ही खण्डित कर दिया। आपके प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि आदिसृष्टिवाले वसिष्ठ और थे, वे निमि के शाप से मरे तथा उर्वशी के पुत्र वसिष्ठ दूसरे थे।

कहिए महाराज! मित्र तथा वरुण दोनों से एक उर्वशी में वसिष्ठ कैसे पैदा हुए? क्या दो पुरुषों से एक स्त्री में सम्मिलित सन्तान पैदा हो सकती है?

उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा चस्कम्भोभौ बभूवतुः। मित्रः कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले॥ २४॥
ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्रसम्भवः। अगस्त्यो वरुणाज्जातो बडवाग्निसमद्युतिः॥ २५॥

—शिव० उमा० अ० ४

जवान उर्वशी को देखकर मित्र तथा वरुण का वीर्यपात हो गया। मित्र ने अपना वीर्य घड़े में डाल दिया तथा वरुण ने जल में डाल दिया॥ २४॥ तब घड़े से मित्र का पुत्र वसिष्ठ पैदा हुआ तथा जल से वरुण का पुत्र अग्निसमान तेजस्वी अगस्त्य पैदा हुआ।

कहिए महाराज! यहाँ पर दोनों की हिस्सापत्ति गुम है और दोनों का वीर्य भी एक ही स्थान—घड़े में नहीं डाला गया, अपितु एक का घड़े में, दूसरे का जल में डाला गया। एक से

वसिष्ठ तथा दूसरे से अगस्त्य पैदा हुए, अतः मित्रावरुण दोनों से वसिष्ठ की उत्पत्ति ग़लत हो गई। फिर रामायाण में वरुण ने अपना वीर्य घड़े में डाला लिखा है तथा यहाँ जल में डालना लिखा है, अतः पुराणों की कथाएँ परस्पर विरुद्ध होने से मिथ्या ही हैं। वास्तव में बात यह है कि उर्वशी गणिका थी, उसमें न मालूम किससे गर्भ ठहरा, जिससे वसिष्ठ पैदा हुए। वे तप से ब्राह्मण बन गये, जैसाकि—

वसिष्ठ उर्वश्याम्। —वज्रसूची उपनिषद्

वसिष्ठो गणिकात्मजः॥ २३॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

वसिष्ठ उर्वशी में पैदा हुए॥ वज्र०॥ वसिष्ठ गणिका के पुत्र थे। —भविष्य०

कहिए महाराज! अब तो वसिष्ठ के गणिकापुत्र होने में सन्देह नहीं? अच्छा एक बात और तो बताइए कि उर्वशी का क्या वर्ण था तथा मित्रावरुण का क्या वर्ण था, जिससे जन्म से वसिष्ठ ब्राह्मण हुए।

आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा॥ २३॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः॥ २४॥
इत्येतत् सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम्॥ २५॥

—महा० शान्ति० अ० २०८

आदित्य क्षत्रिय, मरुत वैश्य, अश्विनीकुमार शूद्र, तथा आंगिरस देवता ब्राह्मण हैं। अब उर्वशी के वर्ण का तो पता ही नहीं और मित्र तथा वरुण—ये दोनों अग्नि तथा जल का नाम होने से आदित्य हैं। वे क्षत्रिय हुए। अब उनसे यदि वसिष्ठ पैदा हुए तो भी जन्म से ब्राह्मण नहीं।

(४०५) प्रश्न—यह कथा पुराण में ही नहीं किन्तु वेद में भी है। देखिए **'विद्युन्न या पतन्ती'** इत्यादि मन्त्र तथा इसपर निरुक्त दैव० अ० ११ खं० ३६, में उर्वशी को देवता मानकर दीर्घायु की प्रार्थना की है। जब उरुवशी मध्यस्थानीय देवता है तो फिर इसको गणिका मानना शास्त्र-अनभिज्ञता है या नहीं? —पृ० ३३२, पं० १२

उत्तर—वेदों में इतिहास और कथाएँ नहीं होतीं, क्योंकि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान हैं। इतिहास किसी के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है, पूर्व नहीं,अतः वेदों में किसी मनुष्य का इतिहास या कथा नहीं है और न ही वसिष्ठ या उसकी उत्पत्ति का वर्णन है। मध्यस्थानी देवता **'वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः।'** [निरु० अ० ७ खं० ५] वायु तथा इन्द्र, अर्थात् बिजली है, जिसका वेद ने उर्वशी के नाम से वर्णन किया है। यहाँ वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है, अपितु **'उर्वभ्यश्नुते' 'बहूदकं व्याप्नोति'** जो बहुत पानी में व्यापक है, अतः बिजली को उर्वशी कहते हैं। उसी का इस वेदमन्त्र में वर्णन है, जैसे—

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्धरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः॥ १०॥

—ऋ० मं० १० सू० ९५

निरुक्त परतःप्रमाण है, अतः उसका ऐतिहासिक पक्ष वेदविरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है। वेदमन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

'अब विद्युत् होकर गिरती हुई, जो चमकती है—उत्पन्न हुई है, उससे मनुष्यों के लिए हितकारी शुभ जन्मवाला जल। इस प्रकार जल और जल से अन्न द्वारा वह बिजली दीर्घायु करती है॥ १०॥

कहिए महाराज! इस वेदमन्त्र में वसिष्ठ और उसकी उत्पत्ति का वर्णन कहाँ है?

(४०६) प्रश्न—'उतासि मैत्रावरुणो' इस मन्त्र तथा इसके निरुक्त [अ० ५ खं० १४] में उर्वशी अप्सरा से वसिष्ठ की उत्पत्ति वेद ने बतलाई है। —पृ० ३३३, पं० २१

उत्तर—श्रीमान्जी! वेदों में मनुष्यों के इतिहास का वर्णन नहीं होता, अपितु मनुष्य वेदों को देखकर अपने नाम रख लिया करते हैं। जो निरुक्त वेदों में इतिहास बतलाता हो वह वेदविरुद्ध होने से मिथ्या तथा अप्रमाण है। इस वेदमन्त्र में वसिष्ठ तथा वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है, अपितु वसिष्ठ से जीवात्मा तथा उर्वशी से प्रकृति का वर्णन है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त॥ ११ ॥ —ऋ० ७।३३

भाषार्थ—हे देह में बसे प्राणों में सर्वश्रेष्ठ जीव! तू मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी है। हे बुद्धिशील जीव! तू अतिकान्तिमती, तैजस्, सात्त्विक विकार से युक्त वा 'उरु'=अतिविस्तृत व्यापक प्रकृति के ऊपर मननशक्ति द्वारा भोक्तारूप से अध्यक्ष होता है। समस्त किरणों के, समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी महान् परमब्रह्म परमेश्वर से प्रदत्त वीर्य के समान तुझको समस्त दिव्य शक्तियाँ पुष्टिकारक तत्त्व में धारण करती हैं॥ ११ ॥

आपको वेद में यौगिक शब्द देखकर रूढ़ि नामोंवाले व्यक्तियों की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

(४०७) प्रश्न—हम वसिष्ठ को गणिकापुत्र मानें तो कैसे मानें? —पृ० ३३४, पं० २०

उत्तर—आप अपने ग्रन्थों के लेखानुसार वसिष्ठ को गणिकापुत्र मानने पर विवश हैं। देखिए—

गणिकागर्भम्भूतो वसिष्ठश्च महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २९ ॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

भाषार्थ—कंजरी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठजी तप से ब्राह्मण बन गये, अतः ब्राह्मण बनने में संस्कार ही कारण हैं॥ २९ ॥

आशा है कि इतने स्पष्ट प्रमाण की विद्यमानता में आपको वसिष्ठ के गणिकापुत्र होते हुए तप से ब्राह्मण बनने में अब कोई सन्देह न रहेगा।

स्वामी दयानन्द और वर्णव्यवस्था

(४०८) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी वर्णव्यवस्था जन्म से मानते हैं। —पृ० २२, पं० १३

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है, क्योंकि ऋषि दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अपने मन्तव्यों को लिख दिया है, ताकि आप जैसे धूर्त लोग स्वामीजी के नाम से अंटशंट लिखकर धोखा न दे सकें। वर्णव्यवस्था के बारे में ऋषि इस प्रकार लिखते हैं कि—

१६—**वर्णाश्रम**—गुण-कर्मों की योग्यता से मानता हूँ॥

(४०९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८८ में लिखा है कि—'**प्रश्न**—जातिभेद ईश्वरकृत है या मनुष्यकृत? **उत्तर**—ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद हैं। **प्रश्न**—कौन-से ईश्वरकृत और कौन-से मनुष्यकृत है? **उत्तर**—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियाँ परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियाँ, वृक्षों में पीपल, वट, आम्रादि, पक्षियों में हंस, काक, बकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं, वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद ईश्वरकृत हैं।'

यहाँ पर स्वामीजी ने मनुष्यजाति में ब्राह्मणादि जातियाँ ईश्वरकृत मानी हैं। ईश्वरकृत कार्य

में कोई तब्दीली नहीं कर सकता, इसलिए तुम्हारा लगाया गुण-कर्म-स्वभाव का अड़ंगा निष्प्रयोजन है। —पृ० २२, पं० १५

उत्तर—आपने स्वामीजी का अधूरा पाठ उद्धृत करके धोखा देने की अनधिकार चेष्टा की है। जो पाठ आपने दिया है उससे आगे सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार पाठ है—

'परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्यजाति में नहीं, किन्तु सामान्यविशेष जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रम-व्यवस्था में लिख आये, वैसे ही गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण-कर्म-स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है'।

अब उस पाठ से आगे इस पाठ को मिलाकर पढ़ें तो आपको स्पष्ट ज्ञान हो जाएगा कि स्वामीजी का अभिप्राय यह है कि 'किसी जीव का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि के घर पैदा होना तो पूर्वजन्म के कर्मानुसार ईश्वरकृत है, परन्तु मनुष्य का काम करने में स्वतन्त्र होने के कारण श्रेष्ठ कर्म करके शूद्रादि से ब्राह्मणादि बन जाना अथवा निकृष्ट कर्म करके ब्राह्मणादि का शूद्रादि बन जाना यह मनुष्यकृत है। ईश्वरकृत कार्य जो मनुष्य शरीर है उसमें हम तब्दीली नहीं कर सकते, किन्तु गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता तथा निकृष्टता से वर्ण-परिवर्तन कर सकते हैं।

(४१०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० २८ में लिखा है कि—

'९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों, वहाँ लड़के-लड़कियों को भेज दें, और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें'।

यहाँ पर स्वामीजी ने जातिभेद, वर्णव्यवस्था को जन्म से माना है। द्विजों को आचार्यकुल में प्रवेश करवाया है और शूद्रों को आचार्यकुल में फटकने नहीं दिया, उनके पढ़ने के लिए गुरुकुलों की व्यवस्था लिख दी। द्विजों के लड़कों का उपनयन करना लिखा और शूद्रों के लड़कों के उपनयन का निषेध किया, यही बात सनातनधर्म मानता है। —पृ० २२, पं० २५

उत्तर—स्वामीजी की परिभाषा में आचार्यकुल तथा गुरुकुल एक ही वस्तु हैं, जैसाकि स्वामीजी के लेख से पता लगता है। स्वामीजी ने चतुर्थ समुल्लास के आरम्भ में '**गुरुणानुमतः**' का अर्थ करते हुए लिखा है कि—

'गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे।'

आचार्यकुल में प्रविष्ट करना तथा गुरुकुल से निकलना सिद्ध करता है कि आचार्यकुल तथा गुरुकुल एक ही बात है, दो नहीं। रही बात यज्ञोपवीत की, जबतक बच्चे माता-पिता के अधीन हैं, उनके संस्कार माता-पिता के वर्णानुकूल होते हैं। जब वे कर्म करने में समर्थ, स्वतन्त्र हो जाते हैं तब उनके संस्कार उनके गुण-कर्मानुसार होते। अतः द्विजों के बालकों को उनके माता-पिता के वर्णानुसार यज्ञोपवीत देकर तथा शूद्रादि के बालकों को उनके माता-पिता के वर्णानुसार बिना यज्ञोपवीत के ही गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। फिर गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात् आचार्य सब बालकों की योग्यता को देखकर पुनः यज्ञोपवीत देता है। शूद्रादि के जो बालक विद्या पढ़ने के योग्य होते हैं, उनको यज्ञोपवीत देकर वेदारम्भ संस्कार करवाता है और द्विजों के जो बालक विद्या पढ़ने में बुद्धिहीन सिद्ध होते हैं, उनको गुरुकुल से निकाल देता है, जैसेकि स्वामीजी ने तृतीय समुल्लास में '**कन्यानां सम्प्रदानम्**' श्लोक के नीचे लिखा है कि—

'प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो, दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो', इसका वही प्रयोजन है जो हमने ऊपर वर्णन किया है।

यदि सनातनधर्म भी शूद्रादि के बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट करना, उनको वेदादि की शिक्षा देना तथा उनकी योग्यतानुसार यज्ञोपवीत देना स्वामीजी की भाँति मानता है तो बधाई है, देश के भाग्य जाग पड़े!

(४११) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८ में लिखा है कि—

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्य वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नमन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य, वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है और जो कुलीन, शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़कर सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे। यह मत अनेक आचार्य्यों का है।

यहाँ स्वामीजी ने शूद्रों को उपनयन करने तथा वेद पढ़ाने का निषेध किया है।

उत्तर—स्वामीजी ने स्पष्ट लिख दिया है कि 'यह मत अनेक आचार्य्यों का है' इससे सिद्ध है कि यह स्वामीजी का अपना मत नहीं है। स्वामीजी का अपना मत यह है कि—

यथेमां वाचम्। —यजुः० २६।२

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्री आदि और शूद्र आदि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ाके अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दु:खों से छूटकर आनन्द को प्राप्त हों।'

स्वामीजी ने यह प्रमाण इसलिए दिया है कि 'क्षत्रिय तथा वैश्य को यज्ञोपवीत देने तथा पढ़ाने का और शूद्र को विद्या पढ़ने का अधिकार तो सनातनधर्म के भी अनेक आचार्य मानते हैं।'

(४१२) प्रश्न—स्वामीजी संस्कारविधि में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन ही वर्णों का उपनयन लिखते हैं और तीन ही वर्ण के लिए उपनयन के आरम्भ में क्रम से पयोव्रत, यवागु, आमिक्षा ये तीन व्रत बतलाते हैं। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में गृह्यसूत्र, मनु और शतपथ के प्रमाण भी दिये हैं। स्वामीजी के मत में तीन ही वर्णों का उपनयन-संस्कार होता है, शूद्र का नहीं। उपनयन में वर्षसंख्या एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के पृथक्-पृथक् व्रत जाति को जन्म से सिद्ध करते हैं। नामकरण संस्कार में भी स्वामीजी ने ब्राह्मण बालक का नाम शर्मा, क्षत्रिय बालक का नाम वर्मा तथा वैश्य के बालक के नाम के अन्त में गुप्त लगाकर नाम रखना लिखा है। ११ दिन के बच्चे की जाति गुण-कर्म-स्वभाव से कभी हो नहीं सकती। नाम रखने में वर्णव्यवस्था जन्म से ही है। सनातनधर्मी इसको प्रमाण मानते हैं। —पृ० २३, पं० १८

उत्तर—जिस बालक की माता गुण-कर्म-स्वभावानुसार पूर्णरूप से ब्राह्मणी हो और पिता गुण-कर्मानुसार पूर्णरूप से ब्राह्मण हो और ब्राह्मण के ढंग से ही उसके संस्कार किये जाएँ तो नव्वे प्रतिशत ऐसे बालक के ब्राह्मण ही बनने की सम्भावना होती हैं, दश प्रतिशत यह सम्भावना भी है कि वह बालक ब्राह्मण के कर्मों से हीन होकर शूद्र बन जावे। जिस बालक की माता पूर्णरूप से शूद्र तथा पिता भी पूर्णरूप से शूद्रा हो और उसका पालन-पोषण भी शूद्रों के ही ढंग से हुआ हो तो नव्वे प्रतिशत ऐसे बालक के शूद्र ही बनने की सम्भावना है। हाँ, दश प्रतिशत उसको अधिकार प्राप्त है कि वह ब्राह्मणादि बन सके। बालक चूँकि माता-पिता के अधीन होते हैं, कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होते, अत: उनके संस्कार भी, नामकरणादि से गुरुकुल प्रवेश तक, माता-पिता के अनुकूल ही होते हैं। उनकी भावी संज्ञा को लक्ष्य में रखकर ब्राह्मणादि के बालकों के शर्मादि नाम रक्खे जाते हैं तथा ब्राह्मणादि के बालकों का उपनयन करके तथा शूद्रादि के

बालकों को बिना उपनयन के गुरुकुल में प्रविष्ट कर दिया जाता है। गुरुकुल में गुरु उन सब बच्चों के उनकी योग्यतानुसार उपनयन करवा देता है और विद्या पूरी होने पर परीक्षापूर्वक गुण-कर्मानुसार उनकी वर्णव्यवस्था कर दी जाती है, जैसाकि स्वामीजी ने लिखा है—

'यह गुण-कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष तथा पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए।'

—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, सन्तान परिवर्तन के उत्तर में

'जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं, क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जाएँगे और सन्तान भी डरती रहेगी कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा।'

—सत्यार्थ० समु० ४, 'एकमेव तु शूद्रस्य' से आगे

यदि सनातनधर्म भी बालकों के माता-पिता के वर्णानुसार संस्कार तथा गुरुकुल-प्रवेश और समावर्तन के समय परीक्षापूर्वक गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णों की व्यवस्था से पुरुषों तथा स्त्रियों के भी वर्णपरिवर्तन को मानता है तो देश के सौभाग्य उदय होने में क्या सन्देह है!

मृतकश्राद्ध

(४१३) प्रश्न—वेदों में पितृयज्ञ और धर्मशास्त्रों में इसको श्राद्ध कहते हैं।

—पृ० २८७, पं० ३

उत्तर—आपके लेख ही से यह स्वयं सिद्ध है कि चारों वेदों में '**मृतकश्राद्ध**' शब्द नहीं है, अपितु यह पीछे की कल्पना है।

(४१४) प्रश्न—वेद के प्रत्येक मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध मृतक पितरों का होता है।

—पृ० २८७, पं० ४

उत्तर—प्रथम तो श्राद्ध शब्द ही जीवितों पर प्रयुक्त हो सकता है मृतकों पर नहीं, क्योंकि 'श्रत्' नाम सत्य का है और '**श्रद्विद्यतेऽस्यां सा श्रद्धा**' जिसमें सत्य विद्यमान हो वह श्रद्धा '**श्रद्धयायत्क्रियेत तच्छ्राद्धम्**' जो श्रद्धापूर्वक पितरों की सेवा की जावे उसका नाम श्राद्ध है। चूँकि सेवा जीवितों की ही हो सकती है, मृतकों की नहीं, अतः जीवितों का ही नाम पितर है, मृतकों का नहीं। दूसरे, पितर शब्द जीवितों के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है, मृतकों के लिए नहीं, क्योंकि हमारे जो माता-पिता, बहिन-भाई के सम्बन्ध हैं वे शरीरों के साथ हैं, जीवों के साथ नहीं हैं, क्योंकि माता-पिता हमारे शरीर को पैदा करते हैं जीव को नहीं, क्योंकि जीव अनादि तथा अनुत्पन्न हैं, जैसाकि—

न जायते म्रियते वा कदाचित्। —गीता २।२०

जीव कभी भी न पैदा होता है न मरता है, अपितु शरीर ही पैदा होता और मरता है, जैसेकि—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय। —गीता २।२३

अर्थात् जैसे हम पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़े पहन लेते हैं, वैसे ही जीव भी पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेता है।

जब जीव शरीर से निकलकर कर्मानुसार दूसरे जन्म में चला जाता है और शरीर को फूँक

दिया जाता है, फिर पितर कौन शेष रहता है! यदि कहो कि मरने के पीछे भी जीवों के साथ माता-पिता, बहिन-भाई के सम्बन्ध बने रहते हैं तो पुनर्जन्म में माता का पुत्र से, बहिन का भाई से, बेटी का बाप से विवाह होना सम्भव हो जावेगा, अतः जीवों के परस्पर माता-पितादि सम्बन्ध नहीं हैं, जैसाकि—

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ। समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥ ३६॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च। संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ ३८॥
नैवास्य कश्चिद् भवता नायं भवति कस्यचित्। पथि संगतमेवेदं दारबन्धुसुहृज्जनैः॥ ३९॥
अनित्ये प्रियसंवासे संसारे चक्रवद्गतौ। पथि संगतमेवैतद् भ्राता माता पिता सखा॥ ४१॥

—महा० शान्ति० अ० २८

भाषार्थ—जैसे महासागर में लकड़ियाँ आपस में मिल जाती हैं और मिलकर बिछुड़ जाती हैं, वैसे ही जीवों का परस्पर समागम है॥ ३६॥ हज़ारों माता-पिता तथा सैकड़ों पुत्र-स्त्रियों का संसार में अनुभव किया। किसके वे तथा किसके हम!॥ ३८॥ न इसका कोई है तथा न यह किसी का है। यह पत्नी, बन्धु, मित्रजनों से समागम रास्ते का ही समागम है॥ ३९॥ इस चक्र के समान गति करनेवाले, बसने में प्यारे, अनित्य संसार में यह भ्राता, माता, पिता, मित्र आदि सम्बन्ध रास्ते में समागम के समान ही है॥ ४१॥

इससे सिद्ध है कि मरने के पीछे जीवों से माता-पितादि का सम्बन्ध शेष नहीं रहता, जीवितों के साथ ही माता-पितादि सम्बन्ध है। पिता किसको कहते हैं, देखिए—

पिता पाता वा पालयिता वा जनयिता। —निरु० अ० ४ खं० २१

अध्यापयामास पितॄञ्शिशुराङ्गिरसः कविः। पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्॥ १५१॥
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः। देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान्॥ १५२॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः। अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥ १५३॥

—मनु० अ० २

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च। विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥ १५३॥

—ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० अ० १०

भाषार्थ—रक्षा करनेवाले और पैदा करनेवाले को पिता कहते हैं। —निरुक्त

बालक आंगिरा कवि ने अपने पितरों को पढ़ाया और उनको ज्ञान से ग्रहण करके 'पुत्र' कहा॥ १५१॥ वे पितर गुस्से में आकर यह अर्थ देवों से पूछने लगे। देवों ने इकट्ठे होकर उनसे कहा कि बालक ने तुमसे न्यायपूर्वक ही कहा है॥ १५२॥ अज्ञानी बालक होता है तथा मन्त्र का देनेवाला पिता होता है, अतः अज्ञानी को बालक तथा मन्त्र देनेवाले को ही पिता कहा जाता है॥ १५६॥ —मनु०

अन्न देनेवाला, भय से तरानेवाला, स्त्री का पिता, विद्या देनेवाला तथा जन्म देनेवाला—ये पाँच मनुष्यों के पिता कहाते हैं॥ १५३॥ —ब्रह्मवैवर्त

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि पितर शब्द जीवितों के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है, मृतकों के लिए नहीं, अतः जीवित पितरों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम ही श्राद्ध है। वेद का एक मन्त्र भी मृतकश्राद्ध की पुष्टि नहीं करता।

(४१५) प्रश्न—'ये निखाता' इत्यादि [अथर्व० १८।२।३४] यह मन्त्र गाड़े, फूँके, पड़े पितरों के बुलाने का है। —पृ० २८७, पं० ५

उत्तर—आपका यह अर्थ ग़लत और युक्तिशून्य है, क्योंकि आप हवि खाने के लिए उनको

बुलाते हैं जो गाड़े, फूँके और पड़े हुए हैं। अब यह गाड़ना और फूँकना आदि शब्द जीवों पर तो प्रयुक्त हो नहीं सकते, क्योंकि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। २३॥

—गीता अ० २

भाषार्थ—इस जीव को शस्त्र काट नहीं सकता, इसको आग जला नहीं सकती, इसको पानी गला नहीं सकता और इसको हवा सुखा नहीं सकती॥ २३॥

अब रह गये शरीर, सो उनका खाने के लिए आना असम्भव है, अतः इस मन्त्र का आपका किया हुआ अर्थ ठीक नहीं है। मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार है—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः। सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

—अथर्व० १८। २। ३४

भाषार्थ—यजमान पुरोहित से कहता है कि हे विद्वन्! जो पदार्थ ज़मीन में गाड़े हुए होते हैं (आलू, मूली, गाजर आदि) और जो पदार्थ बोये जाते हैं (गेहूँ, चावल आदि); जो पदार्थ भूनकर खाये जाते हैं (चने, मक्की, धान आदि) और जो पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं (सिंहाड़े, कमलगट्टे आदि) इन सब पदार्थों को निमन्त्रण में साधु-महात्मा आदि पितरों को खाना खिलाने के लिए लाकर दे॥ ३४॥

इस मन्त्र में जो परोप्ता शब्द पड़ा हुआ है इसके अर्थ बीजे जानेवाले पदार्थों के हैं और बीजे जाना अनाजों, सब्जियों का ही सम्भव है, अतः यह मन्त्र मृतकश्राद्ध को सिद्ध नहीं करता, अपितु जीवतों की सेवा को ही सिद्ध करता है, जैसाकि—

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः। तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतꣳसमाः॥

—यजुः० १९। ४६

देवाः पितरः पितरो देवाः॥ —अथर्व० ६। १२३। ३

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः। न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः॥ १९२॥
वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्राँश्चैव पितामहान्। प्रपितामहाँस्तथादित्याञ्श्रुतिरेषा सनातनी॥ २८४॥

—मनु० अ० ३

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा॥ २६॥ —महा० भीष्म० अ० २५

न क्षत्रिया रणे राजन् वर्जयन्ति परस्परम्।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह॥ ५॥ —महा० भीष्म० अ० १०२

भाषार्थ—जो इस लोक में जीते हुओं में समान गुण-कर्म-स्वभाववाले, समान धर्म में मन रखनेहारे मेरे जीवित पिता आदि हैं, उनकी लक्ष्मी मेरे समीप सौ वर्ष पर्यन्त समर्थ होवे॥ ४६॥ देवों का नाम पितर है और पितरों का नाम देव है॥ ३॥ क्रोध से रहित, शुद्ध रहनेवाले, ब्रह्मचारी, शस्त्रहीन, महाभाग विद्वानों का तथा बुजुर्गों का नाम पितर है॥ १८२॥ वसुओं का नाम पितर, रुद्रों का नाम पितामह तथा आदित्यों का नाम प्रपितामह है—यह वेदवचन है॥ १८४॥ वहाँ पर अर्जुन ने मैदाने-जंग [युद्धभूमि] में पितर, पितामह, आचार्य्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्रों तथा मित्रों को खड़े हुए देखा॥ २५॥ हे राजन्! क्षत्रिय रण में एक-दूसरे को आपस में छोड़ते नहीं, मर्यादा को छोड़कर पितरों तथा भाइयों से लड़ते हैं॥ ५॥

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से सिद्ध है कि पितर नाम जीवितों का ही है, मृतकों का नाम पितर नहीं है।

(४१६) प्रश्न—'आयन्तु नः पितरः' इत्यादि [यजुः० १९।५८] इस मन्त्र में भी मृतक पितरों को भोजन तथा उपदेशार्थ बुलाया है।

उत्तर—मृतक पितरों का यज्ञ में आना तथा भोजन करके प्रसन्न होना और यजमान को उपदेश करना तथा उसकी रक्षा करना सम्भव नहीं है। ये सारे काम जीवित पितरों से ही होने सम्भव हैं। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ —यजुः० १९।५८

भाषार्थ—जो चन्द्रमा के तुल्य शान्त, शम-दमादि गुणयुक्त, अग्नि आदि पदार्थविद्या में निपुण, अन्न और विद्या के दान से हमारे रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं वे आप्त लोगों के जाने-आने योग्य धर्मयुक्त मार्गों से आवें। इस पढ़ाने, उपदेश करनेरूप व्यवहार में वर्त्तमान होके अन्नादि से आनन्द को प्राप्त हुए हमको अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी सदा रक्षा करें॥५८॥

आपने अग्निष्वात्ता के अर्थ अग्नि से जले हुए किया है सो ठीक नहीं है, क्योंकि जीव तो अग्नि में जलते नहीं, जैसाकि—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ २४॥ —गीता अ० २

भाषार्थ—यह जीव अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल तथा सनातन है॥ १४॥

रही शरीर की बात, वह जलने के पीछे आकर उपदेश कैसे करेगा? अतः हमारा अर्थ ठीक है कि अग्निविद्या में निपुण मनुष्यों का नाम अग्निष्वात्ता है।

आपके सिद्धान्तानुसार भी अग्नि में जले हुओं का नाम अग्निवष्वात्त नहीं है, देखिए—

अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः॥ —मनु० ३।१९५

भाषार्थ—अग्निष्वात्त मरीचि ऋषि के पुत्रों का नाम है और वे देवों के पितर हैं॥१९५॥

शिवपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा पुत्री पर आसक्त हुए तो महादेव ने उन्हें डाँटा। इससे ब्रह्मा को पसीना आ गया। उससे अग्निष्वात्त पितर पैदा हुए, जैसाकि ब्रह्माजी स्वयं बतलाते हैं कि—

मच्छरीरात्तु घर्मांभो यत्पपात द्विजोत्तम। अग्निष्वात्ताः पितृगणा जाता पितृगणास्ततः॥४८॥
—शिव रुद्र० सती० अ० ३

मेरे शरीर से पसीने का जो जल गिरा, उससे अग्निष्वात्त पितर और दूसरे पितर भी पैदा हुए॥४८॥

इससे सिद्ध है कि अग्नि में जलों [भस्म हुओं] का नाम अग्निष्वात्त नहीं है, अपितु अग्निविद्या में निपुण का नाम ही अग्निष्वात्त है और वे जीते ही हो सकते हैं, मरे हुओं का नाम पितर नहीं है।

(४१७) प्रश्न—जो मृतक पितर पितृलोक में जाते हैं वे इस पितृयज्ञ=श्राद्ध में सूक्ष्म शरीर से भोजन खाने के लिए स्वतः आते हैं। ऐसे पितरों को इन दो मन्त्रों में बुलाया है, इसी पर मनुजी लिखते हैं—

निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्। वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥
—३।१८९

निमन्त्रित पितर ब्राह्मणों के साथ-साथ वायुभूत होकर आते हैं और ब्राह्मणों के साथ बैठकर भोजन करते हैं।

—पृ० २८७, पं० १६

उत्तर—हम पूर्व लिख आये हैं कि मृतकों की पितर संज्ञा होती ही नहीं। फिर पितरलोक भी कोई भिन्न स्थान नहीं है। जहाँ माता-पिता, साधु-महात्मा, ज्ञानी लोग रहते हैं उसी का नाम पितरलोक है और वहाँ से ही बुलाना इस मन्त्रों में लिखा है। पौराणिकों के द्वारा मिथ्या कल्पित कोई विशेष पितरयोनि नहीं है, अपितु जीव इस शरीर को छोड़ते ही कर्मानुसार दूसरे शरीर को प्राप्त हो जाता है, जैसाकि—

यथातृणजलौका हि पश्चात्पादं तदोद्धरेत्॥ ७५॥
स्थितिरग्रयस्य पादस्य यदा जाता दृढा भवेत्॥ ७६॥
देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥ ८३॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ ८४॥

—गरुड़० प्रेत० अ० १०

प्रविशेत्स नवे देहे गृहे दग्धे गृही यथा। —गरुड० प्रेत० अ० ३ श्लो० ९६

भाषार्थ—जैसे घास की सूँडी तभी पीछे से दूसरा पाँव उठाती है॥ ७५॥ जब अगले पावों की दृढ़ स्थिति हो जाती है। वैसे ही जीव तब शरीर को छोड़ता है जब उसका दूसरे शरीर से सम्बन्ध हो जाता है॥ ७६॥ जैसे जीव इस शरीर में कुमार, युवा तथा बुढ़ापे को प्राप्त होता वैसे ही इसको दूसरे शरीर की प्राप्ति होती है॥ ८३॥ जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़ों को धारण करता है, वैसे ही जीव पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर को धारण कर लेता है॥ ८४॥ जैसे मनुष्य घर के जल जाने पर नये घर में प्रवेश करता है, वैसे ही जीव भी देह के नाश होने पर दूसरी देह को धारण करता है॥ ९६॥

देह भी चार प्रकार की है, जैसेकि—

एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्। चतुरशीतिलक्षाणि निर्मिता योनयः पुरा॥ १०४॥
उद्भिजाः स्वेदजाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजा॥ १०५॥ —गरु० प्रेत० अ० ३

भाषार्थ—ऐसे ही मैंने आपके लिए चार प्रकार का शरीर बतलाया। चौरासी लाख योनियाँ पहले बनाई गईं॥ १०४॥ उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज॥ १०५॥

इनमें पितर या प्रेतयोनि का नाम भी नहीं है, अतः न पितरयोनि होती है और न कोई और पितरलोक है और न कोई पितरयोनि में जाता है। यह सब पोप-पाखण्ड ही है। जब पितरयोनि ही नहीं तो फिर पितरों का निमन्त्रित होना, ब्राह्मणों के पीछे फिरना तथा उनके साथ खाना स्वयं ही मिथ्या सिद्ध हो गया।

कहिए श्रीमान्‌जी! यदि पितर निमन्त्रित ब्राह्मणों के पीछे-पीछे फिरते हैं तो पितरों की बड़ी दुर्दशा होती होगी, क्योंकि जब ब्राह्मण टट्टी आदि जाते होंगे तो भी पितरों को उनके पीछे-पीछे ही रहना पड़ता होगा। यदि पितर भोजन करते हैं तो पितर ब्राह्मणों से पहले भोजन करते हैं या पीछे या साथ ही, यदि पितर भोजन पहले करते हैं तो ब्राह्मण जूठा खाते हैं और ब्राह्मण पहले भोजन करता है तो पितर जूठा खाते हैं। यदि दोनों इकट्ठा खाते हैं तो दोनों ही जूठा खाते हैं और यह धर्मशास्त्र के विरुद्ध है, जैसेकि—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा॥ —मनु० २।५६

न किसी को जूठा देवे और न किसी के साथ इकट्ठा खावे।

फिर आपके यहाँ तो यह भी लिखा है कि पितर ब्राह्मण के अन्दर घुसकर खाते हैं, जैसाकि—

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग। प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥ २६॥
श्राद्धकर्त्रा तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः। उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः॥ २७॥
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकः॥ २८॥ —गरुड़० प्रेत० अ० १०

हे खग! जो ब्राह्मण श्राद्ध से पहले दिन निमन्त्रित किये जाते हैं पितर उनमें प्रवेश करके भोजन करके अपने घर चले जाते हैं॥ २६॥ श्राद्ध करनेवाले ने यदि एक ही ब्राह्मण को न्योता दिया हो तो श्राद्ध करनेवाले का पिता ब्राह्मण के पेट में, बायें पसवाड़ें में दादा तथा दायें पसवाड़े में परदादा और पिण्डभक्षक पीठ में बैठकर पिण्डों को खाते हैं॥ २८॥ कहिए जनाब! आपकी बात ठीक है या गरुड़पुराण की? निश्चय जानिए दोनों ही वेदविरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

(४१८) प्रश्न—कई-एक लोगों की यह शंका है कि वे पितर हमको दीखते क्यों नहीं? इसके ऊपर शतपथ लिखता है—

तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः। —शत० २।४।२।२१

सूक्ष्म होने के कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य होते हैं, क्योंकि—

आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि॥ —न्याय० ३।१।२७ वात्स्यायनभाष्य

लोकान्तर में जल, अग्नि, वायु के शरीर होते हैं। जब अग्नि, वायु, जल के शरीर अतिसूक्ष्म होते हैं फिर वे दृष्टि में कैसे आवेंगे? —पृ० २८८, पं० ५

उत्तर—बेशक प्रत्येक बुद्धिमान् के दिल में यह विचार उत्पन्न होता है कि जब पितर ब्राह्मणों के पीछे-पीछे फिरते हैं और भोजन भी करते हैं तो फिर वे नज़र क्यों नहीं आते? शतपथ के पाठ में कोई ऐसा शब्द नहीं है जिसके अर्थ 'सूक्ष्म' किये जा सकें और आपने 'इव' शब्द के अर्थ ही नहीं किये। शतपथ के वास्तविक अर्थ यह हैं कि 'पितर मनुष्यों से छिपे हुओं की भाँति रहते हैं'—छिपे हुए नहीं, अपितु छिपे हुओं को भाँति रहते हैं। यह वाक्य उन वानप्रस्थ और संन्यासी महात्माओं के लिए है जो ज्ञान से रक्षा करने के कारण पितर कहाते हैं और वनों, जंगलों, पर्वतों आदि के एकान्त स्थानों में रहते हैं जिनके दर्शन कभी-कभी होते हैं। यदि यह वाक्य पौराणिक सूक्ष्म, कल्पित पितरों के लिए होता तो इसमें 'इव' लिखने की आवश्यकता न थी। और न्याय के पाठ का यह अर्थ नहीं है कि लोकान्तर में केवल अग्नि, जल तथा वायु के शरीर होते हैं, अपितु उसका यह अर्थ है कि लोकान्तर में वायु, जल, अग्नितत्त्व-प्रधान शरीर होते हैं जैसे हमारे शरीर पृथिवी के हैं। इसके यह अर्थ नहीं कि हमारे शरीर केवल पृथिवी के ही हैं और उनमें अग्नि, जल, वायु, का सर्वथा अभाव है, अपितु इसके यह अर्थ हैं कि हमारे शरीरों में पृथिवीतत्त्व प्रधान है। वैसे ही पक्षियों के शरीरों में वायुतत्त्व प्रधान तथा जलचरों के शरीरों में जलतत्त्व प्रधान तथा गर्म देश के रहनेवाले जानवरों के शरीर में अग्नितत्त्व प्रधान है, दूसरे तत्त्व भी गौणरूप से विद्यमान हैं। केवल एक ही तत्त्व से किसी प्राणी का भी शरीर बनना असम्भव है, क्योंकि एक तत्त्व के शरीर में एक ही ज्ञानेन्द्रिय हो सकेगी किन्तु पितरों के शरीर में आप पाँचों ज्ञान-इन्द्रियाँ मानते हैं, फिर उनका शरीर एक ही तत्त्व का कैसे? भला! यदि पितरों के शरीर अग्नि, वायु या जल के ही बने हुए हैं तो वे पार्थिव अन्न को कैसे ग्रहण कर सकते हैं, अत: न पितर कोई योनि है और न ही इस प्रकार के कोई शरीर हैं, अपितु यह पौराणिक कल्पना मिथ्या ही है। आप तो कहते हैं पितर नज़र नहीं आते। महाभारत में जरत्कारू ने अपने पितर यायावर गढ़े में उलटे लटकते हुए देखे। (आदि० प० १३)। और आपका गरुड़पुराण कहता है कि पितर सीता को नज़र आये, जैसाकि—

गरुत्मञ्छृणु वक्ष्यामि यथा दृष्टास्तु सीतया। पितरो विप्रदेहे वै श्वशुराद्यास्त्रयः क्वचित्॥ ३२॥
पिता तव मया दृष्टो ब्राह्मणाग्रे तु राघव। सर्वाभरणसंयुक्तो द्वौ चान्यौ न तथाविधौ॥ ४४॥
स्वहस्तेन कथं देयं राज्ञे वा भोजनं मया॥ ४६॥
तृणपात्रे कथं तस्मै अन्नं दातुं हि शक्नुयाम्॥ ४७॥
अपकृष्टास्मि तेनाहं त्रपया रघुनन्दन॥ ४८॥ —गरुड० प्रेत अ० १०

भाषार्थ—हे गरुड़! सुन, मैं तुझसे कहता हूँ कि जैसे सीता ने कहीं ब्राह्मणों के शरीर में श्वसुर आदि तीन पितर देखे॥ ३२॥ सीता ने कहा—'हे राम! मैंने ब्राह्मण के आगे आपके पिता को देखा जो सारे गहनों से सज्जित थे तथा वैसे ही दो और देखे॥ ४४॥ मैं अपने हाथ से राजा को भोजन कैसे देती?॥ ४६॥ मैं तृण के पात्र में कैसे उनको अन्न दे सकती थी?॥ ४७॥ हे राम! इस कारण मैं शरम से भागकर छिप गई थी॥ ४८॥

कहिए महाराज! आप सच्चे हैं वा महाभारत, गरुडपुराण और सीता महारानी सच्ची हैं? निश्चय जानिए, आपका तथा महाभारत और गरुडपुराण दोनों ही का लेख वेदविरुद्ध तथा मिथ्या है।

(४१९) प्रश्न—इनसे भिन्न जो पितर अन्य योनियों में गये हैं, उनके लिए स्वधा देकर उस स्वधा को ईश्वर से पितरों को पहुँचा देने की प्रार्थना की जाती है। —पृ० २८८, पं० १०

उत्तर—कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है। अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिलता और न ही किया हुआ कर्म फल भोगे बिना छूटता है और न ही परलोक में कोई किसी की सहायता कर सकता है। यह ईश्वर का अटल नियम है, जिसकी वेद, शास्त्र, इतिहास पुष्टि करते हैं—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥
असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ ३॥
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः॥ १॥
अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते॥ ९॥ —यजुः० ४०

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो, इस प्रकार से तुझ नर में बुरे कर्मों का लेप न होगा। इसके बिना और कोई रास्ता नहीं है॥ २॥ जो लोग आत्महत्या करते हैं वे लोग जीते हुए भी दुःख पाते हैं और मरने पर भी ऐसे जन्मों को प्राप्त होते हैं जो अत्यन्त अज्ञानमय हैं॥ ३॥ त्याग भाव से कर्मों का फल भोगो॥ १॥ जो लोग प्रकृति की उपासना करते हैं वे नरक में जाते हैं॥ ९॥

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि कर्मों का फल कर्त्ता को अवश्य भोगना पड़ता है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः। न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥ २३९॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते। एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ २४०॥
—मनु० ४

परलोक में माता, पिता, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी कोई सहायता नहीं कर सकता, केवल धर्म ही सहायता करता है॥ २३९॥ जीव अकेला ही पैदा होता है, अकेला ही मरता है। अकेला ही पुण्यफल भोगता है और अकेला ही पापफल भोगता है॥ २४०॥

यहाँ पर मानवधर्मशास्त्र भी इसकी पुष्टि करता है कि कर्मों का फल कर्त्ता को ही मिलता है।

यदि भुक्तमिहान्येन देहमन्यस्य गच्छति। दद्यात् प्रवसतां श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत्॥ १५॥
—वाल्मी० अयो० स० १०८

एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम्। मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते॥ १५॥
—वाल्मी० अ० १०९

भाषार्थ—यदि यहाँ दूसरे का खाया हुआ दूसरे के शरीर में पहुँच जाता है तो प्रदेश गये हुओं का श्राद्ध करना चाहिए ताकि उसको रास्ते में भोजन न करना पड़े॥ १५॥ एक ही संसार का पालन करता है, एक ही कुल का पालन करता है, अकेला ही नरक में डूबता है और अकेला ही स्वर्ग में जाता है॥ १५॥

रामायण से भी सिद्ध है कि किसी का किया किसी को नहीं मिलता, कर्म का फल कर्त्ता को ही मिलता है।

न कर्मणा पितुः पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा। मार्गेणान्येन गच्छन्ति बद्धाः सुकृतदुष्कृतैः॥ ३८॥
यत्करोति शुभं कर्म तथा कर्म सुदारुणम्। तत् कर्तैव समश्नाति बान्धवानां किमत्र ह॥ ४१॥
—महा० शान्ति० अ० १५३

बालो युवा च वृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम्। तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं प्रतिपद्यते॥ १५॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति॥ १६॥
—महा० शान्ति० अ० १८१

एक एव चरेद्धर्म्मं नास्ति धर्मे सहायता। केवलं विधिमासाद्य सहायः किं करिष्यति॥ ३२॥
—महा० शान्ति० अ० १९३

भाषार्थ—पिता के कर्म से पुत्र तथा पुत्र के कर्म से पिता नहीं, अपितु अपने किये पुण्य-पापों से बँधे हुए इस मार्ग से जाते हैं॥ ३८॥ जो शुभ कर्म करता है अथवा पापकर्म करता है उनको करनेवाला ही भोगता है। इसमें रिश्तेदारों का क्या है?॥ ४१॥ बालक, जवान, बूढ़ा जो भी शुभ-अशुभ कर्म करता है उस-उस अवस्था में उसके फल को भोगता है॥ १५॥ जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माता को ढूँढ लेता है, वैसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है॥ १६॥ अकेला ही धर्म का आचरण करे, क्योंकि धर्म में सहायता नहीं है। केवल विधि का आश्रय लेकर सहायक क्या करेगा?॥ ३२॥

इत्यादि महाभारत भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करता है।

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात्॥ ५॥ —वैशेषिक० ६।१।५

भाषार्थ—अन्य आत्मा के गुणों का अन्य आत्मा में कारण न होने से, एक आत्मा के अनुष्ठान किये हुए कर्म का फल दूसरे आत्मा को नहीं मिलना चाहिए, किन्तु कर्म का फल कर्त्ता को मिलना चाहिए।

इस सूत्र का यह अभिप्राय है कि कर्त्ता को कर्म का फल न मिलने से कृतहानि तथा अकर्त्ता को कर्म का फल मिलने से अकृताभ्यागम दोष आता है, अतः अन्य योनियों में गये हुए जीवों को कुछ भी पहुँचाने की प्रार्थना वा यत्न ईश्वरीय नियम के विरुद्ध व्यर्थ कल्पना ही है।

आपने अभी तक कोई ऐसा वेदमन्त्र पेश नहीं किया जिससे यह सिद्ध हो सके कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से मृतपितरों को मिलता है। आपकी वेदविरुद्ध कल्पना से तो पौराणिक पितरों पर एक और विपत्ति आ पड़ती है कि आपके बुरे कर्मों का फल भी पितरों को भुगतना पड़ता है, जैसेकि—

यथोक्तवादिनं दूतं क्षत्रधर्मरतो नृपः। ये हन्यात् पितरस्तस्य भ्रूणहत्यामवाप्नयुः॥
—महा० शान्ति० अ० ८५ श० २७

श्राद्धं भुक्त्वा त्वधीयीत वृषलीतल्पगश्च यः। पुरीषे तस्य ते मासं पितरस्तस्य शेरते॥ १३॥

ज्ञानपूर्वं तु ये तेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पबुद्धयः॥ पुरीषं भुञ्जते तस्य पितरः प्रेत्य निश्चयः॥ १७॥

—महा० अनु० अ० ९०

श्राद्धं दत्वा च भुक्त्वा च पुरुषो यः स्त्रियं व्रजेत्। पितरस्तस्य तं मासं तस्मिन् रेतसि शेरते॥ २४॥

—महा० अनु० अ० १२५

भाषार्थ—क्षत्रियधर्म पर चलनेवाला राजा यदि ठीक-ठीक बोलनेवाले दूत को मार दे तो उस राजा के पितरों को गर्भहत्या का दोष लगता है॥ २७॥ श्राद्ध का भोजन करके यदि कोई वेद पढ़े या शूद्रा से समागम करे तो उसके पाखाने में उसके पितर एक मास शयन करेंगे॥ १३॥ जो मूर्ख ज्ञानपूर्वक जुआरी, गर्भघातक, क्षयरोगी, पशुपालक, अपढ़, ग्रामदूत, सूदखोर, नचार, रागी, दुकानदार, पागल, शराब बेचनेवाला, समुद्रयात्रा करनेवाला, राजा का नौकर, चोर, कारीगर, ज्योतिषी, पुजारी, खेती करनेवाला इत्यादि ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराता है, परलोक में उसके पितर निश्चय से पाखाना खाते हैं॥ १७॥ जो श्राद्ध देकर वा खाकर स्त्री-गमन करता है, उसके पितर उस महीने उसके वीर्य में निवास करते हैं॥ २४॥ [नचार=नृतक, गवैया। —सं०]

अतः यही वैदिक सिद्धान्त ठीक है कि कर्म का फल कर्त्ता को ही मिलता है, अन्य को नहीं।

(४२०) प्रश्न—'ये चेह पितरः' इत्यादि यजुः० [१९।६७] इस मन्त्र में ईश्वर से जानने, न जाननेवाले पितरों को स्वधा पहुँचाने की प्रार्थना है। —पृ० २८८, पं० १२

उत्तर—कहिए महाराज! आपके अर्थ के अनुसार भी इसमें ब्राह्मणों द्वारा पितरों को तृप्त करने का वर्णन नहीं है, अपितु अग्नि वा ईश्वर द्वारा ही स्वधा पहुँचाने का वर्णन है और 'इह' के अर्थ 'शरीर धारण करके इस लोक में आये हुए', मन्त्र के किन पदों का अर्थ है? क्या आप किन्हीं मृत पितरों को जानते भी हैं कि वे कहाँ हैं? यदि नहीं जानते तो मन्त्र में 'जिनको हम जानते हैं' ये वाक्य जीवित पितरों के लिए ही सार्थक हो सकते हैं, मृतकों के लिए नहीं और आपका किया हुआ अर्थ ठीक नहीं है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳसुकृतं जुषस्व॥ —यजुः० १९।६७

भाषार्थ—हे नवीन तीक्ष्ण बुद्धिवाले विद्वन्! जो यहाँ ही पिता आदि ज्ञानी लोग हैं और जो यहाँ नहीं हैं और जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते, उन यावत् पितरों को आप जानते हैं और वे आपको भी जानते हैं, उनके सेवारूप, पुण्यजनक, सत्काररूप व्यवहार को अन्नादि से सेवन करो॥ ६७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान्, अध्यापक और उपदेशक हैं उन सबको बुला अन्नादि से सदा सत्कार करो, जिससे आप भी सर्वसत्कारयुक्त होवो॥ ६७॥

स्वधा शब्द निरुक्त अ० २ खं० २४ में जल के नामों में तथा निरुक्त० अ० ३ खं० ७ में अन्न के नामों में पढ़ा गया है, अतः इस मन्त्र से जीवित पितरों का अन्न-जल से तृप्त करना ही सिद्ध होता है, मृतकों का नहीं।

श्रीमान्‌जी! आपके यहाँ तो श्राद्ध को नित्यकर्म लिखा है—

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

—मनु० ३।८२

भाषार्थ—पितरों को प्रसन्न करने के लिए अन्नादि, उदक, दूध, मूल, फल आदि से प्रतिदिन श्राद्ध करें॥ ८२॥

फिर आप केवल आश्विन के पन्द्रह दिनों में और उन दिनों में से भी एक पितर के लिए एक दिन ही श्राद्ध करते हैं। भला! वर्षभर में एक दिन के श्राद्ध से पितरों की क्या सन्तुष्टि हो सकती है। हाँ, आपके यहाँ दीर्घकाल तक सन्तुष्टि करने के उपाय तो लिखे हैं, जैसेकि—

तिलैर्व्रीहियर्वैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा। दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन पितरो नृप॥ ३॥
द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्तिर्मत्स्यैः पितृगणस्य च। त्रीन् मासानाविकेनाहुश्चतुर्मासं शशेन ह॥ ५॥
आजेन मासान् प्रीयन्ते पञ्चैव पितरो नृप। वराहेण तु षन्मासान् सप्त वै शाकुनेन तु॥ ६॥
मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेन नवैव तु। गवयस्य तु मांसेन तृप्तिःस्याद्दशमासिकी॥ ७॥
मासानेकादश प्रीतिः पितॄणां माहिषेण तु। गव्येन दत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते॥ ८॥
यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह। वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ ९॥
आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं पितृक्षये। कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते॥ १०॥

—[श्लोक ५-१० को गीताप्रे० संस्करण में से निकाल दिया गया है।—सं०]

—महा० अनु० अ० ८८

एवमुक्ताश्च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां तदा। पितृभ्यः कल्पयित्वा तु ह्युपायुञ्जत भारत॥ १९॥
विप्रयोनौ तु यन्मोहान्मिथ्यापचरितं गुरौ। तिर्य्यग्योनौ तथा जन्म श्राद्धाज्ज्ञानं च लेभिरे॥ ३५॥
पितृप्रसादाद्युष्माभिः सम्प्राप्तं सुकृतं भवेत्। गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्यश्चोपकल्पिताः॥ ५०॥

—शिव० उमा० अ० ४१

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्॥ ११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ ११३॥

—ब्रह्मवै० खं० ४ अ० ११५

धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन्। आमन्त्रयति विप्रान् श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः॥ ५६॥
भ्रातरं संस्कृतं कृत्वा ततस्तं मेषरूपिणम्। तान् द्विजान् भोजयामास श्राद्धदृष्टेन कर्मणा॥ ५७॥

—वाल्मी० अरण्य० स० ११

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांस नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्॥

—मनु० ५।३५

भाषार्थ—तिल, चावल, जौ, उर्द, जल, मूल, फल, श्राद्ध में देने से हे राजन्! पितर एक मास तृप्त रहते हैं॥ ३॥ और मछलियों के मांस के देने से पितरगण की तृप्ति दो मास होती है। भेड़ का मांस देने से तीन मास तथा खरगोश के मांस से चार मास॥ ५॥ और बकरे के मांस से पितर पाँच मास तृप्त होते हैं। सुअर के मांस से छह मास तथा पक्षियों के मांस से सात मास तृप्त होते हैं॥ ६॥ पृषत् के मांस से आठ महीने, रुरु के मांस से नौ महीने पितरों की तृप्ति होती है, और नील गाय के मांस से दश महीने पितरों की तृप्ति होती है॥ ७॥ भैंसे के मांस से ग्यारह महीने पितरों की तृप्ति होती है। गौ का मांस देने से पितरों की बारह महीने तृप्ति होती है॥ ८॥ जैसे—गौ के मांस से वैसे ही खीर में घी मिलाकर देने से बारह महीने तृप्ति रहती है। वाध्रीणस के मांस से बारह बरस पितरों की तृप्ति होती हैं॥ ९॥ खड्ग=गैंडे के मांस से पितरों की अनन्त काल तक तृप्ति होती है। कालशाक तथा लाल बकरे के मांस से भी अनन्त काल तक तृप्ति होती है॥ १०॥ ऐसा कहने पर उन सबने तब गौ का प्रोक्षण कर पितरों के निमित्त कल्पना करके उस गौ को मारकर खा लिया॥ १९॥ ब्राह्मण के जन्म में उन्होंने गुरु से झूठ बोला इससे वे पशु की योनि में गये तथा श्राद्ध के पुण्य से ज्ञान की प्राप्ति की॥ ३५॥ पितरों की कृपा से तुमको पुण्य की प्राप्ति होगी, क्योंकि तुमने धर्म से गौ का प्रोक्षण करके पितरों के लिए अर्पण की थी॥ ५०॥

अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, श्राद्ध में मांस, देवर से सन्तान-उत्पत्ति—ये पाँच कलियुग में वर्जित हैं॥ ११२-११३॥ इलविल ब्राह्मणों का रूप धारण करके संस्कृत बोलता हुआ ब्राह्मणों को श्राद्ध का निमन्त्रण देता था॥ ५६॥ तब अपने भाई वातापि को जो मेढा बना होता था, मारकर उसका मांस बनाकर श्राद्ध की विधि से उन ब्राह्मणों को खिला देता था॥ ५६॥

न्यायपूर्वक श्राद्ध आदि में प्रयुक्त किये हुए मांस को जो नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्म तक पशु की योनि में जाता है॥ ३५॥

आप इस विधि के अनुसार आचरण करके पितरों की तृप्ति क्यों नहीं करते? हाँ, प्रतीत होता है कि आपको भी यह बात समझ में आ गई है कि यह मृतक पितरों के बहाने से मांसाहारी लोगों की मांस खाने की कल्पना ही है। इसी बात को जानकर किसी ने लिखा है कि—

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥

—[गीता० सं० में अ० २६५।—सं०] महा० शान्ति० अ० २६४।९

भाषार्थ—शराब, मछली, आसव, मांस आदि वस्तुएँ धूर्त लोगों ने यज्ञ में शामिल कर दी हैं, यह वेदों में लिखा हुआ नहीं है॥ ९॥

निश्चय जानिए, यह सारा ही पाखण्ड और पाप मृतकश्राद्ध की कल्पना का फल है। आशा है कि आप इसे त्यागकर वैदिक मत को स्वीकार करेंगे।

(४२१) प्रश्न—'ये अग्निष्वात्ता' इत्यादि [यजुः० १९।६०] जिनका अग्नि ने स्वाद लिया, जिनका नहीं लिया वे पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं **'अग्निस्वदिता अग्निष्वात्ताः'** जलाते हुए अग्नि ने जिनका स्वाद ले-लिया उनका नाम है **'अग्निष्वात्ताः'**, **'यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः'** [शत० कां० २] जिनका भस्म करते समय अग्नि ने स्वाद लिया है, वे ही पितर **'अग्निष्वात्त'** हैं।

—पृ० २८८, पं० १७

उत्तर—'हम प्रश्न नं० ४१६ के उत्तर में सिद्ध कर आये हैं कि अग्निष्वात्ता पितर अग्नि में जले हुओं का नाम नहीं है, क्योंकि अग्नि में शरीर जलता है जीव नहीं जल सकता और जले हुए शरीर का यज्ञ में आकर भोजन करना तथा उपदेश करना असम्भव है। पौराणिकों के मतानुसार शिवपुराण में ब्रह्मा के पसीने से तथा मनु में मरीचि ऋषि से अग्निष्वात्त पितरों की उत्पत्ति है और वे देवताओं के ही पितर हैं, मनुष्यों के नहीं। यदि अग्नि में जले हुओं का नाम ही अग्निष्वात्ता हो तो फिर सभी जले हुओं का नाम अग्निष्वात्ता होना चाहिए, वे सभी मनुष्यों के पितर होने चाहिएँ, केवल देवताओं के क्यों? अतः आपका कथन तो आपके ही ग्रन्थों से असत्य सिद्ध होता है। और आपने जो शतपथ का प्रमाण दिया है उसका ठीक पता नहीं बतलाया। प्रतीत होता है कि आपने मनघड़न्त पाठ शतपथ के नाम से रख दिया है, अतः आपकी व्युत्पत्ति तथा शतपथ दोनों ही वेदविरुद्ध, युक्तिशून्य तथा आपके अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध है। **'अग्निष्वात्ताः'** की व्युत्पत्ति इस प्रकार से ठीक और युक्तियुक्त है कि **'यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः'** जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेवाले हों वे अग्निष्वात्त अथवा **'अग्निः परमेश्वरोऽभ्युदयाय सुष्टुतयाऽऽत्तो गृहीतो यैस्तेऽग्निष्वात्ताः'** जो अग्नि नामक परमेश्वर को कल्याणार्थ सम्यक् ग्रहण करते हैं वे अग्निष्वात्त अथवा **'होमकरणार्थं शिल्पविद्यासिद्धये च भौतिकोऽग्निः सुष्ठुतयाऽऽत्तो गृहीतो यैस्तेऽग्निष्वात्ताः'** होम करने के लिए और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए भौतिक अग्नि का जिन्होंने अच्छे प्रकार ग्रहण किया है, वे अग्निष्वात्त पितर कहाते हैं। यही अर्थ वेदानुकूल, युक्तियुक्त तथा ग्रन्थसम्मत है, जैसाकि—

ताँस्तु शूरान् महेष्वासाँस्तदा निवसतो वने। अन्वयुर्ब्राह्मणा राजन् साग्नयोऽनग्नयस्तथा।

—महा० वन० अ० ५०।५

भाषार्थ—उन शूरवीर बहादुर पाण्डवों के वन में रहते हुए अग्निसहित तथा अग्निरहित ब्राह्मण पीछे-पीछे चलते थे॥५॥

इन्हीं का नाम अग्निष्वात्त पितर कहा जाता था। अब आप मन्त्र के वास्तविकार्थ को पढ़ने की कृपा करें। आपने आधा मन्त्र दिया है, जिससे भ्रम होना सम्भव है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति॥ —यजुः० १९।६०

भाषार्थ—जो पितर अग्निविद्या और अग्नि से भिन्न जलादि की विद्या के जाननेवाले तथा जो दिव अर्थात् विज्ञानरूप प्रकाश के बीच में सुखभोग से आनन्दित रहते हैं उनके हितार्थ स्वराट् जो स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर है, वह प्राणविद्या का प्रकाश कर देता है। इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! आप अपनी कृपा से उनके शरीर को सदा सुखी, तेजस्वी और रोगरहित रखिए कि जिससे हमको उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहे॥६०॥

इस मन्त्र में पितरों के शरीर को रोगरहित रखने की प्रार्थना से सिद्ध है कि पितर जीवितों का ही नाम है, मृतकों का नहीं।

श्रीमान्‌जी! हमें तो यह बड़ी चिन्ता है कि यह मृतकश्राद्ध आपके मतानुसार जैसे पितरों के लिए हानिकारक हैं, वैसे ही श्राद्धभोक्ता तथा कर्त्ता के लिए भी हानिकारक है, जैसेकि—

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम्॥७॥
—[परा० अ० ७, श्लोक ७।—सं०] पराशरस्मृति अ० ७, आपका पुस्तक पृ० ३३५

यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्। तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान्॥१३३॥
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्। नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ॥१८०॥
इतरेषु त्वापांक्तेषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु। मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः॥१८२॥
—मनु० ३

भाषार्थ—बारहवाँ वर्ष प्राप्त होने पर जो कन्या का विवाह नहीं करता उस लड़की के रज को प्रत्येक मास में उसके पितर स्वयं पीते हैं॥७॥

कहिए महाराज! यह भी क्या स्वधारस है जिसे पितर पीते हैं? इसमें पितरों का क्या दोष है, बताने की कृपा करें।

हव्य और कव्य में जितने ग्रासों को वेद का न जाननेवाला खाता है, मरने के पश्चात् कर्त्ता और भोक्ता दोनों उतने ही तपे हुए लोहे के शूल तथा गोलों को निगलता है॥१३३॥

कहिए महाराज! यह क्यों आप अनपढ़ ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन करवाकर अपने तथा उनके लिए काँटे बो रहे हैं? अब भी होश सँभालो!

शराब बेचनेवाले को श्राद्ध में भोजन कराने से विष्ठा, वैद्य को कराने से पीप तथा खून कर्ता भोक्ता और पितरों को मिलता है। पुजारी का खिलाया नष्ट हो जाता है तथा सूदखोर को खिलाया हुआ अप्रतिष्ठा का कारण होता है॥१८०॥

१. चोर, २. पातकी, ३. नामर्द, ४. नास्तिक, ५. ब्रह्मचारी, ६. वेदविद्यारहित, ७. श्वेतचर्मवाला, ८. जुआरी, ९. बहुत यज्ञ करानेवाला, १०. वैद्य, ११. पुजारी, १२. मांस बेचनेवाला, १३. दुकानदार, १४. ग्राम तथा राजा का दूत, १५. भ्रष्ट नखोंवाला, १६. काले दाँतोंवाला, १७. गुरुविरोधी, १८. अग्निहोत्र न करनेवाला, १९. सूदखोर, २०. क्षयरोगी, २१. पशुपालक , २२. परिवेत्ता, २३. पंचयज्ञरहित, २४. ब्राह्मणविरोधी, २५. परिवित्ति, २६. गणों का याजक, २७.

नचार=नृतक, २८. खण्डित ब्रह्मचर्य, २९. शूद्रापति, ३०. पौनर्भव, ३१. काणा ३२. उपपतियुक्त, ३३. नौकरी लेकर पढ़ानेवाला, ३४. नौकर अध्यापक से पढ़नेवाला, ३५. शूद्रशिष्य, ३६. शूद्रगुरु, ३७. बदज़बान, ३८. कुण्ड, ३९. गोलक, ४०. माता-पिता-गुरु से त्यागा हुआ, ४१. पतित सम्बन्धी, ४२. घर जलानेवाला, ४३. मरण के हेतु धनदाता, ४४. कुण्ड का अन्न खानेवाला, ४५. शराब बेचनेवाला, ४६. समुद्रयात्री, ४७. स्तुति करनेवाला, ४८. तेल निकालनेवाला, ४९. झूठी गवाही देनेवाला, ५०. पिता से विवाद करनेवाला, ५१. जुआ खिलानेवाला, ५२. शराबी, ५३. कोढ़ी, ५४. शापदाता, ५५. फरेबी, ५६. रस बेचनेवाला, ५७. धनुषबाण का बनानेवाला, ५८. अग्रेदिधिषु पति, ५९. मित्रदोही, ६०. द्यूतवृत्तिवाला, ६१. पुत्र का आचार्य, ६२. मृगी रोगी, ६३. गण्डमालारोगी, ६४. श्वेतकुष्ठी, ६५. चुग़लखोर, ६६. पागल, ६७. अन्धा, ६८. वेदनिन्दक, ६९. हाथी, बैल, घोड़े का दमन करनेवाला, ७०. नक्षत्रों से कमानेवाला, ७१. पक्षीपालक, ७२. युद्ध का आचार्य, ७३. स्रोतों का भेदक, ७४. स्रोतों को रोकनेवाला, ७५. गृहप्रवेश जीवी, ७६. दूत, ७७. वृक्षारोपक, ७८. कुत्ते से खेलनेवाला, ७९. बाजवृत्ति, ८०. कन्यादूषक, ८१. हिंसक, ८२. शूद्रवृत्ति, ८३. गणयाजक, ८४. आचारहीन, धर्मभीरु, ८५. नित्य याचक, ८६. खेती करनेवाला, ८७. फीलपा रोगी, ८८. महात्माओं से निन्दित, ८९. गडरिया, ९०. भैंसपोषक, ९१. पुनर्भूपति, ९२. प्रेतजीवी, ९३. इन पंक्ति बहिष्कृत, दुष्ट ब्राह्मणों को खिलाया हुआ अन्न दाता, भोक्ता तथा पितरों के लिए चरबी, खून, मांस, मज्जा, हड्डी बन जाता है, ऐसा बुद्धिमानों का कहना है।

—मनु० ३।१३३-१८२

देखिए श्रीमान्जी! आपके मतानुसार भी आजकल श्राद्ध करने में कर्त्ता, भोक्ता तथा पितरों को दुःखसागर में डूबना पड़ता है, क्योंकि श्राद्धों में भोजन करनेवाले प्रायः उपर्युक्त ब्राह्मण ही मिलते हैं, अतः हर प्रकार से मृतकश्राद्ध त्याज्य ही है।

(४२२) प्रश्न—'ये अग्निदग्धा' इत्यादि [अथर्व० १८।२।३५] यहाँ अग्निष्वात्ता के स्थान में अग्निदग्धा पितर स्वर्ग में स्वधा से प्रसन्न होते हैं, लिखा है।—पृ० २८९, पं० ७

उत्तर—यहाँ पर भी अग्निदग्ध नाम अग्निविद्या में चतुर पितरों का है, क्योंकि अग्नि में शरीर ही जलते हैं, जीव नहीं और जले हुए शरीरों का स्वधा, अर्थात् अन्न-जल से प्रसन्न होना भी असम्भव है। फिर मनु में लिखा है कि—

अग्निदग्धाननग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्ताँश्च सौम्याँश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्॥

—मनु० ३।१९९

भाषार्थ—अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्ता और सौम्य—ये सब ब्राह्मणों के ही पितर हैं॥ १९९॥

यदि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध एक ही बात है तो श्लोक में इनका भिन्न-भिन्न पाठ क्यों आया?

यदि जले हुओं का नाम ही अग्निदग्ध और अग्निष्वात्त है तो वे केवल ब्राह्मणों के ही पितर क्यों हैं, सबके क्यों नहीं? श्लोक १९५ में सौम्यों को साध्यों के पितर तथा अग्निष्वात्तों को देवों के पितर लिखा है, किन्तु इस श्लोक में दोनों को ब्राह्मणों का ही पितर लिखा है। क्या ये परस्पर विरोध है या साध्य और देव ब्राह्मणों का ही नाम है?

श्लोक० १९५ में अग्निष्वात्त, मरीचि ऋषि के पुत्रों का नाम बताया है तो क्या मरीचि के पुत्र जले हुए पैदा होते थे और उनका आम लोगों से क्या सम्बन्ध है?

यदि वे ब्राह्मणों के ही पितर हैं तो दूसरे लोग इनका श्राद्ध क्यों करें?

उपर्युक्त हेतुओं से सिद्ध है कि अग्निदग्ध नाम अग्निविद्या में चतुर पितरों का है, जले हुओं

का नहीं, जैसाकि—

ब्रह्मणाः साग्निहोत्राश्च तथैव च निरग्नयः॥ १४॥
बहवो ब्राह्मणास्तत्र परिवव्रुर्युधिष्ठिरम्॥ १५॥

—महा० वन० अ० २४

भाषार्थ—अग्निहोत्र से युक्त तथा अग्नि से रहित ब्राह्मणों ने वहाँ वन में युधिष्ठिर को घेर लिया॥ १४-१५॥

बस, इन्हीं का नाम अग्निदग्ध है। आपने मन्त्र आधा दिया है, अतः भ्रमजनक है, पूरा मन्त्र तथा उसका ठीक अर्थ इस प्रकार है—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्॥

—अथर्व० १८।२।३५

भाषार्थ—जो अग्निहोत्र वा शिल्पविद्या-सम्बन्धी अग्निविद्या में चतुर तथा जो अग्नि से भिन्न जलादि की विद्या में चतुर और विज्ञानी लोग दिव, अर्थात् विज्ञानरूप प्रकाश के बीच में सुखभोग से आनन्दित रहते हैं, हे सर्वज्ञ परमात्मन्! यदि तू उनको अपनावे तो वे अन्न, जल, आनन्द को प्राप्त होते हुए इस यज्ञ का सेवन करें॥ ३५॥

ब्राह्मणों के पेट को लैटरबक्स बनाने का तो इस मन्त्र में संकेतमात्र भी नहीं है, अतः सिद्ध है कि जो अन्न, बल तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करनेवाले ज्ञानी, महात्मा, योद्धा लोग हैं उन्हीं का नाम पितर है तथा उन्हें श्रद्धापूर्वक भोजन कराने का नाम श्राद्ध तथा तृप्त करने का नाम तर्पण है।

मृतकश्राद्ध की कल्पना वेदविरुद्ध, नवीनकल्पित है, जैसाकि—

निमि का पुत्र श्रीमान् मर गया तो निमि ने शोक से व्याकुल होकर अपने पुत्र का श्राद्ध किया और फिर पछताने लगा कि—

तत् कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः। पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत्॥ १६॥
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम्। कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति॥ १७॥

—महा० अनु० अ० ९१

भाषार्थ—वह श्रेष्ठ मुनि स्वयं धर्मविरुद्ध यह काम करके पीछे से पश्चात्ताप से तपायमान हुआ चिन्ता करने लगा कि॥ १६॥ मैंने पूर्वमुनियों से न किया हुआ यह क्या काम कर लिया? कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण लोग मुझे शाप से भस्म कर दें॥ १७॥

मुनि का मृतकश्राद्ध करके पछताना स्पष्ट सिद्ध करता है कि मृतकश्राद्ध पीछे की वेदविरुद्ध, मिथ्या कल्पना है।

अतः **'ये निखाता'**, **'आयन्तु'**, **'ये चेह पितरः'**, **'ये अग्निष्वात्ताः'** एवं **'ये अग्निदग्धा'**— इन पाँचों मन्त्रों से जीवित पितरों का श्राद्ध ही सिद्ध होता है, क्योंकि मरने के पीछे न तो जीव गाड़े जाते हैं और न पड़े रह जाते हैं, न फूँके जाते हैं और न जीवों को बुलाकर भोजन कराया जा सकता है। रहा शरीर, वह जड़ होने से न भोजन कर सकता है, न आ सकता है, न उपदेश और रक्षा कर सकता है, अतः मन्त्रों का हमारा किया हुआ अर्थ ही ठीक है। और जीवित पितरों का हमारे यज्ञ में आना, भोजन करना, उपदेश करना तथा रक्षा करना सम्भव हो सकता है, अतः जीवित पितरों का श्राद्धतर्पण ही वेदानुकूल तथा युक्तियुक्त है, मृतकों का नहीं।

(४२३) प्रश्न— स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः॥ ७८॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥ —अथर्व० १८।४।७८ से ८०

इन मन्त्रों में पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग में रहनेवाले पितरों के लिए स्वधा देने का वर्णन है। जीवित पितर अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग में रह ही नहीं सकते। इन लोकों में तो शरीर छोड़ने पर ही प्राणी जाते है। इस कारण श्राद्ध इन तीन मन्त्रों से भी मृतक पितरों का ही सिद्ध होता है। '**पृथिवीषद्भ्यः**' से भी मृतक ही लिये जावेंगे (१) मृतकों के पृथिवी पर जन्म धारने, (२) अन्तरिक्ष तथा स्वर्गवाले पितरों के साहचर्य, (३) स्वधा लेकर अग्नि में छोड़े जाने से।

—पृ० २८९, पं० १८

उत्तर—आप मानते हैं कि शरीर छोड़ने पर प्राणी अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग में जाते हैं तो शरीर तो रह गये पृथिवी पर और जीव चले गये अन्तरिक्ष और स्वर्ग में, जीवों के साथ माता-पिता आदि सम्बन्ध है नहीं, क्योंकि जीव अनुत्पन्न अनादि है, जैसेकि—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ —गीता० २।२०

मातापितृसहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च। अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ ८५॥
अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्। न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम॥ ८६॥
न तेषां भवता कार्यं न कार्यन्तव तैरपि। स्वकृतैस्तानि जातानि भवाँश्चैव गमिष्यति॥ ८७॥

—महा० शान्ति० अ० ३२१

भाषार्थ—यह जीव न पैदा होता है, न कभी मरता है और 'न यह कभी होकर फिर नहीं होगा' ऐसा भी नहीं है। यह अज, नित्य, सदा रहनेवाला तथा पुराना है। शरीर के नाश से इसका नाश नहीं होता॥ २०॥ हज़ारों माता-पिता, सैकड़ों पुत्र-स्त्री होंगे तथा हो चुके—वे किसके और हम किसके, अर्थात् कोई किसी का नहीं॥ ८५॥ मैं एक हूँ, मेरा कोई नहीं है, न मैं अन्य किसी का हूँ। वह मुझे दिखाई नहीं देता, जिसका मैं हूँ, न वह दीखता है जो मेरा हो॥ ८६॥ न उसका आपसे काम है, न आपका उनसे काम है। अपने कर्मों से वे पैदा हुए और आप भी कर्मानुसार चले जाएँगे॥ ८७॥

फिर स्वधा किनके लिए पहुँचाई जा रही है? वह भी ब्राह्मणों के द्वारा नहीं, अपितु अग्नि के द्वारा, तथा दूसरे के किये कर्म का फल दूसरे को मिलता नहीं, जैसाकि—

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते। करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते॥ २२॥

—महा० शान्ति० अ० २९०

भाषार्थ—यह जीव दूसरे के पुण्य तथा पाप का सेवन नहीं करता; जैसा कर्म करता है वैसे ही फल को प्राप्त होता है॥ २१॥

अतः अपकी मृतक पितरों को स्वधा पहुँचाने की सारी कल्पना ही निर्मूल तथा मिथ्या है। ये मन्त्र भी जीवित पितरों को ही अन्नादि प्रदान करने की आज्ञा देते हैं और इनके वास्तविक अर्थ ये हैं—

पृथिवी पर विराजनेवाले पालक माता-पितादि पूजनीय पुरुषों को अन्नादि पुष्टिकारक पदार्थ प्राप्त हों॥ ७८॥

(२) अन्तरिक्ष में विराजनेवाले, अर्थात् विमानों द्वारा आकाश में घूमनेवाले पालक, रक्षक पुरुषों को अन्नादि पदार्थ हों॥ ७९॥

(३) मोक्षमार्ग में चलनेवाले ज्ञानी पूज्य गुरुजनों को अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों॥ ८०॥

ये तीनों मन्त्र जीवित पितरों की सेवा की ही आज्ञा देते हैं (१) स्वधा के अग्नि में छोड़ने का मन्त्रों में वर्णन न होने से। (२) अन्तरिक्ष में विमानों द्वारा तथा दिवि अर्थात् मोक्षमार्ग में जीवित पितरों के वर्त्तमान होने से। (३) जीवों के साथ पितृत्व-सम्बन्ध न होने तथा मृतशरीरों के अन्नादि ग्रहण न करने से।

श्रीमान्‌जी! आपके ग्रन्थों के अनुसार भी दूसरी योनि में गये पितरों को अन्न नहीं मिलता। 'ऋषिपञ्चमी' की कथा में वर्णन है कि विदर्भ देश का श्येनजित् राजर्षि राजा था। उसके राज्य में सुमित्र नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम जयश्री था। वह स्त्री ऋतु-समय में बरतनों को छूती रहती थी। कुछ दिनों के पीछे वे दोनों मर गये। ऋतु-सम्पर्क-दोष से सुमित्र का बैल का जन्म तथा जयश्री का कुतिया का जन्म हुआ। सुमित्र के बेटे का नाम सुमति तथा पुत्रवधू का नाम चन्द्रावती था। वे बैल तथा कुतिया अपने बेटे के ही घर में रहते थे। एक दिन सुमति के यहाँ पिता का श्राद्ध था। सुमति बैल को लेकर खेत में हल जोतने गया। चन्द्रावती ने खीर बनाई। उसमें साँप ज़हर डाल गया। कुतिया ने देख लिया। कुतिया ने इस विचार से कि इसे खाकर ब्राह्मण मर जाएँगे, खीर में मुँह डाल दिया। चन्द्रावती ने उस कुतिया को जलती लकड़ी से इतना मारा कि उसकी कमर टूट गई। भोजन फिर बनाया गया। ब्राह्मणों को खिला दिया, किन्तु कुतिया को जूठन भी न दी। आधी रात को कुतिया बैल के पास गई और अपनी सारी रामकहानी सुनाई और कहा कि मैं भूख से मरी जा रही हूँ। आज जूठा टुकड़ा भी नहीं मिला। यह सुनकर बैल ने कहा कि—यह पूर्वकर्मों का फल है। देख तेरे पाप से मेरी कैसी गति हो रही है कि—

किं करोमि अशक्तोऽहं भारवाहत्वमागतः। अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलं दिनम्॥ ४०॥
मारितश्चात्मजेनाहं मुखं बद्ध्वा बुभुक्षितः। वृथा श्राद्धं कृतं तेन जाताऽद्य मम कष्टता॥ ४१॥

—भविष्य० उत्तर० अ० ७८, भविष्योत्तरपुराणोक्त ऋषिपञ्चमीकथा

भाषार्थ—मैं क्या करूँ, बेबस हूँ। मैं बोझ ढोनेवाला बैल बन गया। आज सारा दिन अपने ही खेत में हल वाहता रहा हूँ और पुत्र ने मेरा मुख बाँधकर मुझे खूब मारा। मैं भी बहुत भूखा हूँ। इसने वृथा ही श्राद्ध किया है, जिससे मुझे कष्ट हुआ है।

यही कथा हूबहू पद्मपुराण उत्तरखण्ड० ६, अ० ७८ में विद्यमान है।

इस कथा से स्पष्ट सिद्ध है कि श्राद्धों में भोजन खिलाया हुआ मृत पितरों को नहीं मिलता, अपितु ब्राह्मण ही डकार जाते हैं।

(४२४) प्रश्न—जिस मनुष्य के सन्तान न होती हो उसको सन्तान उत्पन्न करने के हेतु श्राद्ध करना लिखा है। इस श्राद्ध में तीन पिण्ड होते हैं, मध्यम पिण्ड को पत्नी खाती है। इसपर गृह्यसूत्र लिखता है कि—

आधत्त पितरो गर्भमिति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नीयात्।

आचार्य तो **'आधत्त पितरो गर्भम्'** इस मन्त्र को पढ़े और श्राद्ध करनेवाले की पत्नी मध्यम पिण्ड का भक्षण करे। इसकी पुष्टि मनु० ३।२६२-२६३ में भी की गई है कि ऐसा करनेसे आयुवाले, यशवान्, बुद्धिमान्, धनी, सात्त्विक, धर्मात्मा पुत्र को पैदा करती है। **'आधत्त पितरो गर्भम्'** [यजुः० २।३३] इस मन्त्रवाले श्राद्ध में पितरों से यह प्रार्थना मृतक पितरों से तो कर सकते हैं, किन्तु जीवितों से नहीं कर सकते। —पृ० २९०, पं० ९

उत्तर—धन्य हो महाराज! मृतक पितरों को मांस आदि भोजन से तृप्त करते-करते अब उनसे सन्तान पैदा कराने का काम भी लेने लगे? हमें यह पता नहीं था कि मृतक पितरों की तृप्ति इस प्रकार से भी की जाती है और बात भी ठीक है, भोजन से तो क्षुधा-निवृत्ति ही हो सकती है, सब प्रकार की तृप्ति भोजनमात्र से थोड़े ही हो सकती है। क्यों साहब! यह काम जीवित पितरों

से ही क्यों न ले-लिया गया? सम्भव है मरने के पश्चात् पितर इस कार्य में अधिक निपुण हो जाते हों। कहिए महाराज! भोजन की भाँति यह काम भी पितर ब्राह्मणों द्वारा ही करते हैं या इस काम में यजमान-पत्नी का सीधा ही सम्बन्ध पितरों से हो जाता है? या महीधर की विधि-अनुसार किसी घोड़े आदि पशु को ही पितर मानकर उससे यह काम लिया जाता है? जैसाकि सन्तान के अभाव में कौसल्या के साथ ऐसा किया गया। या वह मृतक पितर ही स्वयं गर्भाधान में यजमान की सहायता करता है जैसाकि (महा० आदि० अ० १२१ श्लो० ७-७५) में व्युषिताश्व ने मरने के पश्चात् काक्षीवती में सात पुत्र स्वयं गर्भाधान करके पैदा किये। या केवल पिण्ड खाने से ही गर्भ हो जाता है। वा यजमान को फिर भी कोई विशेष यत्न करना ही पड़ता है। इस वेदविरुद्ध, अश्लील लेख को मानते हुए आपको शर्म तो नहीं आती?

श्रीमान्‌जी! यह मन्त्र गर्भाधान का नहीं है, अपितु यह मन्त्र वेदारम्भ-संस्कार का है। आपके गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति ने वेदविरुद्ध कल्पना करके इस मन्त्र को गर्भाधान में लगाया है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥ —यजुः० २।३३

भाषार्थ—हे विद्या के देनेवाले पितर लोगो! इस कुमार ब्रह्मचारी की गर्भ के समान रक्षा करके उत्तम विद्या दीजिए कि जिससे वह विद्वान् होके जैसे पुष्पों की माला धारण करके मनुष्य शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही यह भी विद्या पाकर सुन्दरतायुक्त होवे और जिस प्रकार इस संसार में मनुष्यों की विद्यादि सद्‌गुणों से उत्तम कीर्ति और सब मनुष्यों को सुख प्राप्त हो सके वैसा प्रयत्न आप लोग सदा कीजिए॥ ३३॥

आपको गर्भ शब्द देखकर भ्रम हुआ है, किन्तु गर्भ शब्द केवल गर्भाधान में ही नहीं आता, अपितु लाक्षणिक रूप से कई स्थानों में प्रयुक्त होता है, जैसाकि—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे॥ —यजुः० १३।४

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ —अथर्व० ११।५।३

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥ —मनु० २।१७०

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम्॥ ६॥ —महा०उद्यो०अ० ४४

भाषार्थ—वह परमात्मा प्रकाशमान् सूर्य-चन्द्रादि का धारण करनेवाला है॥ ४॥ आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रखके तीन रात्रिपर्यन्त आचार की शिक्षा कर उसके भीतर गर्भरूप विद्या-स्थापन करने के लिए उसको धारण कर उसको पूर्ण विद्वान् कर देता है। जब वह ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उसको देखने के लिए सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर बड़ा मान्य करते हैं॥ ३३॥ वहाँ जो इस ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत से चिह्नित ब्रह्मजन्म है वहाँ इसकी माता गायत्री है और पिता आचार्य है॥ १७०॥ जो इस संसार में आचार्य की योनि में प्रवेश करके गर्भ होकर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, वे यहाँ ही शास्त्रों के कर्त्ता हो जाते हैं और शरीर छोड़कर परमयोग को प्राप्त होते हैं॥ ६॥

आशा है कि अब आप गर्भ शब्द को ही देखकर मृतक पितरों से गर्भ करवाने के व्यर्थ झंझट में किसी पतिव्रता देवी को डालने का वेदविरुद्ध, युक्तिशून्य, उपहासयोग्य कार्य न करेंगे।

(४२५) प्रश्न—'उदन्वती' इत्यादि [अथर्व० १८।२।४८] इस मन्त्र में पितरों के रहने

के उदन्वती, पीलू तथा प्रद्यौ तीन स्थान बताये हैं। जो पुण्यात्मा पितर हैं वे पितृ तथा स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं और जिनका पुण्य कुछ कम है वे याम्य गति को पहुँचकर कर्मानुसार अनेक योनियों में चले जाते हैं। जो पितर पितृलोक प्रभृति लोकों में निवास करते हैं, वेद ने उनका आवाहन लिखा है और जो पितर कर्मानुसार योनियों में गये हैं उनको ईश्वर द्वारा श्राद्धकर्म का फल उन्हीं योनियों में पहुँचता है। जब श्राद्ध में बुलाये जानेवाले पितर '**प्रद्यौ**'=तृतीय आकाश में रहते हैं और यही श्राद्ध में आकर भोजन करते हैं तो फिर जीवित पितरों का श्राद्ध कैसे माना जावेगा? —पृ० २९१, पं० ११

उत्तर—आपके लेखानुसार उदन्वती उस आकाश का नाम है जहाँ तक जल के परमाणु जा सकते हैं और पीलू उस आकाश का नाम है जहाँ तक अग्नि, वायु के परमाणु जा सकते हैं। प्रद्यौ इन दोनों से ऊपर है जहाँ पितर निवास करते हैं और वही श्राद्धों में आते हैं। कहिए श्रीमान्‌जी! जब प्रद्यौ में कोई भी परमाणु नहीं जा सकते तो पितरों के शरीर वहाँ पर किस वस्तु के हैं? यदि पितरों के शरीर हैं ही नहीं तो फिर उनका आना-जाना, खाना-पीना मिथ्या कल्पना ही हुई। आप पीछे मान आये हैं कि पितरों के शरीर अग्नि, जल, वायु के होते हैं। जब प्रद्यौ में किसी परमाणु की गति ही नहीं तो फिर शरीर कैसे? फिर आप लिखते हैं कि पुण्यात्मा पितर पितृलोक तथा स्वर्गलोक में जाते हैं, तो क्या प्रद्यौ आकाश का नाम ही पितृलोक तथा स्वर्गलोक है या ये दोनों लोक पृथक् हैं? यदि ये दोनों लोक पृथक् हैं तो आपका प्रथम लेख कि 'पितर प्रद्यौ आकाश में रहते हैं' ग़लत सिद्ध हुआ और यदि एक ही हैं तो वे लोक तथा वहाँ का सामान किस वस्तु का बना हुआ है जबकि वहाँ किसी वस्तु के परमाणु तो पहुँच ही नहीं पाते? अतः आपकी प्रथम कल्पना तो सर्वथा निर्मूल है। रही दूसरी बात कि थोड़े पुण्यवाले जन्म लेते हैं और ईश्वर श्राद्ध का फल उनको उन्हीं योनियों में पहुँचा देता है, सो श्रीमान्‌जी! क्या पितरों को वही वस्तु मिलती है जो ब्राह्मणों को खिलाई जाती है या उनकी योनियों के अनुकूल खुराक बनकर पहुँचती है? यदि कहो कि वही वस्तु पहुँचती है तो यदि पितर शेर आदि की योनि में हों और ब्राह्मणों को खिलाई गई खीर-पूरी-सब्ज़ी आदि या पितर गौ आदि की योनि में गये हों और ब्राह्मणओं को खिलाया गया हो मांस तो इन दोनों सूरतों में विपरीत भोजन से पितर भूखे ही रहेंगे। और यदि वही नहीं पहुँचता अपितु उसके फल से तदनुकूल पदार्थ मिलता है तो यह कल्पना निरर्थक हो जाती है कि हमारे पितरों को फलाँ-फलाँ वस्तु भाती थी वही वस्तु देनी चाहिए और भी लिखा है कि—

हविष्यान्नेव वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः॥ ३७॥
ऐणारौरववाराहशाशमांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्यापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः॥ ३८॥
—गरुड० आचार० अ० ९९

भाषार्थ—हवनयोग्य अन्न से एक मास, खीर से एक वर्ष तथा मछली, हरिण, औरभ्र पक्षी, बकरा, पार्षत, ऐणेय, रौरव, खरगोश के मांस से नम्बरवार एक-एक मास अधिक पितरों की तृप्ति होती है॥ ३७-३८॥

यदि दी हुई वस्तु नहीं मिलती, फल मिलता है तो इन वस्तुओं का विशेष विधान क्यों किया गया है और फिर गरुड में तो यह भी लिखा है कि—

न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा। स्वयं कृतेन गच्छन्ति स्वयं बद्धाः स्वकर्मणा॥ २७॥
—गरुड० आचार० अ० ११३

भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुतिष्ठति। यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्॥ ५४॥
—गरु० आचार० अ० ११३

क्व माता क्व पिता मूढ क्व जाया क्व सुतः सुहृत्।
स्वकर्मोपार्जितं भुंक्ष्व मूर्ख याताश्चिरं पथि॥ ११५॥

—गरुड० प्रेत० अ० ५

अधिकारो यदा नास्ति यदि नास्ति च निश्चयः।
जीविते सति जीवाय दद्याच्छ्राद्धं स्वयं नरः॥ १०॥

—गरुड० प्रेत० अ० ८

आत्मनश्च शुभं कर्म कर्त्तव्यं पारलौकिकम्॥ ३४॥
विमुक्तः सर्वदु:खेभ्यो येनाञ्जो दुर्गतिं तरेत्।
भ्रातरः कस्य के पुत्राः स्त्रियोऽपि स्वार्थकोविदाः॥ ३५॥
न कार्यस्तेषु विश्रम्भः स्वकृतं भुज्यते यतः। गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः॥ ३६॥
शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत्। तस्मादाशु त्वया सम्यगात्मनः श्रेय इच्छता॥ ३७॥
अस्थिरेण शरीरेण कर्त्तव्यञ्चौर्ध्वदेहिकम्॥ ३८॥ —गरुड० प्रेत० अ० ९

भाषार्थ—न पिता के कर्म से पुत्र, न पुत्र के कर्म से पिता अपितु अपने किये हुए कर्मों से स्वयं बँधे हुए जाते हैं॥ २७॥ पूर्व किया कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है, जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को प्राप्त होता है॥ ५४॥ हे मूढ! कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ स्त्री-पुत्र और मित्र हैं? हे मूर्ख! परलोक यात्रा मैं जाते हुए तू ही अपने कर्मों का फल भोग॥ ११५॥ जब अधिकार न हो और यदि निश्चय भी न हो तो जीते हुए ही स्वयं मनुष्य को अपने लिए श्राद्ध कर देना चाहिए॥ १०॥ परलोक के लिए स्वयं शुभकर्म करना चाहिए, जिससे जीव सर्वदु:खों से मुक्त होकर दुर्गति को तर सके। भाई किसके हैं, पुत्र कौन हैं, स्त्रियाँ भी स्वार्थ में चतुर हैं॥ ३४-३५॥ उनमें विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य स्वयं किये कर्म को भोगता है। धन घर में ही रह जाते हैं, बन्धु लोग श्मशान में रह जाते हैं॥ ३६॥ शरीर लकड़ियों में रह जाता है, किया हुआ पाप-पुण्य ही साथ जाता है॥ ३७॥ इसलिए तुझे शीघ्रतया अपनी आत्मा के कल्याण की इच्छा से॥ ३७॥ इस अस्थिर शरीर से परलोकार्थ कर्म करने चाहिएँ॥ ३८॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है और एक-दूसरे के कर्म का फल एक-दूसरे को नहीं मिलता, यही परमात्मा का नियम है, परमात्मा कर्मों का फल कर्म करनेवालों को देता है, एक के कर्म का फल दूसरे को नहीं देता। यदि ऐसा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाए, अतः मृतक पितरों के बारे में आपकी सारी कल्पना मिथ्या है। इस मन्त्र में आकाश के तीन विभागों का वर्णन नहीं है, अपितु पृथिवी के तीन विभागों का वर्णन है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा। तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥

—अथर्व० १८।२।४८

भाषार्थ—सबसे नीचे दर्जे की पृथिवी भोगमय तामस लोगों की रिहायश के कारण उदन्वती कहलाती है। बीच के दर्जे की भूमि कर्मफलसंयुक्त राजस् पुरुषों के निवास के कारण पीलुमती कहाती है। तीसरे दर्जे की सबसे उत्तम पृथिवी सात्त्विकवृत्तिवाले पालक, पूज्य, गुरु, माता-पिता, साधु-महात्माओं के निवास के कारण प्रद्यौ कहलाती है॥ ४८॥

इस मन्त्र में भी जीवित पितरों का ही वर्णन है मृतकों का नहीं, क्योंकि इसमें आकाश-निवासी पितरों का वर्णन नहीं अपितु पृथिवी-निवासी जीवित पितरों का वर्णन है॥

श्रीमान्‌जी! आपके सिद्धान्तानुसार भी श्राद्ध करने से कोई लाभ नहीं है, जैसेकि—

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ८॥
स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम्॥ २०॥ —गरुड० प्रेत० अ० १३
देहान्तरं परिप्राप्य स्वहस्तेन कृतं च यत्॥ ७॥
धनं भूमिगतं यद्वत् स्वहस्तेन निवेशितम्। तद्वत् फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर॥ ८॥
तस्मात् सर्वं प्रकुर्वीत चंचले जीविते सति। गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि॥ १२॥
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि॥ १३॥ —गरुड० प्रेत० अ० १४

भाषार्थ—ग्यारहवें दिन जिस प्रेत का बैल न छोड़ा जाए वह प्रेत-योनि में स्थिर हो जाता है, चाहे सैकड़ों श्राद्ध भी करो॥ १४॥ अपने हाथ से दिये हुए दान का मरने के पीछे अक्षय फल होता है॥ २०॥ दूसरे जन्म को प्राप्त होकर अपने हाथ से जो कर्म किया हुआ है॥ ७॥ जैसे अपने हाथ से रक्खा हुआ, भूमि में दबा हुआ धन फल देता है॥ ८॥ इसलिए सब-कुछ इस चञ्चल जीवन के रहते हुए करना चाहिए; दानरूप मार्ग-भोजन लेकर जीव दीर्घमार्ग में सुख पाता है॥ १२॥ वरना जीव ऐसे ही दुःख पाता है जैसे मुसाफ़िर खर्च के बिना रास्ते में दुःख उठाता है॥ १३॥

अतः स्पष्ट सिद्ध है कि अपना किया कर्म ही परलोक में काम आता है, अन्य के कर्म का फल अन्य को नहीं मिल सकता, अतः मृतकश्राद्ध निरर्थक तथा जीवितश्राद्ध सार्थक है।

(४२६) प्रश्न—'इममोदनम्' इत्यादि अथर्व० [४।३४।८] इस मन्त्र में पितरों को पहुँचाने तथा तृप्त करने के लिए ब्राह्मणों को भी भोजन कराना लिखा है।—पृ० २९१, पं० २५

उत्तर—इस मन्त्र में न तो श्राद्ध शब्द है और न ही पितर शब्द है। आपके अर्थों के अनुसार भी यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मणों को कराया हुआ भोजन मृत पितरों की तृप्ति करता है, अपितु आपके अर्थ से भी भोजन करानेवाले को ही फल की प्राप्ति लिखी है, जैसाकि 'और कामधेनु के समान मुझे समस्त मनोवांछित फल दे' इसमें हमें भी मतभेद नहीं है, क्योंकि विद्वान्, ज्ञानी ब्राह्मण ही ज्ञान द्वारा रक्षा करने के कारण स्वयं साक्षात् पितर हैं, उनको भोजन आदि से प्रसन्न करने से वे हमारी ज्ञान द्वारा रक्षा करेंगे। फिर इससे तो जीवित श्राद्ध ही सिद्ध हुआ, मृतक नहीं। वास्तव में इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है। आपको ओदन शब्द से भ्रम हुआ है। ओदन शब्द का केवल अन्न ही अर्थ नहीं है और भी अर्थ हैं—

परमेष्ठी वा एषः। यदोदनः। —तै० १।७।१०।६
प्रजापतिर्वा ओदनः॥ —शथ० १३।३।६।७
रेतो वा ओदनः॥ —शथ० १३।१।१।४

भाषार्थ—परमेष्ठी का नाम ओदन है (तै०)। प्रजापति का नाम ओदन है (शत०)। वीर्य का नाम ओदन है (शत०)।

इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

इममोदनं नि दधे ब्रह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु॥
—अथर्व० ४।३४।८

भाषार्थ—मैं इस सर्वव्यापक, सुखमय, मोक्षरूप, समस्त लोकों को जीतनेवाले ओदन नाम प्रजापति ब्रह्म को ब्राह्मणों, अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों में उपदेश, करता हूँ। अमृत से समस्त मुक्तात्माओं को तृप्त करनेवाला वह ओदन प्रजापति का स्वरूप मुझ मुमुक्षु के लिए नष्ट न हो, प्रत्युत मुझ मुमुक्षु के लिए वह प्रजापति प्रमेष्ठी ब्रह्म सब प्रकार की कामधेनु होकर समस्त कामनाओं को

पूर्ण करनेहारी हो॥८॥

कहिए महाराज! जब आप मानते हैं कि गङ्गा में अस्थिप्रवाह से मृतक का मोक्ष हो जाता है तो फिर श्राद्धों का अन्न खाने के लिए पितरों को क्यों कष्ट दिया जाता है? क्या उसके मोक्ष में सन्देह रहता है? फिर आप आचार्य निवेड़ना, पीपल पर पानी का घड़ा लटकाना, बरनी करवाना आदि अनेक मोक्ष के उपाय करते हैं तो क्या इन उपायों से पितरों का मोक्ष नहीं होता जो फिर भी श्राद्ध की आवश्यकता रहती है? और फिर गरुड में तो लिखा है कि—

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुराकृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥

—गरु० प्रेत० अ० १५।८९

भाषार्थ—सुख-दुःख का कोई दाता नहीं है। दूसरा सुख-दुःख देता है—ऐसा सोचना मूर्खता है। जीव सदा पूर्व किये कर्म भोगता है। हे जीव! तूने जैसा किया है उसे भोग॥८९॥

जब दूसरे से सुख-दुःख मिलता ही हीं तो मृतकश्राद्ध व्यर्थ है और फिर आपको भोजन पहुँचाने की आवश्यकता ही क्या है, क्योंकि—

श्लेष्ममूत्रपुरीषोत्थं शरीराणां मलैः सह। उच्छिष्टैश्चैव चान्यैश्च प्रेतानां भोजनं भवेत्॥५५॥
गृहाणि चाप्यशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च। मलिनानि प्रसूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५६॥
भर्तृहीना च या नारी परवीर्यं निषेवते। बीजं मूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्तु वै॥६१॥
यत्स्त्रीरजो योनिगतं प्रेता भुञ्जन्ति तत्तु वै॥६२॥ —गरुड० प्रेत० अ० २२

भाषार्थ—बलग़म, मूत्र, पाखाना, शरीर के मल, नाक, कान, आँख, मुख, त्वचा से पैदा हुए उच्छिष्ट, ये प्रेतों के भोजन हैं॥५५॥ अशुद्ध घर, जो कूड़े से भरे हों, प्रसूत स्थान, मलिन स्थान, वहाँ बैठकर प्रेत भोजन करते हैं॥५६॥ जो स्त्री पति से हीन होकर दूसरे के वीर्य का सेवन करती है उस मूत्र से मिले हुए वीर्य का प्रेत भोजन करते हैं॥६१॥ जो स्त्रीरज योनि में वर्त्तमान हो उसका भोजन प्रेत करते हैं॥६२॥

जब प्रेतों का यही भोजन है तो वे इस भोजन की स्वयं तलाश कर लेंगे, या आपको ही तलाश करके पहुँचाना पड़ेगा, सोचकर निश्चय कर लीजिए। शरम, शरम, अति शरम!

(४२७) प्रश्न—'यं ब्राह्मणे' इत्यादि [अथर्व० ९।५।१९] इस मन्त्र में अग्नि से प्रार्थना है कि जो अन्न हमने ब्राह्मणों को खिलाया है वह हमारे पितरों को पहुँचाओ। **'यस्यास्येन'** इत्यादि [मनु० १।९५] में भी लिखा है कि ब्राह्मण के मुख से देवता हव्य तथा पितर कव्य खाते हैं। ब्राह्मणों को पितृ-अन्न का खिलाना और उनके द्वारा उस अन्न का फल पितरों को मिलना जो वेद ने बतलाया है, यह मृतकश्राद्ध को ही सिद्ध करता है। —पृ० २९२, पं० ७

उत्तर—इस मन्त्र में न तो कहीं पितर शब्द है और न ही इस मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण का किया भोजन मृत पितरों को मिलता है, और आपका अर्थ भी सर्वथा कल्पित है। आप भोजन तो परोस रहे हैं ब्राह्मणों के आगे और पहुँचाने की प्रार्थना कर रहे हैं अग्नि से। भला! ब्राह्मण के खाये हुए को अग्नि कैसे पहुँचावेगा? भोजन बनाने में जो बिन्दु उड़े क्या वे भी पितरों को पहुँच जाते हैं? यदि वे बिना ब्राह्मणों के ही पितरों को पहुँच जाते हैं तो भोजन भी बिना ब्राह्मणों के पहुँच जाता होता। आप **'उदन्वती'** मन्त्र के अर्थ में लिखते हैं कि 'जो पितर स्वर्ग में जाते हैं उनका आवाहन वेद ने लिखा है', जब वे पितर स्वयं आकर भोजन करते हैं फिर उनको ब्राह्मणों द्वारा भोजन क्यों पहुँचाया जाता है? यह आपके लेख में परस्पर विरोध है, अतः आपका अर्थ सर्वथा कल्पित है। मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः सङ्गमने पथीनाम्॥

—अथर्व० ९।५।१९

भाषार्थ—जिस अज आत्मा को परमेश्वर ने ब्रह्म=वेद के विद्वान्, ब्रह्मज्ञानी में रक्खा है और जिस आत्मा को उस प्रभु ने सर्वसाधारण प्राणियों में रक्खा है, और उस अजन्मा आत्मा के ओदनरूप प्राणों के जो विशेष सामर्थ्य हैं, हे परमात्मन्! उस सबको पुण्य के उस परम मोक्षलोक में और समस्त प्राणशक्तियों के एकत्र प्राप्ति से हमें प्राप्त करने की अनुमति देना, अर्थात् मोक्षधाम में भी ये सब सामर्थ्य हमारे पास रहें जिससे मोक्ष के परम सुख का हम स्वतन्त्रता से रस ले सकें॥ १९॥

रही मनु की बात, सो आपके समझने की भूल है। यहाँ आस्य के अर्थ मुख नहीं, अपितु उपदेश है, क्योंकि ब्राह्मण के उपदेश से ही लोग देवयज्ञ और पितृज्ञ करते हैं। आपके अर्थ ग़लत हैं, क्योंकि आपके मतानुसार भी पितर ब्राह्मण के मुख से भोजन नहीं करते, अपितु स्वयं आकर अपने मुख से करते हैं या दूसरी योनियों में भी अपने ही मुख से करते हैं। हव्य तो हवन करने से देवों को पहुँचता है जैसेकि—

होमैर्देवान् यथाविधि॥ —मनु० ३।८१

होमों से यथाविधि देवों की पूजा करे॥ ८१॥

तो क्या ब्राह्मण के मुख में हवन किया जा सकता है? अतः आपका अर्थ ग़लत और हमारा ठीक है ब्राह्मण के उपदेश से ही होम करके देवों को और श्राद्धों से जीवित पितरों की सेवा से पितरों को प्रसन्न करते हैं और उपदेश मुख से होता है, अतः यहाँ पर उपदेश के अर्थों में ही लाक्षणिक रूप से 'आस्य' शब्द आया है, अतः सिद्ध है कि मृतक पितरों की कल्पना तथा ब्राह्मणों द्वारा उनकी तृप्ति वेदविरुद्ध तथा मिथ्या है।

यदि ब्राह्मणों के भोजन से मृतकों की तृप्ति हो जाती तो राजा श्वेत को अन्नदान के लिए स्वर्ग से वापस क्यों आना पड़ता, जैसाकि—भविष्यपुराण में आता है कि—श्वेत नाम का एक राजा था। उसने बहुत-से यज्ञ तथा युद्ध किये तथा दान दिये। वह मरकर स्वर्ग में गया—

स च नित्यं वितानाग्र्यादवतीर्य महीतलम्। स्वमांसान्यत्ति कौन्तेय पूर्वं त्यक्त्वा कलेवरम्॥ १६॥

वह हमेशा स्वर्ग से उतरकर पृथिवी पर अपना मांस खाता था। अपना पहला शरीर छोड़ आता था॥ १६॥ वह कभी ब्रह्मा के पास गया और पूछा कि स्वर्ग में मुझे भूख बड़ा कष्ट देती है, जिससे मुझे अपना मांस खाना पड़ता है। ब्रह्मा ने कहा—हे श्वेत!

नाशनं भवता दत्तं यद् द्विजेभ्यो नराधिप॥ २१॥
अनन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते॥ २२॥
महीं गत्वा महाराज कुरुष्व वचनं मम॥ २३॥
विरिञ्चेर्वचनाद् गत्वा त्वरायुक्तो महीतलम्।
अगस्त्यं भोजयामास भक्त्या भरतसत्तम॥ २४॥
श्वेतस्तृप्तो गतः स्वर्गं दत्त्वान्नं दक्षिणायुतम्॥ २७॥ —भविष्य० उत्तर० अ० १६९

आपने ब्राह्मणों को भोजन नहीं दिया॥ २१॥ यह आप अन्नदान न करने का फल भोग रहे हैं॥ २२॥ हे महाराज! पृथिवी पर जाकर मेरे वचनानुसार करो॥ २३॥ ब्रह्मा के कहने के अनुसार उसने शीघ्रता से पृथिवी पर जाकर भक्ति से अगस्त्य को भोजन करवाया॥ २५॥ दक्षिणायुक्त अन्नदान करके तृप्त होकर श्वेत स्वर्ग को गया॥ २७॥

इस कथा से सिद्ध है कि श्वेत का किया कर्म श्वेत को मिला, अन्य का किया नहीं, अतः कर्म का फल कर्त्ता को ही मिलता है। अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं मिलता।

(४२८) प्रश्न—'पिता प्रेतः' इत्यादि काठकीय श्रौतसूत्र में तथा **'पिता यस्य'** इत्यादि मनु ३।२२१ में भी मृत पितरों के श्राद्ध की ही विधि लिखी है। —पृ० २९३, पं० १

उत्तर—काठकीय श्रौतसूत्र तथा मनु के ये दोनों ही लेख वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण हैं, क्योंकि वेद जीवित पितरों की सेवा का ही वर्णन करते हैं, मृतकों की सेवा का नहीं, जैसाकि—

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत इहोर्जं दधात॥ —यजुः० १९।६३

भाषार्थ—हे पितरो! हवि देनेवाले मनुष्य यजमान के लिए आप धन देवें। आप कैसे हैं? लाल रंग के ऊन के आसनों पर बैठे हुए। और हे पितरो! आप पुत्र और यजमानों से उस धन का धारण करो, और वे आप इस संसार में हमारे यज्ञ में रस धारण करो॥६३॥ —महीधर

ऊन के लाल आसनों पर बैठना और यजमान को धन देना तथा उनसे धन लेना और यज्ञ में रस धारण करना जीवित पितरों से ही सम्भव हो सकता है, मृतकों से नहीं, अतः मृतक पितरों का श्राद्ध वेदविरुद्ध तथा जीवितों का श्राद्ध वेदानुकूल है।

कहिए महाराज! यह श्राद्ध तीन पुश्त तक ही क्यों दिया जाता है? इससे ऊपर की पीढ़ी के लिए क्यों नहीं दिया जाता? क्या तीन पीढ़ी से ऊपर के पितरों का अवश्य ही मोक्ष हो जाता है? वास्तविक बात तो यह है कि पितरों की तीन पीढ़ी तक ही प्रायः जीवित रहना सम्भव है अधिक पीढ़ी तक नहीं, अतः पौराणिक ग्रन्थों में पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीन पीढ़ी तक ही श्राद्ध का प्रतिपादन सिद्ध करता है कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही है, मृतकों का नहीं है।

(४२९) प्रश्न—'अधा मृताः' इत्यादि [अथर्व० १८।४।४८] में लिखा है कि मृतक पुरुष ही पितृस्वरूप को प्राप्त होते हैं। —पृ० २९३, पं० १२

उत्तर—यहाँ पर परमेश्वर से प्रार्थना है कि हे परमेश्वर!

अधा मृताः पितृषु सं भवन्तु॥ —अथर्व० १८।४।४८

(अध) और (पितृषु) हमारे पितरों में (अमृताः) अमृत, अर्थात् मृत्यु को प्राप्त न होनेवाले (सम्भवन्तु) सदा होते रहें॥४८॥

यहाँ तो स्पष्ट प्रार्थना है कि हमारे अध्यापक, ज्ञानी, पालन-पोषण करनेवाले पितरों में बड़ी आयु को प्राप्त होनेवाले हों। यहाँ पर भी जीवित पितरों की दीर्घायु के लिए ही प्रार्थना है, मृतकों का वर्णन नहीं है।

श्रीमान्‌जी! आपने मृतकों की पूजा सिखा-सिखाकर देश तथा जाति को मृतक ही बना दिया। जो लोग मुर्दों से डरें उनसे क्या आशा की जा सकती है कि वे जीवितों से लड़कर स्वराज्य प्राप्त करेंगे? देखिए, लिखा भी है कि—

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम्। मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः॥३॥
—महा० शान्ति० अ० ३२२

भाषार्थ—पापकर्मों के करनेवाले दरिद्री लोग दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष को, क्लेश से क्लेश को, भय से भय को तथा मृतकों से मुर्दा अवस्था को प्राप्त होते हैं॥३॥

अतः आपने ही इस देश को मृतक बनाकर बर्बाद किया है।

(४३०) प्रश्न—वेद में श्राद्ध के कम-से-कम ७०० मन्त्र हैं, जिनमें मृतक पितृश्राद्ध का उल्लेख है। जिनको सब देखने हों वे यजुर्वेद का अध्याय १९ तथा अथर्ववेद का काण्ड १८ देखें। —पृ० २९३, पं० १४

उत्तर—चारों वेदों में न तो श्राद्ध शब्द है और न ही वेद में कोई मन्त्र ऐसा है जो यह प्रतिपादन करता हो कि मृतक पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को भोजन कराने से मृत पितरों की तृप्ति होती है। हाँ, जीवित पितरों अर्थात् ज्ञानी महात्मा, जनक, माता-पिता आदि की सेवा का उपदेश वेद करते हैं। मृतकों की पितर संज्ञा ही नहीं है और कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है, अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिल सकता—यही वेद का सिद्धान्त है। जिसे विस्तारपूर्वक देखना हो वह वेदों के आर्यसमाज से प्रकाशित भाष्य पढ़े जो ब्राह्मण, निरुक्त तथा व्याकरण के अनुकूल हैं।

(४३१) प्रश्न—'जीवितों का श्राद्ध करना, मृतकों का नहीं' इसकी पुष्टि में स्वामीजी ने कोई प्रमाण भी नहीं लिखा। केवल हुक्म लिख दिया और हुक्म लिखकर सात सौ वेदमन्त्रों का गला घोंट डाला है। —पृ० २९४, पं० २४

उत्तर—स्वामीजी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पितृयज्ञ प्रकरण में 'जीवितों का श्राद्ध करना चाहिए, मृतकों का नहीं' इसकी पुष्टि में **'ऊर्जं वहन्ति', 'आयन्तु नः', 'अत्र पितरो', 'आधत्त पितरः', 'ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु'**—इत्यादि अनेक मन्त्र दिये हैं और उन मन्त्रों तथा युक्तियों के आधार पर हुक्म दिया है और यह युक्तियुक्त वेदानुकूल हुक्म देकर सात सौ मन्त्रों को अनृतव्याघातदोष से मुक्त करके लोगों के हृदयों में वेद का सिक्का बिठा दिया है। यदि आपको ये प्रमाण नज़र न आवें तो हमारा क्या क़ुसुर है? और मृतकश्राद्ध का खण्डन तो आपके पुराणों में भी विद्यमान है, जैसेकि—

जीवित पितर

(१) **अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥ ९५॥**
पितामहेति जयदमित्यूचुस्ते दिवौकसः॥ ९६॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ४

(२) **इत्येवं क्षत्रियपिता वैश्यस्य च पितामहाः।**
प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विप्रो मनीषिभिः॥ ६९॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ४

मृतक-अन्न पाप

(३) **मृतान्नं मधु मांसं च यस्तु भुञ्जीत ब्राह्मणः।**
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत्॥ ५९॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० १८४

पितर सन्तान से तृप्त

(४) **ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाध्वना।**
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत्॥ २६॥ —शिव० कैलास० अ० १२

ऋतु का नाम पितर

(५) **ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः।**
यस्मादृतुषु सर्वे हि जायन्ते स्थाणुजंगमाः॥ ४५॥
—शिव० वायु० ७ खं० १ अ० १७

अपना श्राद्ध

(६) **मातृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही।**
आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ॥ ४१॥ —शिव० कैलास० अ० १२

जीवितों का तर्पण

(७) पीनीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा।
सर्वेषा जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम्॥ १॥
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
इहलोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः॥ २९॥ —शिव०शिव०उमा०अ० १२

जीवित के लिए पिण्ड

(८) चाण्डालोच्छिष्टपिण्डेन जठराग्निमतर्पयत्॥ २१॥ —शिव० कोटि० रुद्र० अ० ९
(९) रे रे दैत्याधमसखे परपिण्डोपजीवक॥ ३३॥ —शिव० रुद्र० युद्ध० अ० ५३

विवाह में श्राद्ध

(१०) स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम्।
श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत्॥ १९॥
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः॥ २१॥—वाल्मी० बाल० स० ७२

अपना किया मिलता है

(११) स्वयं कृतानि कर्माणि जातो जन्तुः प्रपद्यते।
नाकृत्वा लभते कश्चित् किंचिदत्र प्रियाप्रियम्॥ ३०॥
—महा० शान्ति० अ० २९८

किये कर्म का नाश नहीं

(१२) निरन्तरं च मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते॥ १७॥

किसी का कर्म किसी को नहीं मिलता

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते। करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते॥ २२॥
—महा० शा० अ० २९०

कोई किसी के लिए नहीं करता

(१३) कः कस्य चोपकुरुते कश्च कस्मै प्रयच्छति।
प्राणी करोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना॥ १॥ —महा० शा० अ० २९२

कर्मफल कर्त्ता को

(१४) यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति॥ २२॥ —महा० अनु० अ० ७

कोई किसी का माता-पिता नहीं

(१५) न माता न पिता किञ्चित् कस्यचित् प्रतिपद्यते।
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते॥ ३९॥ —महा० शान्ति० अ० २९८

कलि में श्राद्धनिषेध

(१६) न श्राद्धैस्तर्पयिष्यन्ति देवतानीह मानवाः॥ ४६॥ —महा० वन० अ० १९०

भाषार्थ—(१) अज्ञानी का नाम बालक है और मन्त्र देनेवाले का नाम पिता है और उन देवताओं ने जय नाम ब्राह्मण को पितामह कहा है। (२) इस प्रकार से ब्राह्मण क्षत्रिय का पिता, वैश्य का पितामह तथा शूद्र का प्रपितामह बुद्धिमानों ने कहा है। (३) मुर्दे के निमित्त अन्न, शराब और मांस जो ब्राह्मण खावे वह तीन दिन उपवास करे और एक दिन पानी में रहे। (४) ब्रह्मचर्य से मुनि तृप्त होते हैं, यज्ञ करने से देवता तथा सन्तान पैदा करने से पितर तृप्त होते हैं—यह वेद का वचन है। (५) मौसमों का नाम पितर है, यह वेद की श्रुति है, जिस कारण ऋतुओं में सारे जड़-जंगम पैदा होते हैं। (६) माता के श्राद्ध में माता, दादी तथा परदादी मानी जाती है और अपने श्राद्ध में चार—आत्मा, पिता, पितामह, प्रपितामह माने जाते हैं। (७) पानी का दान सब दानों में परम उत्तम है, क्योंकि यह सब जीवसमूह का तर्पण करनेवाला तथा सबका जीवन है। फूल-फल से युक्त ये वृक्ष भी मनुष्यों का तर्पण करते हैं। इस लोक में और परलोक में भी—इसलिए ये धर्म से पुत्र हैं। (८) उसने चाण्डाल के जूठे पिण्ड अर्थात् भोजन से पेट की अग्नि का तर्पण अर्थात् तृप्त किया। (९) हे दैत्य! हे अधम के मित्र! हे पराये पिण्ड अर्थात् अन्न से जीनेवाले। (१०) राम के विवाह समय जनक बोला कि आपका कल्याण हो, हम विधिपूर्वक श्राद्धकर्म करने के लिए जाते हैं। राजा ने घर पर जाकर श्राद्ध किया। (११) पैदा हुआ जीव स्वयं किये कर्मों को प्राप्त होता है, बिना किये कोई कुछ भी प्रिय-अप्रिय को प्राप्त नहीं होता। (१२) हे राजन्! निरन्तर और मिश्रित कर्मों को मनुष्य प्राप्त होता है चाहे कल्याण चाहे पाप, कर्मों का नाश नहीं होता। यह जीव दूसरे के पुण्य और पाप का सेवन नहीं करता, जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है। (१३) कौन किसका उपकार करता है, कौन किसके लिए देता है! यह प्राणी सारा कर्म स्वयं अपने लिए करता है। (१४) जैसे हज़ार गौवों में से बछड़ा अपनी माता को प्राप्त होता है, ऐसे ही पूर्वकृत कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है। (१५) कोई किसी की न माता है, न पिता है। दानरूप मार्ग से व्यय करनेवाला जीव अपने कर्म के फल को भोगता है। (१६) कलियुग में इस संसार में मनुष्य देवता और पितरों का श्राद्धों से तर्पण नहीं करेंगे।

देखिए, इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जीवों में कोई किसी का माता-पिता नहीं, किया कर्म नाश नहीं होता, कर्म का फल कर्त्ता को मिलता है, किसी के कर्म का फल किसी अन्य को नहीं मिलता। पितर ज्ञानियों तथा ऋतुओं का नाम है, पितर सन्तान से तृप्त होते हैं, पिण्ड शब्द अन्न अर्थ में तथा श्राद्ध शब्द जीतों के लिए और विवाह में भी आता है और तर्पण शब्द जीवितों के लिए आता है। मृत का अन्न खाना पाप है, तथा अन्त में यह भी सिद्ध है कि कलियुग में श्राद्ध नहीं होंगे, यह पुराणों की व्यवस्था है। फिर अब बतलाइए कि स्वामीजी मृतकश्राद्ध का खण्डन करते हैं या आपके ग्रन्थ भी इस प्रकार के मृतकश्राद्ध की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं।

(४३२) प्रश्न—यहाँ पर **'सोमसदः'** पद का अर्थ किया कि जो पदार्थविद्या में निपुण हैं, वे सोमसद पितर हैं। स्वामीजी जानते हैं कि आजकल योरुपवाले पदार्थविद्या में निपुण हैं, इसलिए योरुपवालों का श्राद्ध-तर्पण लिख दिया। —पृ० २९५, पं० १८

उत्तर—आपने स्वामीजी के किये अर्थ को पूरा नहीं लिखा, बीच में से पाठ को चुरा लिया है। देखिए, स्वामीजी के अर्थ इस प्रकार हैं—

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः।

जो परमात्मा और पदार्थविद्या में निपुण हों वे सोमसदः"।

बतलाइए, इसमें आपको क्या शंका है? जो ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या में निपुण हों वे वास्तव में हमारे पिता हैं चाहे वे योरुप के रहनेवाले हों चाहे अमरीका और भारतवर्ष के रहनेवालों हों। जो इन दो विद्याओं द्वारा हमारी रक्षा करें वे हमारे सोमसद पितर हैं। आपमें हिम्मत हो तो स्वामीजी

के अर्थों का खण्डन करें और साथ में यह भी बतलावें कि मृतक पितरों में से किनका नाम 'सोमसद' पितर है। कुछ अपना पक्ष भी तो बतावें। आपके यहाँ तो सोमसदों को मनुष्यों का पितर ही नहीं लिखा। देखिए—

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः॥ —मनु० ३।१९५

सोमसद विराट् के पुत्र हैं और वे साध्यों के पितर हैं॥१९५॥

अब बतलाइए, जब वे मनुष्यों के पितर ही नहीं तो मनुष्य उनका तर्पण-श्राद्ध क्यों करें? स्वामीजी का लेख ठीक है कि जो लोग ब्रह्मविद्या तथा पदार्थविद्या द्वारा हमारी रक्षा करें, वे हमारे सोमसद पितर हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा और श्रद्धापूर्वक अन्न-जल-प्रदान से उनका श्राद्ध-तर्पण करना हमारा कर्त्तव्य है।

(४३३) प्रश्न—जो अग्निविद्या में निपुण हैं वे अग्निष्वात्त पितर हैं—इस नियम से हलवाई, लुहार, इंजन के ड्राइवर, भड़भूँजे—ये सब आर्यसमाजियों के पितर होंगे?—पृ० २९५, पं० २३

उत्तर—आपने यहाँ भी अपनी आदत के अनुसार स्वामीजी के अर्थों को चुरा लिया है। देखिए, स्वामीजी लिखते हैं कि—

'यैरग्नेर्विद्युतो विद्या ग्रहीता ते अग्निष्वात्ताः'—जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेवाले हों वे अग्निष्वात्त। स्वामीजी का लेख साफ़ है कि जो लोग अग्नि, अर्थात् बिजली आदि से अग्नि अर्थात् ब्रह्मविद्या, अग्निहोत्र आदि विद्याओं में निपुण होकर उन द्वारा हमारी रक्षा करें वे हमारे 'अग्निष्वात्त' पितर हैं। उनकी सेवा-सुश्रूषा, अन्न-जल-फल आदि द्वारा उनका श्राद्ध तथा तर्पण करना हमारा कर्त्तव्य है, किन्तु आप बतलावें कि आपको इसमें शंका क्या है? आपके विचार में मृतकों में से अग्निष्वात्त किन पितरों का नाम है और उनमें सोमसद, आज्यपा आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है? यदि आप कहें कि अग्नि में जले हुओं का नाम अग्निष्वात्त है तो यह ठीक नहीं, क्योंकि जीव तो अग्नि में जलता नहीं और शरीर आकर भोजन नहीं कर सकता, फिर बताइए अग्निष्वात्त पितर कौन हुए? स्वामीजी के अर्थों का खण्डन करके अपने अर्थों को सत्य सिद्ध कीजिए। आपके यहाँ तो अग्निष्वात्त कौन हैं यह निश्चय ही नहीं है। देखिए, मनु में तो लिखा है कि—

अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः॥ —मनु० ३।१९५

'अग्निष्वात्त' मरीचि के पुत्र हैं और वे देवों के पितर हैं।

शिवपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा अपनी पुत्री पर आशिक़ हो गया और महादेव ने इस कुकर्म पर उसे डाँटा तो ब्रह्मा को पसीना आ गया, उस पसीने से अग्निष्वात्त पितर हुआ। देखिए, ब्रह्माजी स्वयं फरमाते हैं कि—

मच्छरीरात्तु घर्मांभो यत्पपात द्विजोत्तम। अग्निष्वात्ताः पितृगणा जाताः पितृगणास्ततः॥४८॥

सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः॥५०॥ —शिव० रुद्र० सती० अ० ३

मेरे शरीर से जो पसीने का जल गिरा उससे अग्निष्वात्त, पितर तथा और भी पितृसमूह पैदा हुआ॥४८॥ चौंसठ हज़ार अग्निष्वात्त पितर पैदा हुए॥५०॥

मनु तो कहते हैं कि मनु के पुत्र मरीचि, उनके पुत्र अग्निष्वात्त और शिवपुराण कहता है ब्रह्मा के पसीने से पैदा हुए तथा आप कहते हैं कि अग्नि में जलाये हुओं का नाम अग्निष्वात्त है। तीनों में से कौन सच्चा और कौन झूठा है, यह आप स्वयं निर्णय करें, किन्तु जब अग्निष्वात्त देवों के पितर हैं तो मनुष्य उनका श्राद्ध-तर्पण क्यों करें? इससे सिद्ध है कि स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपका मत ग़लत है। रहा आपका यह कहना 'कि इस नियम से हलवाई, लुहार, इंजन-ड्राइवर तथा भड़भूँजे आर्यों के पितर होंगे' सो श्रीमान्‌जी! हम तो यह समझते हैं कि ये

लोग भी देश की सेवा कर रहे हैं। यदि ये लोग भी अपनी-अपनी विद्या द्वारा हमारी रक्षा करें तो हमें इन्हें पितर मानने में कोई शंका नहीं है। हमें यह सन्तुष्टि है कि ये पितर कम-से-कम उन पितरों से तो अवश्य श्रेष्ठ हैं कि जो पुत्री के आशिक़ के शरीर से उत्पन्न हुए हों।

(४३४) प्रश्न—बर्हिषद का अर्थ किया है जो उत्तम व्यवहार में निपुण हों। वे हैं कौन, उनका पता नहीं बतलाया। सम्भव है कि पॉलिसीबाजों को आर्यसमाजियों का पितर बनाया हो।

—पृ० २९५, पं० २८

उत्तर—यहाँ भी आपने स्वामीजी के पाठ को चुरा लिया है। स्वामीजी का लेख इस प्रकार है **'ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः'** जो उत्तम विद्या, बुद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद। इसके अर्थ स्पष्ट हैं कि जो लोग विद्या की वृद्धि के विषय में युक्तव्यवहार करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, अध्यापक, उपदेशक, साधु-संन्यासी, महात्मा हैं वे विद्या तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करने के कारण हमारे पितर हैं और हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी सेवा-शुश्रूषा तथा अन्न-जल आदि द्वारा श्रद्धापूर्वक उनका श्राद्ध और तर्पण करें। आपने यह नहीं बतलाया कि आपके मतानुसार मृतक पितरों में से बर्हिषद कौन-से पितर हैं, और उनमें सोमसद, अग्निष्वात्त आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है? आपके यहाँ इनके बारे में भी मतभेद है। देखिए, मनुजी तो कहते हैं कि—

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः॥

—मनु० ३।१९६

भाषार्थ—दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर, इन सबके पितर अत्रि के पुत्र बर्हिषद हैं॥१९६॥

और शिवपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्री पर आशिक़ होने तथा महादेव के डाँटने पर ब्रह्मा को जो पसीना आया उससे जहाँ चौंसठ हज़ार अग्निष्वात्त पैदा हुए वहाँ—

षडशीतिसहस्राणि तथा बर्हिषदो मुने॥ —शिव० रुद्र० सती० अ० ३।५०

छियासी हज़ार बर्हिषद पैदा हुए॥५०॥

अब कहिए महाराज! इन दोनों लेखों में से कौन-सा ठीक है? बर्हिषद पितर ब्रह्मा के पुत्र थे या अत्रि के? और फिर जब ये दैत्य आदि के पितर हैं तो दूसरे लोग इनका श्राद्ध-तर्पण क्यों करें? रही बात पॉलीसीबाज़ों की, सो यदि वे ईमानदारी से काम करें, अनाथों तथा विधवाओं की सहायता करें और व्यापार द्वारा देश को लाभ पहुँचाएँ तो उनके पितर होने में किसे सन्देह हो सकता है, अतः स्वामीजी के अर्थ ठीक हैं और आपका अपने पक्ष को पेश न करते हुए केवल वितण्डावाद व्यर्थ ही है।

(४३५) प्रश्न—सोमपा का अर्थ डाक्टर किया। भारतवर्ष में जितने भी डाक्टर हैं, वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। —पि० २९५, पं० २८

उत्तर—आपने यहाँ भी स्वामीजी की भाषा को नहीं लिखा, अपनी ही मनघड़न्त भाषा लिख डाली। देखिए, स्वामीजी का लेख इस प्रकार है कि **'ये सोममैश्वर्यमोषधिरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः'** जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक, औषधों को देके रोगनाशक हों वे 'सोमपा'।

कैसी स्पष्ट भाषा है कि जो लोग अपने और हमारे ऐश्वर्य की रक्षा करनेवाले राज्याधिकारी तथा स्वयं महौषधिरस का पान करके रोगरहित तथा ओषधि-सेवन करवाकर हमारी रोगों से रक्षा करनेवाले देशहितैषी वैद्य, डाक्टर आदि हैं, वे हमारे पितर हैं और हमारा कर्त्तव्य है कि हम सेवा-सुश्रूषा तथा अन्न-जल, फलादि द्वारा उनका श्राद्ध और तर्पण करें, किन्तु आप भी तो बतलावें

कि मृतक पितरों में से सोमपा कौन-से पितर हैं और उनमें सोमसद, अग्निष्वात, बर्हिषदादि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है? आपके यहाँ तो लिखा है कि—

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः॥ १९७॥
सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः॥ १९८॥ —मनु० ३

भाषार्थ—सोमपा नाम के पितर ब्राह्मणों के हैं, और क्षत्रियों के पितर हविर्भुज हैं, वैश्यों के पितर आज्यपा नामवाले हैं तथा शूद्रों के पितर सुकाली नामवाले हैं॥ १९७॥

सोमपा पितर कवि के पुत्र हैं और हविर्भुज पितर अंगिरा के पुत्र हैं, आज्यपा नाम के पितर पुलस्त्य के पुत्र हैं, और सुकाली नाम के पितर वसिष्ठ के पुत्र हैं॥ १९८॥

ये पितर इन ऋषियों से पैदा कैसे हुए? शिवपुराण में लिखा है कि ये चारों ऋषि अपनी बहिन सन्ध्या पर आशिक़ हो गये, तब इनका वीर्यपात हो गया, जिससे उपर्युक्त पितर पैदा हुए, जैसाकि—

मरीचिप्रमुखाः षड् वै निगृहीतेन्द्रियक्रियाः। ऋते क्रतुं वसिष्ठं च पुलस्त्यांगिरसौ तथा॥ ५४॥
क्रत्वादीनां चतुर्णां च बीजं भूमौ पपात च। तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे मुनिसत्तम॥ ५५॥
सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः। हविष्मन्तस्सुतास्सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः॥ ५६॥

—शिव० रुद्र० सती० अ० ३

भाषार्थ—मरीचि आदि छह ने अपनी इन्द्रयों को वश में रक्खा—क्रतु, वसिष्ठ, पुलस्त्य और अंगिरा के बिना॥ ५४॥ क्रतु आदि चारों का बीज पृथिवी पर गिर पड़ा। उससे अन्य पितृगण पैदा हुए॥ ५५॥ सोमपा, आज्यपा, सुकाली और हविष्मन्त ये सब कव्य को ग्रहण करेवाले हुए॥ ५६॥

ये सब पितर मनुस्मृति में तो मनु के पोते लिखे हैं और शिवपुराण में ब्रह्मा के पोते लिखे हैं। इनमें से कौन-सी बात ठीक है? और जब सोमपा नामक पितर ब्राह्मणों के हैं तो फिर दूसरे लोग उनकी तृप्ति के लिए भोजन क्यों करावें? अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक है और आपकी शंका निर्मूल है।

(४३६) प्रश्न—जो मादक द्रव्य और हिंसावाले पदार्थों को छोड़कर अन्य पदार्थ खावें वे हविर्भुज आर्यसमाज के पितर हैं। यह मालूम नहीं वे हैं कौन, वैजीटेरियन सोसाइटी के मैम्बर हैं या गाय-भैंस, हिरण-बकरी हैं जिनका आर्यसमाज श्राद्ध-तर्पण करेगी। ये सब मांस और मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते। —पृ० २९६, पं० १

उत्तर—स्वामीजी के शब्द इस प्रकार हैं कि '**ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः** जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज।' स्वामीजी के लेख से स्पष्ट है कि जो मांस और शराब आदि नशे की वस्तुओं का सेवन करते हों वे पितर कहाने के योग्य नहीं हैं, अपितु पितर कहाने के वही योग्य हैं जो खाने के योग्य फलादि हिंसारहित तथा नशे से वर्जित पदार्थों का भोजन करते हैं। ऐसे पुरुषों की सेवा-सुश्रूषा और श्राद्ध करना हमारा धर्म है, चाहे वेदानुकूल किसी भी सोसाइटी के मेम्बर हों। आपको निरामिषभोजी पितरों का ज्ञान कैसे हो? क्योंकि आपके पितर तो मांसभोजन से प्रसन्न होते हैं और उनकी हवि में मांस भी शामिल है, जैसेकि—

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते॥

—मनु० ३। २५७

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः। तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः॥

—मनु० ३।१२३

भाषार्थ—मुनि अन्न, दूध, शराब, विकाररहित मांस, बिना नमक के बनाये पदार्थ—ये वस्तुएँ स्वभाव से ही हवि कही जाती हैं॥ २५७॥ पितरों का मासिक श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है, वह यत्नपूर्वक अच्छे मांस से करना चाहिए॥ १२३॥

आपके मत में जब अंगिरा मुनि बहिन पर आशिक़ हुए तथा उनका बीज ज़मीन पर गिर पड़ा उससे हविर्भुज पितर पैदा हुए और वे क्षत्रियों के ही पितर हैं (नं० ४३५)। वाह वाह! पितरों की क्या शानदार पैदाइश है! भला, जब वे क्षत्रियों के ही पितर हैं तो दूसरे इनका श्राद्ध-तर्पण क्यों करें? और क्षत्रियों के भी ये पिता, पितामह, प्रपितामह पूर्वज थोड़े ही हैं! इनका श्राद्ध-तर्पण करने से क्षत्रियों के पितादि की तृप्ति कैसे होगी? अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपकी शंका मिथ्या ही है। रही बात गाय, भैंस, हिरण, बकरी की, सो ये पशु भी चूँकि उपकारक हैं; जैसे गाय को लाक्षणिक रूप से माता कहा जाता है, वैसे ही सब रक्षा करनेवाले पशुओं को भी लाक्षणिक रूप से पितर कहा जा सकता है और आपके तो ये पितरों के भी पितर हैं, क्योंकि इनके मांस से पौराणिक पितरों की तृप्ति होती है। —पृ० ३।२६७ से २७१

(४३७) प्रश्न—और जो रक्षा करें और साथ ही केवल घी पीते हों वे आर्यसमाजियों के आज्यपा पितर हैं। हमें तो एक भी मनुष्य या जानवर ऐसा न मिला जो घी पीकर ही जीवन धारण करता हो। —पृ० २९६, पं० ४

उत्तर—आपने स्वामीजी के सारे ही पाठ को चुराकर अपना मनमाना पाठ लिखकर स्वयं ही शंका कर डाली। स्वामीजी का लेख इस प्रकार से है कि **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः'**—'जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत-दुग्ध आदि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपा।'

इस पाठ में यह कहाँ लिखा है कि "जो केवल घी पीते हों वे आज्यपा"? स्वामीजी का लेख स्पष्ट है कि जो लोग जानने और प्राप्त करने योग्य वस्तु की रक्षा करें और जिनका भोजन विशेषतया घी तथा दूध आदि हो और इन वस्तुओं द्वारा वे हमारी रक्षा करें वे हमारे पितर हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा, अन्न-जल, दूध-घी आदि से उनका श्राद्ध-तर्पण करना हमारा कर्त्तव्य है, किन्तु आप बतलाएँ कि मृतक पितरों में आज्यपा पितर कौन हैं और उनमें सोमसद, अग्निष्वात्त, हविर्भुज, सोमपा आदि पितरों की अपेक्षा क्या विशेषता है? आपके यहाँ तो लिखा है कि आज्यपा पितर पुलस्त्य के पुत्र हैं। जब बहिन पर मोहित होकर पुलस्त्य का वीर्य गिर पड़ा, उससे आज्यपा पितर पैदा हुए और वे वैश्यों के पितर हैं (नं० ४३५)।

वाहजी, पितरों की कैसी बढ़िया पैदाइश है! जब ये वैश्यों के पितर हैं तो दूसरे इनका श्राद्ध-तर्पण क्यों करेंगे? और वैश्यों के भी ये वंशकर्त्ता पितर नहीं हैं। भला, इनके श्राद्ध-तर्पण से वैश्यों के पिता आदि की तृप्ति कैसे होगी? अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपकी शंका बनावटी ही है। मनुस्मृति से स्पष्ट सिद्ध है कि उपर्युक्त सोमसद आदि पितर लोगों के पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का नाम नहीं है, अपितु ये पृथक् ही समूह हैं और इनके पृथक् ही पुत्र-पौत्र भी हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जो इनका श्राद्ध करते हैं वे न इनके पुत्र-पौत्र हैं और न ये इनके पूर्वज पितादि हैं, जैसेकि—

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः॥ १९४॥

य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः। तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम्॥ २००॥

—मनु० ३

भाषार्थ—हिरण्यगर्भ मनु के जो मरीचि आदि पुत्र हैं, उन सारे ऋषियों के पुत्रों का नाम पितृगण कहा जाता है॥ १९४॥ जो ये पितरों के मुख्य गण वर्णन किये हैं उनके भी इस संसार में अनन्त पुत्र-पौत्र जानने चाहिएँ॥ २००॥

इस लेख से यह भी सिद्ध है कि मृतकों का नाम पितर नहीं है, अपितु ऋषियों की सन्तान का नाम पितर है।

(४३८) प्रश्न—'यमाय सोमःपवते' इत्यादि [अथर्व० १८।२।१] इस मन्त्र का क़त्ल करते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि न्यायाधीश का नाम यम है। न्यायधीशों का ही श्राद्ध-तर्पण करो। जितने भी मजिस्ट्रेट संसार में हैं वे सब आर्यसमाजियों के पितर हैं। बात तो बनाई, किन्तु बना न जानी। इस मन्त्र में लिखा है कि अग्नि दूत बनकर हवि को यम के वास्ते पहुँचाता है। भला, अग्नि मजिस्ट्रेटों के पास खाने के पदार्थ कैसे पहुँचा देगा? —पृ० २९६, पं० १३

उत्तर—स्वामीजी का लेख इस प्रकार है कि—**'ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः।'**—जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे **'यम'**। स्वामीजी का लेख स्पष्ट है कि जो श्रेष्ठों की रक्षा करके दुष्टों को दण्ड देनेवाले न्यायकारी राजा वा राज्याधिकारी हैं वे हमारे पितर हैं। उनकी सेवा तथा अन्न-जल-फलादि से उनका श्राद्ध-तर्पण करना हमारा कर्त्तव्य है। आप बतलावें मृतक पितरों में से यम किनका नाम है, और दूसरे पितरों की अपेक्षा उनमें क्या विशेषता है? आपके यहाँ तो यम नामवाले पितरों का वर्णन भी पितृगणों में नहीं है। जब यम किसी के पितर ही नहीं हैं तो कोई इनका श्राद्ध-तर्पण क्यों करे? अतः स्वामीजी ने जो यम का अर्थ न्यायाधीश, राजा किया है वह ठीक है। आपके ग्रन्थों में इसकी पुष्टि विद्यमान है, जैसेकि—

यमः॥ १२॥

यमो यच्छतीति सतः॥ २।९॥

'वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य।'

—ऋ० ८।१४।१ (निरुक्त० १० खं० १९-२०)

भाषार्थ—जो दुष्टों का नियमन करता है, उसका नाम यम है। या जो प्रजाओं को नियम में रखता है उसका नाम यम है। इसपर वेद का प्रमाण देते हैं कि 'जैसे सूर्य अपनी आकर्षणशक्ति से सब लोकों को वश में रखता है वैसे ही मनुष्यों को जो यम, अर्थात् संयमी राजा वश में रखता है, उसका भोज्य वस्तुओं से सत्कार करो।' इसके अतिरिक्त मनु में भी कहा है कि—

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति। तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥

—मनु० ९।३०७

भाषार्थ—जैसे यम अर्थात् परमात्मा समय आने पर प्यारे और द्वेषी सबको वश में कर लेता हैं वैसे ही राजा को भी प्रजा को नियम में चलाना चाहिए, यही उसका यमव्रत है॥ ३०७॥

स्वामीजी ने यम का न्यायकारी राजा अर्थ करके इस वेदमन्त्र को अनृत, असम्भव दोष से मुक्त करके प्रकाशित कर दिया है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ १॥

अथर्व० १८।२।१

भाषार्थ—यम-नियम व्यवस्था के करनेहारे राजा के निमित्त सोमरस छाना जाता है। यम अर्थात् राजा के लिए ही हवि अर्थात् अन्न उत्पन्न किया जाता है। यज्ञ अर्थात् राष्ट्र ज्ञानवान् पुरुषों को अपना दूत बनाकर और सुशोभित होकर राजा की शरण में आता है॥ १॥

यहाँ अग्नि के अर्थ ज्ञानवान् दूत के हैं, भौतिक अग्नि के नहीं हैं, क्योंकि भौतिक अग्नि जड़ होने से दूत का काम नहीं कर सकती। आपके यहाँ तो राजा को पितरों का भी पिता लिखा है, अतः पितरों ने राजा पृथु से जाकर कहा—

पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन्।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः॥ ११॥ —महा० द्रोण० अ० ६९

पितर सुख से बैठे पृथु को बोले कि तू सम्राट् है, क्षत्रिय है, रक्षा करनेवाला राजा और हमारा पिता है।

अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपकी शंका निर्मूल है।

(४३९) प्रश्न —'यो ममार प्रथमो' इत्यादि [अथर्व० १८।३।१३] अब आर्यसमाजी बतलावें कि वेद में जिस यम को हवि देना लिखा है और वह हवि अग्नि के द्वारा जिस यम को मिलती है वह मृत प्राणियों पर निग्रह एवं अनुग्रह करनेवाला राजा यम है या आनरेरी मजिस्ट्रेट? क्या मजिस्ट्रेट प्राणियों को मारते और फिर मारकर इस लोक से अन्य किसी लोक में ले-जाते हैं? क्या सभी आनरेरी मजिस्ट्रेट विवस्वान् सूर्य के पुत्र हैं? यदि ये घटनाएँ आनरेरी मजिस्ट्रेटों में नहीं हैं तो फिर यम से तुम आनरेरी मजिस्ट्रेट कैसे लेते हो?

—पृ० २९६, पं० २६

उत्तर—श्रीमान्जी! आपके सिर पर तो पौराणिक यम का भूत सवार हो रहा है। यम शब्द के अनेक अर्थ हैं? यम राजा, राज्याधिकारी, ईश्वर तथा वायु अनेक अर्थों में वेदों में आता है। इस मन्त्र में यम का अर्थ राजा नहीं अपितु ईश्वर हैं। वैवस्वत के अर्थ हैं सूर्यवत् तेजस्वी, सबका धारक, आकर्षक और इस मन्त्र में अग्निदूत का वर्णन भी नहीं है। देखिए, आपके यहाँ मनु में ईश्वर को यम और वैवस्वत लिखा है, जैसेकि—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः॥ ९२॥ —मनु० ८

सर्वसंयमनाद्यमः परमात्मा, वैवस्वत इति दण्डधारित्वात्, देवनाद्देवः। —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—सबको नियम में चलानेवाला होने से यम, सब दुष्टों को दण्ड देने से वैवस्वत तथा प्रकाशमान् होने से देव, जिस परमात्मा का नाम है और जो तेरे हृदय में विराजमान है यदि उसके साथ तेरा विरोध नहीं है तो तू न गङ्गा जा, न कुरुक्षेत्र॥ ९२॥

इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यमं प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत॥ —अथर्व० १८।३।१३

भाषार्थ—जो परमात्मा सबसे श्रेष्ठ है और सब जगत् से पूर्व था और मनुष्यों को मारता है और कर्मानुसार इस लोक में भेजता है, सबका जो रक्षक सब मनुष्यों का आश्रय-स्थान है उस सबके राजा, नियम में चलानेवाले परमात्मा की स्तुति द्वारा आदर से पूजा करो॥ १३॥

अब बतलाइए श्रीमान्जी! इस मन्त्र में आपके पौराणिक यमराज का वर्णन कहाँ हैं?

मृतकश्राद्ध और स्वामी दयानन्द

(४४०) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने **'प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश'** में मृत्तक पितरों का ही श्राद्ध लिखा था, किन्तु संवत् १९४० को शुभतिथि नरक चतुर्दशी को स्वामीजी का शरीर पात हो गया। संवत् १९४१ में जो द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश आठ पण्डितों ने बनाया तब इस 'सत्यार्थप्रकाश' में जीवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया। —पृ० १६, पं० २६

उत्तर—स्वामीजी ने जो प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में छपवाया था उस समय स्वामीजी हिन्दी भाषा न जानते थे, अतः सारा प्रबन्ध पण्डितों के ही हाथ में था। पण्डितों ने उसमें मृतकश्राद्ध और मांस की भी मिलावट कर दी। जब स्वामीजी को पता लगा तो जितने पुस्तक मिल सके सब जला दिये और इस बारे में विज्ञापन दे दिया, जो इस पुस्तक के आरम्भ में छाप दिया है और 'सत्यार्थप्रकाश' का संशोधन करके उसे अपने सामने प्रेस में दे दिया। यह बात द्वितीय आवृत्ति 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका में लिखी हुई है। आपका यह लिखना ग़लत है कि 'स्वामीजी के पीछे आठ पण्डितों ने द्वितीय आवृत्ति सत्यार्थप्रकाश बनाया, जिसमें जीवित पितरों का श्राद्ध लिख दिया' क्योंकि आपने लिखा है कि संवत् १९४० में स्वामीजी की मृत्यु हुई फिर आप स्वयं ही अपनी पुस्तक के पृ० १४७, नं० ८९ में लिखते हैं कि—

'स्वामीजी ने प्रथमावृत्ति 'सत्यार्थप्रकाश' में मृतकों का श्राद्ध अपने-आप लिखा। संवत् १९३४ में कलकत्ते में आशु चटर्जी से कह दिया कि वह लेख मेरा नहीं, मेरे पास रहनेवाले पण्डित ने लिख दिया' इस आपके ही लेख से सिद्ध है कि स्वामीजी ने मरने से छह वर्ष पहले इस लेख से इनकार कर दिया था। तो क्या वे इस छह वर्ष के अरसे में पुस्तक का संशोधन न कर सकते थे? अतः आपकी उपुर्यक्त कल्पना सर्वथा निर्मूल है। दूसरी बात यह है कि जब आर्य्यसमाज सामूहिकरूप से प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को मिथ्या तथा द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को ठीक मानता है तो किसी को क्या हक़ है कि शास्त्रार्थ में प्रथम संस्करण का प्रमाण पेश करे? फिर जब आप स्वयं श्राद्ध-प्रकरण में लिखते हैं कि 'स्वामीजी ने जीवितों के श्राद्ध का हुक्म देकर सात सौ वेदमन्त्रों का गला घोंट डाला' अब स्वामीजी के लेख से ही मृतकश्राद्ध को सिद्ध करने का यत्न ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य के विरुद्ध कल्पना करना, वाक्छल नहीं तो और क्या है?

स्वर्ग वा नरक मनुष्य को अपने कर्मानुसार मिलता है, किसी विशेष तिथि में मरने से नरक या स्वर्ग नहीं मिलता, अतः किसी तिथि का नाम नरक चतुर्दशी रखना पौराणिक पाखण्ड ही है। अब आप अपने घर की बात बतलाएँ, आपके यहाँ यह क्या गड़बड़ है कि—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य हि॥ ४॥

—गरुड० प्रेत० अ० २

भाषार्थ—बिना पुत्रवाले की गति नहीं है और स्वर्ग तो उसे मिल ही नहीं सकता। इसलिए जैसे-कैसे भी उपाय से पुत्र का जन्म अवश्य करना चाहिए॥ ४॥

फिर महाभारत में लिखा है कि जरत्कारु नामक ब्राह्मण ने विवाह न करके तप करना आरम्भ किया। वह घूमता-घूमता एक स्थान में गया तो—

अटमानः कदाचित् स्वान् स ददर्श पितामहान्। लम्बमानान् महागर्ते पादैरूर्ध्वैरवाङ्मुखान्॥ १५॥

कभी उसने अपने पितरों को बड़े भारी गढ़े में पाँव ऊपर और मुख नीचे करके लटकता देखा॥ १५॥

जब उसने कारण पूछा तो पितरों ने उत्तर दिया कि—

अस्माकं सन्ततिस्त्वेको जरत्कारुरिति स्मृतः। मन्दभाग्योऽल्पभाग्यानां तप एव समास्थितः॥ १९॥
न स पुत्रान् जनयितुं दारान् मूढश्चिकीर्षति। तेन लम्बामहे गर्ते सन्तानस्य क्षयादिह॥ २०॥

—महा० आदि० अ० १३

हम यायावर नाम के ऋषि हैं, हमारी एक ही औलाद जरत्कारु है, हमारे मन्दभाग्य के कारण वह मन्दभाग्य तप करने लगा॥ १८॥ वह मूढ औलाद पैदा करने के लिए स्त्री ग्रहण नहीं करता इस कारण हम सन्तान के क्षय होने से यहाँ गढ़े में लटक रहे हैं॥ १९॥

न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसञ्चितैः। तां गतिं प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो यां व्रजन्ति वै॥ २५॥

—महा० आदि० अ० १३

धर्मफल और तपों से उस गति को प्राप्त नहीं होते, जिस गति को पुत्रोंवाले प्राप्त होते हैं॥ २४॥

फिर महाभारत में लिखा है कि—

षडशीतिसहस्राणि योजनानां नराधिप। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च॥ ४६॥

—महा० वन० अ० २००

छियासी हज़ार योजन यमलोक और मनुष्यलोक में रास्ते का अन्तर है॥ ४४॥

फिर मनु ने लिखा है कि—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्। दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम्॥

—मनु० ५।१५९

अनेक सहस्र ब्रह्मचारी कुमार सन्तान पैदा करने के बिना स्वर्ग को चले गये॥ १५९॥

(१) अब देखिए गरुड कहता है पुत्र के बिना स्वर्ग नहीं मिलता, महाभारत कहता है पोते के बिना ऋषियों को उलटा लटकना पड़ा, मनु कहता है हज़ारों बिना सन्तान स्वर्ग में गये, इन तीनों बातों में से कौन-सी बात सत्य है?

(२) जब मनुष्यलोक से यमलोक छियासी हज़ार योजन दूर है तो जरत्कारु वहाँ कैसे पहुँचा जो उसने पितरों को देखा?

(३) जब पितर नज़र नहीं आते तो उस जरत्कारु को कैसे नज़र आये?

(४) जब वे यायावर ऋषि थे तो लड़के की ग़लती के कारण उनको दण्ड क्यों मिला?

(५) जब श्राद्ध आदि के धर्मफलों से वह गति नहीं मिलती जो सन्तान से मिलती है तो फिर श्राद्ध आदि व्यर्थ है, सन्तान के पैदा करने से ही गति होगी।

(६) बिना सन्तानवालों का शुभकर्म करना व्यर्थ है, क्योंकि बिना सन्तान गति तो होगी ही नहीं।

(४४१) प्रश्न—संस्कारविधि पृ० ६४, नामकरण-संस्कार में जहाँ तिथि और तिथि के देवता, नक्षत्र और नक्षत्र के देवताओं के नाम से हवन करना लिखा है, वहाँ पर मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम से भी आहुति देनी लिखी है। यहाँ पर ही अमावास्या तिथि और उसके स्वामी पितरों के नाम से हवन करना लिखा है। क्या मघा के स्वामी और अमावास्या के स्वामी पितर जिनके नाम का हवन होता है, वे जीवित आर्यसमाजी हैं? —पृ० १८, पं० ४

उत्तर—आपने जो देवता का अर्थ स्वामी लिखा है यह आपकी मिथ्या कल्पना है। देवता का अर्थ है दीप्ति, अर्थात् प्रकाशित करनेवाला, यहाँ पर नामकरण-संस्कार में जो तिथियों और नक्षत्रों के देवता लिखे हैं ये उन तिथियों और नक्षत्रों को प्रकाशित करनेवाले हैं, अर्थात् उन तिथियों तथा नक्षत्रों के ही विशेषतया प्रतिपादक हैं। दूसरे अर्थों में ये उन तिथियों तथा नक्षत्रों के ही दूसरे नाम हैं। हम इस विषय को फलित ज्योतिष और देवजाति विषय में विशेषतया सिद्ध कर आये हैं कि जैसे सिक्खों में चनों का नाम बादाम, बासी रोटी का नाम मिट्ठा, प्रसाद का नाम लखनेत्रा इत्यादि दूसरे नाम रक्खे हुए हैं, वैसे ही तिथियों और नक्षत्रों के भी ये दूसरे नाम ही हैं जिनका देवता शब्द से वर्णन किया है। इसी सिद्धान्त से तिथियों में से अमावास्या का दूसरा नाम पितर और नक्षत्रों में से मघा का दूसरा नाम पितृ है। केवल पितर या पितृ शब्द देखकर ही मृतक पितरों के श्राद्ध की कल्पना करना सर्वथा ही पागलपन है।

(१) यहाँ नामकरण-संस्कार का प्रकरण है, पितृयज्ञ का प्रकरण नहीं है। (२) यहाँ पर

तिथि के देवता पितर और नक्षत्र के देवता पितृ की अग्नि में आहुति दी जाती है, उनके नाम से ब्राह्मणों को भोजन कराने का वर्णन नहीं है। आप ब्राह्मणभोजन से पितरों की तृप्ति मानते हैं, अग्निहोत्र से नहीं। (३) यहाँ पर तिथि के देवता तथा नक्षत्र के देवता पितर वा पितृ की आहुति दी जाती है; जिसका नाम रक्खा जाए उसके पितर या उसके बाप के पितरों का कोई वर्णन नहीं है। (४) 'संस्कारविधि' के लेखक स्वामी दयानन्दजी मृतकश्राद्ध का अपने ग्रन्थों में बलपूर्वक खण्डन करते हैं। (५) लोगों के माता-पिता आदि पितर मरकर तिथि और नक्षत्रों के देवता नहीं बन जाते। (६) पितर तथा पितृ इन तिथि तथा नक्षत्रों के देवताओं की आहुतियाँ उन बच्चों के नामकरण-संस्कार में दी जाती हैं जिन बच्चों की पैदाइश अमावास्या तिथि या मघा नक्षत्रों में हुई हो, सबके नामकरण में नहीं। इन कारणों से सिद्ध है कि यहाँ पर अमावस्या तिथि का दूसरा नाम पितर तथा मघा नक्षत्र का दूसरा नाम पितृ है। यहाँ पर मृतकश्राद्धों का वर्णन नहीं है। आपके मत में तो श्राद्ध शब्द मृतकों के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है, जीवितों के लिए नहीं और विवाहादि शुभ संस्कारों में श्राद्ध शब्द का प्रयोग अकल्याण का सूचक है तब राम के विवाह में श्राद्ध क्यों किया गया और नामकरण-संस्कार-जैसे शुभ अवसर पर मृतकश्राद्ध का वर्णन क्यों आया? इस तिथि तथा नक्षत्रों के देवता की आहुति तथा श्राद्धों का वर्णन नामकरण में आपके ग्रन्थों में लिखा है, जैसेकि—

जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति। —गोभिल० २।८।१२

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पिता नाम करोति।—पारस्कर० सप्तदशकण्डिका

नामकरणनिमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिकं श्राद्धं विधाय अन्य ब्राह्मणत्रयं भोजयित्वा पिता कुमारस्य द्व्यक्षरमित्यादिनोक्तलक्षणं नाम करोति। —हरिहरभाष्य

भाषार्थ—हवन करता है प्रजापति के लिए, तिथि के लिए, नक्षत्र के लिए, उनके देवता के लिए। —गोभिल

दश दिन के पीछे ब्राह्मणों को भोजन करवाकर पिता नामकरण करता है। —पारस्कर

नामकरण के निमित्त मातृपूजा के सहित अभ्युदय के लिए श्राद्ध करके अन्य तीन ब्राह्मणों को भोजन करवाकर पिता कुमार का दो अक्षरादि लक्षणवाला नामकरण करता है। —हरिहर

बतलाइए श्रीमान्जी! मंगलकार्य नामकरण-संस्कार में यह अशुभसूचक मृतकश्राद्ध कहाँ से कूद पड़ा? अतः मानिएगा कि श्राद्ध शब्द मृतकों के लिए नहीं अपितु प्रत्येक शुभ काम में माता-पिता, ज्ञानी, पितर लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम श्राद्ध तथा उनकी तृप्ति करने का नाम तर्पण है। फिर आपके यहाँ लिखा है कि—

लंघनैर्ये मृता जीवा दंष्ट्रिभिश्चाभिघातिताः॥ १०४॥
कंठग्रेह विलग्नानां क्षीणानां तुण्डघातिनाम्। विषाग्निवृषविप्रेभ्यो विषूच्या चात्मघातकाः॥ १०५॥
पतनोद्बन्धनजलैर्मृतानां शृणु संस्थितिम्। सर्पव्याघ्रैः शृङ्गिभिश्च उपसर्गोपलोदकैः॥ १०६॥
ब्राह्मणैः श्वापदैश्चैव पतनैर्वृक्षवैद्युतैः। नखैर्लोहैर्गिरिः पातैर्भित्तिपातैर्भृगोस्तथा॥ १०७॥
खट्वायामन्तरिक्षे च चौरचाण्डालतस्तथा। उदक्याशुनकीशूद्ररजकादिविभूषिताः॥ १०८॥
ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिाष्टास्तु ये मृताः। शस्त्रघातैर्मृता ये चास्य श्वस्पृष्टास्तथैव च॥ १०९॥
तत्तु दुर्मरणं ज्ञेयं यच्च जातं विधिं विना। तेन पापेन नरकान् भुक्त्वा प्रेतत्वभागिनः॥ ११०॥
न तेषां कारयेद्दाहं सूतकं नोदकक्रियाम्। न विधानं मृताद्यं च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्॥ १११॥
न पिण्डदानं कर्त्तव्यं प्रमादाच्चेत् करोति हि। नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति॥ ११२॥

—गरुड० प्रेत० अ० ४

भाषार्थ—जो जीव उपवास से मरें, जिनको दरिन्दों ने मारा हो॥ १०४॥ जिनको गला घोंटकर मारा हो, तुण्डघाती जानवरों ने जिनको मारा हो, ज़हर, अग्नि, बैल, तथा ब्राह्मणों ने जिनको मारा हो, जो हैज़े से मरे हों, जो आत्मघाती हों॥ १०५॥ जो गिरने से, बाँधने से और जलों से मरे हों, उनकी स्थिति सुनो! साँप, भेड़िये, सींगवाले जानवरों ने जिनको मार दिया हो, भूचाल, पहाड़ फटने और पानी के बहाव से जो मरे हों॥ १०६॥ जो ब्राह्मणों से, जंगली जानवरों से या वृक्ष वा बिजली गिरने से मरे हों। नाखुनों से, लोहे से, पर्वत गिरने से जिनकी मृत्यु हो गई हो, दीवारों के गिरने से जिनकी मौत हुई हो, जो पहाड़ से गिरकर मरे हों॥ १०७॥ जो खाट में पड़कर मरा हो, अन्तरिक्ष में मरा हो, जो चोर और चाण्डाल से मारा गया हो, जो ऋतुमती, चाण्डाली, शूद्रा, धोबन के सम्बन्ध से मरा हो॥ १०८॥ जो ऊपर से उच्छिष्ट, नीचे से उच्छिष्ट मरे, जो शस्त्रों के घात से मरे, जो कुत्ते के काटने से मरे हों॥ १०९॥ ये सब अशुभ मौतें हैं और जिनको मौत विधि के बिना हुई हो वे सब पापों के कारण नरक को भोगकर प्रेतयोनि को प्राप्त होते हैं॥ ११०॥ उन सबका दाह-संस्कार न करे; न सूतक, न पिण्ड-तर्पण और न मृतक का विधान और न उनका क्रियाकर्म करे॥ १११॥ न पिण्डदान करना चाहिए। यदि कोई भूलकर करता है तो वह सब-कुछ मृतकों को प्राप्त नहीं होता, आकाश में ही नष्ट हो जाता है॥ ११२॥

कहिए महाराज! इस गरुड के लेखानुसार आप चलते हैं या नहीं? और क्या यह लेख युक्तियुक्त है? तो क्या आपके विचार से कोयटा के भूचाल में मरनेवाले सब नरक में जाकर प्रेत बनेंगे? और उनके सम्बन्धियों को तो आप क्रियाकर्म, पिण्डदान, गतिकरण, श्राद्ध आदि कराकर न ठगेंगे?

(४४२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश० पृ० ९८ में लिखा है कि—

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः, यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः, पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः, पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः, प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमः, मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः, पितामहीं तर्पयामि। प्रपितामह्यै स्वधा नमः, प्रपितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः, स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः, सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः, सगोत्राँस्तर्पयामि।

हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि यह तर्पण क्या जीवित पितरों का है? यदि सच ही जीवितों का है तो आर्यसमाजी बतलावें कि कौन-कौन आर्यसमाजी सोमसद हैं, जिनका यह तर्पण है? और अग्निष्वात्त पितर कौन हैं? किस-किस आर्यसमाजी के बाप-दादा बर्हिषद हैं? कौन-कौन आर्यसमाजी अपने पितरों को हविर्भुक् मानते हैं? किस-किस आर्यसमाजी ने अपने पितरों का नाम आज्यपा रक्खा है? जब इन शब्दों के अर्थ किये जाएँगे और इन पितरों का निवासस्थान पूछा जाएगा एवं जब यह सवाल होगा कि वे पितर कौन हैं जो बिलकुल अन्न नहीं खाते, केवल आज्यपा हैं—घी पीकर रहते हैं? इतना पूछते ही आर्यसमाजियों को मूक हो जाना पड़ता है।

—पृ० १८, पं० १२

उत्तर—'चे बाक अस्त दुज़दे कि बकफ़ चराग़ दारद'—'कैसा चालाक चोर है कि हाथ में दीपक रखता है'—यह दृष्टान्त आपपर ही घटित होता है। सत्यार्थप्रकाश में उपर्युक्त 'पितृतर्पण' का पाठ देकर स्वामीजी ने उसके नीचे ही अक्षरशः अर्थ लिखा है। आप उसे श्राद्ध के लड्डू की भाँति हड़प कर गये और फिर हमसे पूछने लगे कि बताओ सोमसद आदि पितर कौन हैं?

आपने अपनी इसी पुस्तक के पृ० २९४ पर श्राद्धप्रकरण में स्वामीजी का मत दिखाते हुए यह पाठ नक़ल किया है और हमने. आपके इन आक्षेपों का उत्तर प्रश्न ४३२ से ४३८ तक में विस्तारपूर्वक दे दिया है। वहाँ से देख लें। श्रीमान्‌जी श्राद्ध और तर्पण जीवित पितरों का ही होता है मृतकों का नहीं, और सोमसद आदि नाम भी जीवित पितरों के ही हैं, मृतकों के नहीं हैं। इन शब्दों के अर्थ इसी स्थान में सत्यार्थप्रकाश में विद्यमान हैं जिनका खण्डन करने में आप असमर्थ रहे हैं और वे सब पितर रक्षक, ज्ञानी इसी पृथिवी पर ही निवास करते हैं। यदि आपको उनके श्राद्ध-तर्पण करने की इच्छा हो तो हम बता सकते हैं। यों आधा पाठ देकर और आधा चुराकर जनता को धोखा देना विद्वनों को शोभा नहीं देता, किन्तु यह आपके बस की बात नहीं, आप लोगों ने तो अपना पेशा ही जनता को धोखा दे, उन्हें ठगकर खाने का बना रक्खा है। देखिए, आपकी एक दिन-दहाड़े की ठगी बतलाते हैं। गरुडपुराण में लिखा है कि—

'यदि कोई मनुष्य परदेश गया हुआ हो और उसका कोई पता न लगे, मृत्यु का विश्वास हो जावे तो उसके मोक्ष के लिए नारायण-बली करे। उसकी विधि यह है कि काले मृग की खाल लेकर ज़मीन पर बिछावे। उसके ऊपर उस आदमी का पुतला बनावे, ढाक के पत्तों की ३६० डण्डियाँ ले-आवे, उनको हड्डियों के स्थान में लगावे। मांस के स्थान में जौ का आटा, लहू के स्थान में शहद भर दे, शिर के स्थान में नारियल तथा तालु के स्थान में तूंबा लगावे, जिह्वा के स्थान में केला, आँखों के स्थान में कौड़ियाँ, दाँतों के स्थान में अनारदाना, अण्डकोशों के स्थान में बैंगन तथा लिंग के स्थान में गाजर लगावे, इत्यादि। जब पुतला तैयार हो जावे तो उसे विधिपूर्वक जला देवे तथा ब्राह्मणों को गौ, तिल, लोहा, सोना, कपास, नमक आदि दान देवे। इस प्रकार से उसका मोक्ष हो जावेगा, और यदि—

मृतभ्रान्त्या प्रतिकृतेः कृते दाहे स वै यदि॥ १६८॥
आयाति तेन कर्त्तव्यं मज्जनं घृतकुण्डके। जातकर्मादिसंस्काराः कर्त्तव्या पुनरेव तु॥ १६९॥
ऊढामेव स्वकां भार्यामुद्वहेद्विधिवत्पुमान्। वर्षे पञ्चदशे पक्षिन् द्वादशे वा गते सति॥ १७०॥

—गरुड० प्रेत० अ० ४

भाषार्थ—मरने की भ्रान्ति से पुतले के दाह करने के पश्चात् यदि॥ १६८॥ वह आ जावे तो उसे घी के कुण्ड में डुबोवे और उसके फिर से जातकर्म आदि संस्कार करने चाहिएँ॥ १६९॥ और उसकी ब्याहता स्त्री का पन्द्रह या बारह वर्ष के पीछे विधिपूर्वक फिर से विवाह करना चाहिए॥ १७०॥

कहिए महाराज! इस ठगी का कहीं दुनिया में ठिकाना है? जब वह खोया गया तो उसको मोक्ष के बहाने से लूटा, और जब मिल गया तो प्रायश्चित्त के बहाने लूट मचाई, किन्तु अब जनता की आँखें खुल गई हैं; अब आपकी इन मृतकश्राद्ध आदि सारी ठगियों की पोल खुल चुकी है। अब जनता अधिक दिनों तक भ्रम में नहीं रह सकती।

(४४३) प्रश्न—संस्कारविधि पृ० ९९ बलिदान में लिखा है कि—

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।

इस मन्त्र को पढ़कर एक ग्रास भोग पितरों के लिए दक्षिण दिशा में रख दे। क्या यह दान जीवित पितरों के लिए रक्खा जाता है? दक्षिण की ओर क्यों? क्या समस्त जीवित पितरों के लिए एक ग्रास पर्याप्त है? यह जीवित पितरों का श्राद्ध है या फाँसी? —पृ० १९, पं० ५

उत्तर—प्रतीत होता है कि मृतकों का अन्न खाने से आपकी बुद्धि इतनी मलिन हो गई है कि आपको पितृ शब्द के देखते ही जैसे 'श्रावण में अन्धे हुए पुरुषों को चारों ओर हरा-ही-हरा नज़र आता है' वैसे ही मृतकश्राद्धों की याद आ जाती है। श्रीमान्‌जी! स्वामीजी ने यह सारा

प्रकरण बलिवैश्वदेवयज्ञ का मनु० अ० ३ श्लोक ८४ से ९२ से लेकर लिखा है। चुनांचे मनु० ३।९१ में—

पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत्॥ ९१॥

शेष अन्न की बलि दक्षिण की ओर पितरों के लिए देवे॥ ९१॥ ऐसा लिखा है—

निम्न हेतुओं से यहाँ मृतकश्राद्ध का वर्णन नहीं है—

(१) मनु ने भी और स्वामीजी ने भी यह मन्त्र बलिवैश्वदेवयज्ञ में दिया है, पितृयज्ञ में नहीं दिया।

(२) श्राद्ध का विषय पितृयज्ञान्तर्गत है, बलिवैश्वदेवान्तर्गत नहीं है।

(३) स्वामीजी ने इससे पूर्व पितृयज्ञ का वर्णन करते हुए लिखा है कि "अग्निहोत्र की विधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे, अर्थात् जीते हुए माता-पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है।"

(४) बलिवैश्वदेवयज्ञ का प्रयोजन पितरों को तृप्त करना नहीं है, अपितु 'जो अज्ञात-अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार कर देना' है। जैसाकि मनु० ३।८१ में भी लिखा है कि '**भूतानि बलिकर्मणा**' बलिकर्म में भूतों, अर्थात् प्राणियों का प्रत्युपकार करना प्रयोजन है।

(५) संस्कारविधि में 'भोग' शब्द नहीं है, आपने अपनी ओर से बढ़ा दिया है।

(६) संस्कारविधि के कर्त्ता ने इससे पूर्व स्पष्ट शब्दों में जीते हुए माता-पिता की सेवा का नाम पितृयज्ञ या श्राद्ध-तर्पण माना है, अतः बलिवैश्वदेवयज्ञ से मृतकश्राद्ध की कल्पना ग्रन्थकर्त्ता के अभिप्राय के विरुद्ध वाक्छल ही है।

श्रीमान्‌जी! यहाँ पर पितर नाम ऋतुओं का और पञ्चमहायज्ञों का है। नं० ४३१।५ पर हम सिद्ध कर आये हैं कि ऋतुओं का नाम पितर है। और सम्पूर्ण प्रजा का पालन, रक्षण करनेवाले होने से पञ्चमहायज्ञों का नाम भी पितर है, अतः इसके यह अर्थ हुए कि 'वर्षभर की सम्पूर्ण ऋतुओं में ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ आदि कर्म करते हुए जो अज्ञात, अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसके प्रत्युपकार के लिए मैं इस अन्न की बलि देता हूँ'। इस बलिवैश्वदेवयज्ञ में जो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं में भाग रखने का विधान है यह केवल मर्यादार्थ है, अर्थात् सम्पूर्ण समाज के काम करने की एक ही विधि हो, भिन्न-भिन्न विधियाँ न हों। इस बलिवैश्वदेवयज्ञ के अन्त में लिखा है कि—

'इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आ जाए तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना'।

अतः इस बलिवैश्वदेवयज्ञ से प्रकरण के विरुद्ध मृतकश्राद्ध को सिद्ध करने का यत्न असम्भव तथा निर्मूल कल्पना है।

आप जिन मृतकश्राद्धों की सिद्धि में आत्मघात पाप के भागी बन रहे हैं, उनसे कोई लाभ तो है नहीं, देखिए—

ददाति यत् पार्थिव यत्करोति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति।
न तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो नान्यस्तदश्नाति स एव कर्त्ता॥ २२॥

—महा० उद्योग० अ० १२३

आत्मनैव कृतं कर्म ह्यात्मनैवोपभुज्यते। इह वा प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम्॥ ४॥

—महा० भीष्म० प्र० ७७

भावार्थ—हे राजन्! मनुष्य जो दान देता है, जो तप करता है और जो हवन-यज्ञ करता

है, उस किये हुए का नाश नहीं होता, न वह घटता है, न उसे कोई भोग सकता है। वह कर्म करनेवाला ही उन कर्मों के फल को भोगता है॥ २२॥ आत्मा से, अर्थात् स्वयं किया हुआ कर्म आत्मा से ही, अर्थात् स्वयं ही भोगता है। चाहे इस जगत् में चाहे परलोक में अपना किया ही भोगता है। हे राजन्! आपने जैसा किया वैसा ही प्राप्त कर लिया॥ ४॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कर्मों का फल कर्त्ता को ही मिलता है। अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं मिल सकता, अतः मृतक पितरों की तृप्ति की आशा करना सर्वथैव निर्मूल तथा मिथ्या कल्पना है।

(४४४) प्रश्न—संस्कारविधि पृ० ११४ समावर्तन-प्रकरण में लिखा है कि 'हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख होके **'ओं पितरः शुन्धध्वम्'** इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ दे'। यदि श्राद्ध-तर्पण जीवित पितरों का ही होता तो फिर हाथ में जल लेना कैसा? आर्यसमाजियों के घरों में लोटा, ग्लास, कटोरी, कुछ भी नहीं रहता। अपसव्य होना, जनेऊ को दक्षिण कन्धे से हटाकर बायें कन्धे पर धरना यह कोई आर्यसमाज की सभ्यता है या इसमें कोई गूढ फ़िलासफ़ी है? वेदादि सच्छास्त्रों में तो मृतक पितरों को अन्न-जल देने पर ही अपसव्य होना लिखा है। दक्षिण की तरफ मुँह करके यह क्यों? आर्यसमाजियो! तुम हमें मूर्ख मत बनाओ, यह मत कहो कि यह तर्पण जीवित पितरों का होता है। —पृ० १९, पं० २३

उत्तर—आपके सिर पर मृतकश्राद्ध की सिद्धि का पागलपन बहुत बुरी तरह से सवार हुआ है, इसलिए पितर शब्द के देखते ही आप झट कह उठते हैं कि 'यह लो मृतकश्राद्ध सिद्ध हो गया'। श्रीमान्‌जी! यहाँ समावर्तन-संस्कार है, पितृयज्ञ का विषय नहीं है, और न ही यहाँ पर पितरों के श्राद्ध वा तर्पण का प्रयोजन है। यहाँ पर अपसव्य होने के अर्थ यज्ञोपवीत को बायें कन्धे पर करने के नहीं हैं, अपितु बायीं ओर खड़े होने के हैं, जैसाकि महाभारत में आता है कि—

(१) **अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव। वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभवलक्षणम्॥ १७॥**
—महा० उद्योग० अ० १४२

(२) **ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते। रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ॥ १७॥**
—महा० भीष्म० अ० ३

(३) **अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम्। अवाक्शिराश्च भगवाननुपातिष्ठत चन्द्रमाः॥ १२॥**
—महा० भीष्म० अ० ११३

(४) **गोमायवश्च प्राक्रोशन् भयदा दारुणाः खगाः।**
अकार्षुरपसव्यञ्च बहुशः पृतनां तव॥ ३७॥ —महा० द्रोण० अ० ७

(५) **तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम्। चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः॥ २८॥**
—महा० द्रोण० अ० २८

(६) **अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम्॥ ५१॥**
अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा॥ ५२॥ —महा० द्रोण० अ० १८७

(७) **अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम्॥ १७॥** —महा० कर्ण० अ० १५

(८) **मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव। अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम्॥ ६॥**
—कर्ण० अ० ३७

(९) **ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान्॥ ९१॥**
—महा० कर्ण० अ० ७९

भाषार्थ—(१) हे केशव! सारे मृग दुर्योधन की बायीं ओर थे और शरीर-रहित वाणियाँ सुनाई देती थीं। यह पराजय का लक्षण है। (२) निश्चयरूप से घोर प्रचण्ड अग्नि बायीं ओर वर्त्तमान है और रोहिणी को सूर्य और चाँद दोनों पीड़ित कर रहे थे। (३) सब ग्रहों ने सूर्य को बायीं ओर कर दिया और चन्द्रमा नीचे को सिर किये वर्त्तमान है। (४) चीखते हुए गीदड़ और क्रूर-भयप्रद बहुत-से पक्षी तेरी सेना को बायीं ओर कर रहे हैं। (५) उस क्रोध में आये हुए काल के समान आक्रमण करते हुए हाथी को देखकर श्रीकृष्ण ने तुरन्त रथ से बायीं ओर कर दिया। (६) उसके पश्चात् तेरे पुत्र दुर्योधन को माद्री के पुत्र सहदेव ने बायीं ओर कर दिया। तेरे क्रोधी भतीजे ने युद्ध में उसे बायीं ओर कर दिया। (७) उसके पश्चात् वहाँ अश्वत्थामा ने भीम को बायीं ओर कर दिया। (८) बहुत-से मृग और पक्षियों ने महाभय प्रकट करते हुए तब तेरी सेना को बायीं ओर कर दिया। (९) उसके पश्चात् शीघ्रता से कृष्ण ने व्याकुल शत्रुओं को अर्जुन के रथ से बायीं ओर कर दिया।

कहिए महाराज! इन प्रकरणों में कहीं मृतक पितरों का तथा उनको अन्न-जल देने का चिह्न भी है और क्या यहाँ पर अपसव्य करने के अर्थ यज्ञोपवीत को दायें से बायें करने के किये जा सकते हैं? कदापि नहीं, अत: अपसव्य होने या करने के अर्थ बायीं ओर होने या करने के बिना और कुछ भी नहीं हो सकते। यज्ञोपवीत को दायें कन्धे से बायें कन्धे पर करना केवल पौराणिक पाखण्डियों की मिथ्या कल्पना ही है।

यहाँ पर दक्षिणमुख होने के अर्थ दक्षिण दिशा में मुख करने के नहीं हैं, अपितु दायीं ओर मुख करने के हैं। यदि कोई मनुष्य किसी के बायीं ओर खड़ा होकर प्रार्थना करना चाहता है तो स्वाभाविक रूप से ही उसे दायीं ओर मुख करके खड़ा होना पड़ेगा और दिशा में मुख करने से पितर सामने ही नहीं रहते।

अत: समावर्तन-संस्कार के समय ब्रह्मचारी हाथ में जल लेकर पितरों के बायीं ओर अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, अध्यापक, ज्ञानियों के बायीं ओर खड़े होकर और दायीं ओर मुख करके उनसे प्रार्थना करता है कि '**पितरः शुन्धध्वम्**' हे आचार्य, अध्यापक, उपदेशक, ज्ञानी, पितर लोगो! आप स्वयं इस जल के समान शुद्ध और शान्त होने का उपदेश और आशीर्वाद देकर शुद्ध और शान्त कीजिए, यह प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ देता है।

कहिए महाराज! इसमें से मृतकश्राद्ध कहाँ से टपक पड़ा? श्रीमान्‌जी! जिस मृतकश्राद्ध की आप वकालत कर रहे हैं उसकी निश्चित परिस्थिति क्या है, इसका आप ठीक रूप से वर्णन नहीं कर सकते। गरुडपुराण में लिखा है कि पिण्डों से मृतक पितरों का शरीर बनता है, जैसाकि—

अहोरात्रैस्तु नवभिर्देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्। शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥ ३३॥
द्वितीयेन तु कर्णाक्षी नासिकं तु समासतः। गलांसभुजवक्षश्च तृतीयेन तथा क्रमात्॥ ३४॥
चतुर्थेन च पिण्डेन नाभिलिङ्गं गुदं तथा। जानुजंघं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥ ३५॥
सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः। दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च॥ ३६॥
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्ता क्षुद्विपर्ययः॥ ३७॥ —गरुड० प्रेत० अ० ५

भाषार्थ—नौ दिन-रात में देह सम्पूर्ण हो जाता है। पहले पिण्ड से मृतात्मा का सिर बनता है, दूसरे से कान, आँख और नाक, तीसरे से क्रम से गर्दन, पसली,बाहु, छाती, चौथे से नाभि, लिङ्ग और गुदा, पाँचवें से सदा घुटने, टाँगें और पाँव, छठे से सब मर्मस्थान, सातवें से नाडियाँ, आठवें से दाँत और बाल, नौवें से वीर्य, दशवें पिण्ड से पूर्णता को प्राप्त होता है।

अध्याय १५ तथा ३४ में भी ऐसे ही वर्णन हैं और तीनों लेखों में मतभेद है। भला, सोचिए तो सही, क्या पितरों का शरीर तुम्हारे पिण्डदान से बनता है वा परमात्मा के नियम से? जिनके

पिण्ड नहीं दिये जाते क्या उनका शरीर नहीं बनता? यदि बनता है तो तुम्हारा पिण्डदान व्यर्थ क्रिया नहीं तो क्या है? देखिए, शास्त्रों में पिण्ड नाम भोजन का है, जैसाकि—

(१) **ततो दुःखतरं किन्नु यदहं हीनबान्धवा।**
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वा मित्रनन्दनम्॥ ३३॥ —महा० उद्योग० अ० १३२

(२) **अन्याँश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते।**
दुर्योधनहितार्थाय भर्त्तुः पिण्डमनुस्मरन्॥ ६७॥ —महा० भीष्म० अ० ७७

(३) **द्रोणस्य च महाबाहो कृपस्य च महात्मनः॥ १५॥**
अवश्यं राजपिण्डस्तैर्निर्वेश्य इति मे मतिः॥ १६॥ —महा० वन० अ० ३६

(४) **यावतो हि अन्धसः पिण्डानश्नाति सततं द्विजम्॥ ३४॥**
तावतां गोसहस्राणां फलं प्राप्नोति दायकः॥ ३५॥ —महा० वन० अ० १९३

भाषार्थ—(१) कुन्ती ने कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को सन्देश दिया कि—'इसे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है कि मैं बन्धुओं से हीन हुई तुझ मित्रों को आनन्द देनेवाले को पैदा करके भी दूसरों के भोजन की ओर देखती हूँ! (२) दुर्योधन के हित के लिए और स्वामी के भोजन को याद करते हुए द्रोणाचार्य ने अर्जुन की ओर सैकड़ों बाण छोड़े। (३) युधिष्ठिर ने भीम से कहा कि मेरी सम्मति है कि महाभुज द्रोण और महात्मा कृपाचार्य अवश्य ही राजा के भोजन का ख़याल रखकर दुर्योधन का साथ देंगे। (४) जितने भी अन्न के ग्रासों को ब्राह्मण खाता है देनेवाला उतने हज़ार गोदान का फल पाता है।

इन सम्पूर्ण प्रमाणों में पिण्ड नाम भोजन, अन्न और अन्न के ग्रास का है, पौराणिकों से कल्पित मृतकों के शरीर को निर्माण करनेवाले पिण्डों का वर्णन नहीं है। हमने इस प्रकरण में सिद्ध कर दिया है कि—

(१) जीवों का मरने पर माता-पिता आदि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता।
(२) पितर शब्द जीवितों के लिए चरितार्थ हो सकता है, मृतकों के लिए नहीं।
(३) किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलता है, टलता नहीं।
(४) कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है, अन्य को नहीं।
(५) अन्य के कर्मों का फल अन्य को नहीं मिलता।
(६) श्राद्ध, पिण्ड, तर्पण आदि सब शब्द जीवितों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

अतः जीवित पितरों की श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम श्राद्ध तथा उनको तृप्त करने का नाम तर्पण है। मृतकपितरों का श्राद्ध-तर्पण वेदविरुद्ध, पौराणिक कल्पना है, जो सर्वथा मिथ्या है।

पत्यन्तर्विधान

(अर्थात् पुनर्विवाह, विधवा-विवाह, नियोग, करेवा, चादरदाज़ी आदि)

(४४५) प्रश्न—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २२३ में लिखा है कि—

''नियोग करने में ऐसा नियम है कि जिस स्त्री का पुरुष वा किसी पुरुष की स्त्री मर जाए अथवा उनमें किसी प्रकार का रोग हो जाए वा नपुंसक, बन्ध्यादोष पड़ जाए और उनकी युवावस्था हो तथा सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उस अवस्था में उनका नियोग होना अवश्य चाहिए''। यह भी नहीं बतलाया कि 'नियोग अवश्य करना चाहिए' यह लेख कहाँ लिखा है? इस चालबाज़ी से लेख लिखा गया है कि लेख पढ़नेवाला मनुष्य यह समझे कि नियोग अवश्य होने का नियम वेद में है, किन्तु भूतल पर इस लेख को वैदिक सिद्ध करनेवाला कोई मनुष्य पैदा नहीं हआ।

—पृ० ४३, पं० १९

उत्तर—'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' यह लोकोक्ति आपपर ही घटित होती है। ऋषि दयानन्दजी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नियोग-प्रकरण में प्रथम **'कुहस्विद्दोषा'**, **'इयं नारी'**, **'उदीर्ष्व नारी'**—ये तीन मन्त्र देने के पश्चात् उपर्युक्त लेख लिखा है, जिसको आपने अपने स्वभाव के अनुसार चुरा लिया है। स्वामीजी ने 'नियोग अवश्य होना चाहिए' के साथ निम्न शर्तें लगाई हैं—

(१) किसी पुरुष की स्त्री वा स्त्री का पुरुष मर जाए।

(२) उनमें किसी प्रकार का स्थिर रोग हो जाए।

(३) नपुंसकता अथवा बन्ध्यापन दोष पड़ जाए।

(४) उनकी युवावस्था हो।

(५) सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो।

तो इन अवस्थाओं में उनका नियोग होना अवश्य चाहिए।

स्वामीजी ने उपर्युक्त तीन मन्त्रों की यह व्याख्या की है। उपर्युक्त मन्त्रों में स्त्री को दूसरे पति का हक़ स्वीकार किया गया है। वह हक़ किन अवस्थाओं में प्रयोग करना चाहिए यह व्याख्या स्वामीजी ने वर्णन की है और वह वेदानुकूल है। यही वेदानुकूल लेख मनु [९।१६७] ने भी लिखा है कि—

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः॥ १६७॥

यो मृतस्य नपुंसकस्य प्रसवविरोधिव्याध्युपेतस्य वा भार्यायां घृताक्तत्वादिनियोगधर्मेण गुरुनियुक्तायां जातः स क्षेत्रजः पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः॥ १६७॥ —कुल्लूक

भाषार्थ—मरे हुए, नपुंसक, प्रसवविरोधि बीमारी से युक्त पुरुष की स्त्री में घृत आदि लगाकर नियोगधर्म से गुरु की आज्ञा से नियोग करनेवाली में पैदा हुए पुत्र का नाम क्षेत्रज है।

महाभारत में भी इसकी पुष्टि की है कि—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्॥ ६॥[१] —महा० आदि० अ० १०४

उत्तमाद्देवरात् पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि॥ ३६॥[२]

अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवा। आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ३७॥

—महा० आदि० अ० १२०

भाषार्थ—नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही होता है, यह वेदों में निश्चित है॥ ६॥ लोग आपत्तिकाल में उत्तम देवर से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा करते हैं॥ ३६॥ मनुष्य नियोग से श्रेष्ठ धर्म के फल देनेवाले पुत्र को प्राप्त होते हैं। हे कुन्ति! वह पुत्र अपने वीर्य से पैदा हुए पुत्र से भी श्रेष्ठ है, यह मनुजी महाराज कहते हैं॥ ३७॥

अब हम यहाँ उन मन्त्रों की व्याख्या कर देते हैं, जिनके आधार पर स्वामीजी ने नियोग का प्रतिपादन किया है—

---

१. यह श्लोक गीताप्रेस संस्करण में नहीं है। वि० सं० १९९२ में छपे महाभारत प्रकाशक मण्डल, चाँदनी चौक, दिल्ली, संस्करण में है। गीता० सं० में से एक पूरे-का-पूरा अध्याय निकाल दिया गया है। —सं०

२. यह श्लोक गीता० संस्करण में किञ्चित पाठभेद से अ० ११९का ३५वाँ श्लोक है। —सं०

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्त्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥

—ऋ० १०।४०।२

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो! तुम दोनों ने रात्रि में कहाँ निवास किया था, तथा दिन में कहाँ बसे थे? तुमने अन्न, वस्त्र, धन, आदि की प्राप्ति कहाँ की थी? तुम्हारा निवासस्थान कहाँ है? रात्रि में तुम कहाँ शयन करते हो? जैसे विधवा स्त्री देवर के साथ सन्तानोत्पत्ति करती है वैसे तुम भी करो? जैसे विवाहित मनुष्य को समान स्थान में सन्तान के लिए विवाहित स्त्री स्वीकार करती है॥ २॥

इसपर निरुक्तकार लिखते हैं कि '**देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते**'—देवर को देवर क्यों कहते हैं, इसलिए कि वह विधवा का दूसरा वर है।

सायणाचार्य ने भी स्वामीजी के इस अर्थ की पुष्टि करते हुए निरुक्त के उपर्युक्त पाठ को उद्धृत किया है तथा निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने भी '**विधवेव देवरम्**' तथा '**मर्यं न योषा**' की व्याख्या करते हुए स्वामीजी के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है, जैसेकि—

सायणभाष्य—**हे अश्विना अश्विनौ कुहस्वित् क्वचित् दोषा रात्रौ भवथः इति शेषः। कुह वस्तोः क्व वा दिवा भवथः। कुह क्व वा अभिपित्त्वं अभिप्राप्तिं करतः कुरुथः। कुह क्व वा ऊषतुः वसथः। किञ्च युवां वां क्व यजमानः सधस्थे सहस्थाने वेद्याख्ये आकृणुते आकुरुते। परिचरणार्थमात्मानमभिमुखीकरोति। तत्र दृष्टान्तौ दर्शयति। शयुत्रा शयने विधवेव यथा मृतभर्तृका नारी देवरं भर्तृभ्रातरमभिमुखीकरोति। मर्यं न यथा च सर्वं मनुष्यं योषा सर्वा नारी सम्भोगकालेऽभिमुखीकरोति तद्वदित्यर्थः। तथा च यास्कः क्वस्विद्रात्रौ भवतः क्व दिवा क्वाभिप्राप्तिं कुरुथः क्व वसथः। को वां शयने विधवेव देवरम्। देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते। विधवा विधातृका भवति विधवनाद्वा, विधावनाद्वेति चर्मशिरा अपि वा धव इति मनुष्यनाम तद्वियोगाद्विधवा। देवरो दीव्यति कर्मा। मर्या मनुष्यो मरणधर्मा। योषा यौतेराकुरुते सहस्थाने (निरु० ३।१५) इति।**

दुर्गाचार्य—**शयुत्रा शयने किं विधवा इव देवरम् यथा विधवा मृतभर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवरमुपचरति, स हि परकीयत्वात् नार्या दुराराध्यतरो भवतीति यत्नेनोपचर्यते न तथा निजो भर्ता। तस्मात्तेनोपमिमीते अश्विनौ। तथा मर्यं मनुष्यं देवरं सैव मृतभर्तृका योषा आकृणुत आभिमुख्येन कुरुते। को वाम् एवं आभिमुख्येन सधस्थे सह स्थाने समाने सहयोगिनावात्मना कृत्वा परिचचार।**

भाषार्थ—हे अश्विनौ! तुम दोनों रात्रि में कहाँ होते हो, और दिन में कहाँ होते हो, और कहाँ प्राप्ति करते हो, तुम दोनों को कौन यजमान वेदी में सेवा करने के लिए सन्मुख होता है? यहाँ दो दृष्टान्त दिखाता है। जैसे सोने के स्थान में विधवा स्त्री पति के भाई को अभिमुख करती है और जैसे सब मनुष्यों को स्त्रियाँ सम्मुख करती हैं, उसी प्रकार से, इत्यादि। —सायणभाष्य

चारपाई पर क्या जैसे कोई विधवा स्त्री सेज पर अत्यन्त एकान्त में यत्न से देवर को प्रसन्न करती है, वह दूसरी स्त्री का पति होने से विधवा स्त्री से प्रसन्न करना बहुत कठिन होता है, इसलिए यत्न से प्रसन्न करती है वैसे अपने पति को नहीं। इसलिए उसे अश्विनीकुमारों की उपमा दी है और मनुष्य देवर को वही विधवा स्त्री सम्मुख करती है। आप कौन हैं, ऐसे सम्मुख करके समान स्थान में आत्मा से संयोग करके सेवा करती है। —दुर्गाचार्य

और महामहोपाध्याय शिवदत्त शास्त्री, प्रधानाध्यापक, ओरियण्टल कालेज, लाहौर ने भी निरुक्त पर टिप्पणी करते हुए इस मन्त्र पर लिखा है कि—

एवं च चतस्रो गतयो विधवानां प्रतिभान्ति। तत्र पत्यौ प्रेते ब्रह्मचारिणी उत्तमा ब्रह्मचर्ये स्थातुमसमर्था पतिमनुगच्छन्ती मध्यमा। ब्रह्मचर्यपत्यनुगमनयोरसमर्था पुनर्भूत्वमङ्गीकुर्वती अधमा। पुनर्भूत्वमप्यनङ्गीकुर्वती व्यभिचारजातगर्भादिनिःसार्यती अधमाधमा। एवं चतुर्विधासु विधवागतिषु तिस्रो गतीरुत्तममध्यमाधमा उपदिदेशायं मन्त्रः। न त्वधमाधमगतिं चतुर्थीमिति सर्वमनवद्यम्। निरुक्त अ० २, खं० १५

भाषार्थ—इस प्रकार से विधवाओं की चार गतियाँ प्रतीत होती हैं। उनमें से पति के मरने पर जो ब्रह्मचारिणी रहे वह उत्तम, जो ब्रह्मचर्य में स्थिर रहने में असमर्थ हो पति के साथ सती हो जाए, वह मध्यमा जो ब्रह्मचर्य में रहने तथा सती होने में असमर्थ हो और पुनर्विवाह कर ले वह अधम, जो पुनर्विवाह भी न करके व्यभिचार से हुए गर्भादि को निकालनेवाली, गर्भपात के अधिक दोष के कारण अधमाधम। इस प्रकार से विधवाओं की चार गतियों में से पहली तीन उत्तम, मध्यम, अधम का यह मन्त्र उपदेश करता है। चौथी अधमाधम गति का नहीं, यह सब निर्विवाद है।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥

—अथर्व० १८।३।१

भाषार्थ—यह विधवा स्त्री मरे हुए पति को छोड़कर पतिसुख को स्वीकार करना चाहती हुई हे मनुष्य! तुझे पति प्राप्त करती है। तेरे पास नियोगविधान से प्राप्त होती है। उसको तू ग्रहण कर, इसमें सन्तान पैदा कर। कैसी वह स्त्री? वेदप्रतिपाद्य सनातनधर्म का पालन करती हुई, तुझे नियोग से पति स्वीकार करती है। तू भी इसको स्वीकार कर। उस विधवा के लिए इस समय वा लोक में सन्तान उत्पन्न कर और इसमें वीर्य धारण कर, अर्थात् इसमें गर्भाधान कर।

'उदीर्ष्व नारि' इसका अर्थ आगे चलकर करेंगे।

हमने सिद्ध कर दिया कि स्वामीजी का उपर्युक्त लेख वेद के अनुकूल है। क्या भूतल पर कोई एक भी ऐसा मनुष्य पैदा हुआ है जो चारों वेदों में से एक वेदमन्त्र भी पेश करके स्वामीजी के लेख को वेदविरुद्ध सिद्ध कर सके?

(४४६) प्रश्न—द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पृ० ११० में लिखा है कि—

'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाए तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे।

संसार के ग्रन्थों में से किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार का नियोग नहीं मिलता। इस गूढ़ फ़िलासफ़ी का असली तत्त्व हमारी समझ में नहीं आया। इसमें लिखा है कि 'गर्भ की दशा में किसी स्त्री से न रहा जाए तो वह किसी दूसरे पुरुष के साथ भोग करे।' क्यों, ऐसा क्यों किया जाए? अपने पति से भोग करे तो ज़हर चढ़ जावे। और फिर एक लड़का पैदा करके उस भोग करनेवाले को दे दे। पेट में पहले से ही एक लड़का बैठा है, फिर इस दूसरे को कहाँ रक्खे? सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाए' इसके स्थान में 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाए' बदलकर ऐसा कर दिया। यह बदला हुआ पाठ भी वैदिक नहीं है। वैदिक होने का भ्रम अब भी उसमें ज्यों-का-त्यों है।

—पृ० ४४, पं० ३

उत्तर—स्वामीजी के हस्तलिखित सत्यार्थप्रकाश में पाठ इस प्रकार है—

प्रश्न—'जब एक विवाह होगा, एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष होगा,

तब स्त्री गर्भवती, स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो, रहा न जाए, तो फिर क्या करें?'

उत्तर—''इसका प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाए तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें।''

(१) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश छपने में 'दीर्घरोगी पुरुष की' यह छपने में रह गया था जिसको पीछे से ठीक कर पूरा छाप दिया गया जिसमें गर्भवती स्त्री से समागम का स्पष्ट निषेध है।

(२) द्वितीयावृत्ति में भी 'गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के विषय में' ये शब्द साफ़ तौर से गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम का निषेध कर रहे हैं और अगले पाठ में से रहे हुए पाठ को सूचित कर रहे हैं।

(३) प्रश्न के अनुसार उत्तर हुआ करता है। जब प्रश्न में स्पष्ट पूछा गया है कि 'जब स्त्री गर्भवती, स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो' इन शब्दों से साफ़ पता लगता है कि पूछनेवाले का यह अभिप्राय है कि 'यदि स्त्री गर्भवती या स्थिररोगिणी हो, पुरुष से न रहा जाए, तो वह क्या करे, अथवा यदि पुरुष दीर्घरोगी हो, स्त्री से न रहा जाए तो वह क्या करे।'

अतः द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में उत्तर प्रश्न के अनुकूल नहीं है, और जो पीछे से ठीक करके छापा गया है उसमें उत्तर प्रश्न के अनुसार है।

(४) इन हेतुओं से स्पष्ट है कि यह छापे की ग़लती थी जिसे पीछे ठीक कर दिया गया।

(५) यदि यह भी मान लिया जाए कि पीछे से आर्यसमाज ने ठीक कर लिया, तो भी किसी को ऐतराज़ का हक़ नहीं है, क्योंकि आर्यसमाज ने गर्भवती स्त्री से समागम वेदविरुद्ध समझकर इस पाठ को वेदानुकूल बना दिया।

अतः पाठ बदलने की शङ्का तो सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ है। अब रह गई बात वेदानुकूलता की, सो—

(१) गर्भवती स्त्री से समागम वेद के विरुद्ध है, जैसाकि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुनावृत उल्बं जहाति जन्मना॥

—यजुः० १९।७६

भाषार्थ—मनुष्य का लिंगेन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रविष्ट होता हुआ मनी अर्थात् वीर्य को विशेष तौर से छोड़ता है। इससे पृथक् पेशाब को छोड़ता है। वह वीर्य जेर से लिपटा हुआ गर्भरूप होकर जन्म लेता है। जन्म से पर्दे को छोड़ता है॥७६॥

यह वेदमन्त्र गर्भाधान शिक्षा देता हुआ बताता है कि स्त्री-पुरुष का संयोग केवल गर्भधारणार्थ है। स्त्री-पुरुष को तब समागम करना चाहिए जब गर्भधारण की आवश्यकता हो, अन्यथा नहीं, अतः गर्भवती स्त्री से समागम करना वेद के विरुद्ध है। इसकी पुष्टि मनुजी भी करते हैं कि—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्॥ —मनु० ३।४५

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः॥ —मनु० ९।९६

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्॥ —मनु० ९।३३

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते॥ —मनु० ९।८

भाषार्थ—ऋतुकाल के अनुसार स्त्री से समागम करना चाहिए। गर्भवती के ऋतु आता ही नहीं, अतः गर्भवती से समागम निषिद्ध है॥४५॥ परमात्मा ने स्त्रियों और पुरुषों को सन्तान पैदा

करने के लिए पैदा किया है। गर्भवती होने में सन्तान का प्रयोजन निवृत्त हो चुका, अतः गर्भवती से समागम निषिद्ध है॥ ३३॥ पति पत्नी में प्रवेश करके इस संसार में गर्भ होकर पैदा होता है। गर्भ के प्रयोजनार्थ ही पति को पत्नी से समागम की आज्ञा है, अतः गर्भ होने पर उससे समागम करना निषिद्ध है॥ ८॥ अतः आपका यह लिखना कि—

'गर्भवती स्त्री अपने पति से भोग करे तो क्या ज़हर चढ़ जाए' वेद-शास्त्र के विरुद्ध और पाप है और गर्भवती से समागम में व्यभिचारदोष, कन्या-समागमदोष, पुंसमागमदोष, गर्भपात का खतरा, लड़का-लड़की गर्भ में जो हैं उनको व्यभिचार की शिक्षा, आदि अनेक दोष हैं।

(२) साधारण अवस्था में एक समय में एक स्त्री के एक पति तथा एक पति के एक स्त्री की वेद आज्ञा देता है, जैसेकि—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥

—ऋ० १०।८५।४२

भाषार्थ—तुम दोनों पति-पत्नी यहाँ ही—घर में रहो। एक-दूसरे से पृथक् मत होवो। पुत्रों तथा पौत्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए अपने घर में आनन्द से रहते हुए तुम दोनों पूर्ण आयु प्राप्त करो॥ ४६॥

किन्तु आपत्तिकाल में वेद ने स्त्री के लिए दूसरे पति तथा पुरुष के लिए दूसरी स्त्री की आज्ञा दी है, जैसाकि—

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः।

—अथर्व० ९।५।२७

भाषार्थ—जो स्त्री पहले पति को प्राप्त होके उसके पीछे आपत्तिकाल में दूसरी बार होनेवाले दूसरे पति को प्राप्त करती है, वे दोनों पति-पत्नी अपरिमितयज्ञ को धारण करते हैं और वियोग को प्राप्त नहीं होते॥ २७॥

इस मन्त्र में दूसरे पति का जो 'परम्' विशेषण दिया है उसका तात्पर्य यह है कि जो स्त्री दूसरा पति धारण करना चाहती हो वह ऐसे ही पुरुष को दूसरा पति बना सकती है जो पुरुष पहले एक स्त्री को स्वीकार कर चुका हो और दूसरे दर्जे पर इस स्त्री को स्वीकार करे।

इस मन्त्र से सिद्ध है कि आपत्तिकाल में स्त्री और पुरुष दोनों को दूसरे पति तथा दूसरी पत्नी के स्वीकार करने की आज्ञा है।

स्मृतियों ने इसकी व्याख्या करते हुए अनेक अवस्थाओं का वर्णन किया है जिनमें स्त्री को दूसरे पति तथा पुरुष को दूसरी स्त्री का अधिकार स्वीकार किया है, जैसाकि—

(१) परदेश जाने पर (२) खोये जाने पर (३) मर जाने पर (४) नपुंसक, बन्ध्या होने पर (५) दीर्घरोग होने पर (६) द्वेष होने पर (७) पागल होने पर (८) पतित होने पर (९) कोढ़ी होने पर (१०) सन्तान मरते रहने पर (११) कन्याएँ ही पैदा होने पर (१२) कड़वा बोलने पर (१३) संन्यास लेने पर (१४) शराबी होने पर (१५) दुराचार होने पर (१६) प्रतिकूल होने पर (१७) मारने-पीटने का स्वभाव होने पर (१८) नित्य फ़जूलखर्च होने पर (१९) जुआ आदि व्यसन होने पर। —९।७६ से ८१, १६७

जहाँ पर दूसरे स्मृतिकारों ने उपर्युक्त अवस्थाओं में स्त्री को दूसरे पति तथा पति को दूसरी स्त्री का अधिकार वर्णन किया है वहाँ ऋषि दयानन्दजी ने 'स्त्री गर्भवती हो, पुरुष से रहा न जाए' इस अवस्था का भी आपदधर्म में ही वर्णन किया है और ऐसी अवस्था में पुरुष को दूसरी स्त्री का हक़ दिया है। यह अवस्था भी स्वामीजी की कल्पित नहीं है, अपितु प्राचीनकाल में इसपर आचरण भी होता रहा है, जैसाकि—

गान्धार्यां क्लिश्यमानायामुदरेण विवर्धता। धृतराष्ट्रं महाराजं वैश्या पर्यचरत् किल॥ ४१॥
तस्मिन् संवत्सरे राजन् धृतराष्ट्रान्महायशाः। जज्ञे धीमाँस्ततस्तस्यां युयुत्सुः करणो नृप॥ ४२॥

—महा० आदि० अ० ११५ [गीता० सं० में अ० ११४ श्लो० ४१ से ४३।—सं०]

भाषार्थ—पेट के बढ़ जाने से गान्धारी के क्लेश पाने के समय में निश्चय से एक वैश्या ने राजा धृतराष्ट्र की सेवा की॥ ४१॥ उस एक वर्ष के बीतने पर धृतराष्ट्र से उस वैश्या में बुद्धिमान् महायशस्वी युयुत्सु पैदा हुआ॥ ४२॥

अतः स्वामीजी का ऐसी अवस्था में गर्भवती से समागम न करने, वेश्या-गमन, व्यभिचार से बचने के लिए नियोग का प्रतिपादन वेद, स्मृति, इतिहास और युक्ति के अनुकूल ही है।

रही बात गर्भवती से नियोग करने की, सो बेशक यह बात ठीक है कि वेदानुकूल शास्त्रों और इतिहासों में से इस प्रकार की घटना मिलनी असम्भव है, किन्तु पौराणिक इतिहासों में संसार में कोई बात असम्भव नहीं है और सनातनधर्म के मान्य ग्रन्थों में ऐसी घटना का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जैसाकि—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती। वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते॥ १७३॥

—मनु० ९

अथोतथ्य इति ख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा। ममता नाम तस्यासीद् भार्या परमसम्मता॥ ८॥
उतथ्यस्य यवीयाँस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम्। बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्तवपद्यत॥ ९॥
उवाच ममतां तं तु देवरं वदतां वरम्। अन्तर्वत्नी त्वंह भ्रात्रा ज्येष्ठेनाऽऽरम्यतामिति॥ १०॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते॥ औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत॥ ११॥
अमोघरेतास्त्वं चापि द्वयोर्नास्त्यत्र सम्भवः। तस्मादेवं गते त्वद्य उपारमितुमर्हसि॥ १२॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्बृहस्पतिरधीरधीः। कामात्मानं तदात्मानं न शशाक नियच्छितुम्॥ १३॥
स बभूव ततः कामी तया सार्द्धमकामया। उत्सृजन्तन्तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत॥ १४॥
भोस्तात मा गमः कामं द्वयोर्नास्तीह सम्भवः। अल्पाऽवकाशो भगवन् पूर्वं चाहमिहागतः॥ १५॥
अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्तुमर्हसि। अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः॥ १६॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम्।
शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्य गर्भगतो मुनिः।
पद्भ्यामारोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः॥ १७॥
स्थानमप्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा। पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो बृहस्पतिः॥ १८॥
तद् दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः। उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः॥ १९॥
यन्मां त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति। एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि॥ २०॥
स वै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत। बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तेर्बृहस्पतिरिवोजसा॥ २१॥
जात्यन्धो वेदवित् प्राज्ञः पत्नीं लभे स विद्यया॥ २२॥[१] —महा० आदि० अ० १०४
बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितः शिवमायया। भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत्॥ ३८॥

—शिव० उमा० अ० ४

भाषार्थ—जिस गर्भिणी स्त्री का जानकर या न जानकर भी संस्कार किया जावे वह विवाह करानेवाले का ही गर्भ माना जावेगा, और उस पुत्र का नाम सहोढ पुत्र होगा। —मनु०

---

१. इस अध्याय को गीता० संस्करण में से निकाल दिया गया है। द्र० टिप्पणी १, पृ० ३५४

कहिए महाराज! न जानने की अवस्था में चतुर्थीकर्म की विधि पूरी की जावेगी या नहीं?

पूर्वकाल में उतथ्य नाम का प्रसिद्ध महान् ऋषि तथा ममता नामवाली उसकी परम सुन्दरी स्त्री थी॥८॥ उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का पुरोहित, महान् तेजस्वी, बृहस्पति ममता पर मोहित हो गया॥९॥ बोलनेवालों में श्रेष्ठ देवर बृहस्पति को ममता ने कहा—मैं तेरे बड़े भाई से गर्भवती हूँ, अतः तू सब्र कर॥१०॥ और हे महाभाग! यह मेरी कोख में उतथ्य का पुत्र यहाँ भी छह अङ्गों सहित वेदों को पढ़ रहा है॥११॥ और आपका वीर्य भी व्यर्थ जानेवाला नहीं है और दोनों का यहाँ गर्भ में रहना सम्भव नहीं, इसलिए आज तुझको ऐसा नहीं करना चाहिए, टल जाना ही उत्तम है॥१२॥

इस प्रकार से कहे जाने पर बुद्धिमान् बृहस्पति काम से मोहित अपनी आत्मा को काबू में न रख सका॥१३॥ तब वह कामी बृहस्पति उस अकामा ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गया। उस वीर्य को छोड़ते हुए बृहस्पति को गर्भ में बैठा हुआ मुनि कहने लगा॥१४॥ हे चाचाजी! काम में मोहित मत होओ। यहाँ पर स्थान थोड़ा है और मैं यहाँ पर पहले ही आया हुआ हूँ॥१५॥ आपका वीर्य व्यर्थ जानेवाला नहीं है, अतः आप मुझे कष्ट न दें। उस गर्भ में बैठे हुए की बात को न सुनकर बृहस्पति॥१६॥ उस सुन्दर नेत्रोंवाली ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गया। उसके गर्भ में बैठे हुए मुनि ने वीर्य के प्रवेश का समय जानकर बृहस्पति के वीर्य के रास्ते को दोनों पाँवों से रोक दिया॥१७॥ तब उसका वीर्य स्थान को प्राप्त न होकर वापस धकेला हुआ अचानक ज़मीन पर गिर पड़ा। तब बृहस्पति ने क्रोध में आकर॥१८॥ वीर्य को गिरे हुए देखकर गुस्से से शाप दिया। और उतथ्य के पुत्र को भगवान् ऋषि बृहस्पति ने गर्भ में बैठे को ही धमकाया॥१९॥ जो तू मुझे सब प्राणियों से वांछित इस प्रकार के समय में इस प्रकार की बात कहता है, इसलिए तू महा अन्धकार में प्रवेश करेगा॥२०॥ वह ऋषि के शाप से दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुआ जोकि तेजस्वी बृहस्पति के समान ही था॥२१॥ और जन्म से अन्धा, वेदपाठी तथा बुद्धिमान् था, जिसने विद्या के बल से पत्नी को प्राप्त किया है॥२२॥ —महाभारत

श्रेष्ठ मुनि बृहस्पति ने शिव की माया से मोहित होकर अपने भाई की स्त्री से समागम किया जिससे भरद्वाज पैदा हुए। —शिव

अब आप अपने ख़याल के अनुसार अठारह पुराणों तथा महाभारत के कर्त्ता व्यासजी से पूछ सकते हैं कि इसमें क्या गूढ फ़िलासफ़ी है जबकि ममता ने एक लड़का भरद्वाज पैदा करके भोग करनेवाले बृहस्पति को दे दिया और एक लड़का दीर्घतमा पहले से ही पेट में बैठा था, तब दूसरे को कहाँ रक्खा? कैसे पैदा हुआ? इत्यादि। मैं आशा करता हूँ कि व्यासजी आपकी पूरी-पूरी तसल्ली कर देंगे।

(४४७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ११२ में लिखा है कि 'एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिए सन्तान कर सकती है' वेद में इसकी कहीं पर भी चर्चा नहीं। —पृ० ४५, पं ० ३

उत्तर—आपने तो उचित-अनुचित रूप से आर्यसमाज के विरोध का ठेका लिया हुआ है, वरना स्वामीजी ने उक्त नियम भी वेद के आधार पर ही लिखा है और लेख की समाप्ति पर वेद का प्रमाण दिया है। अपने स्वभावानुसार स्वामीजी का आधा पाठ देकर जनता को भ्रम में डालने का यत्न किया है। देखिए, स्वामीजी का पूरा लेख इस प्रकार है—

'ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिए सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिए और दो-दो चार अन्य विधवाओं के लिए पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर दश-दश सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

—ऋ० १०।८५।४५

'हे वीर्य सींचने में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ और सौभाग्ययुक्त कर। विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर। और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्री! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवाँ पति को समझ'।

इस वेदमन्त्र से यह स्पष्ट है कि स्त्री को दश तक सन्तान तथा ग्यारह तक पति करने की आज्ञा तथा पुरुष को दश तक सन्तान और ग्यारह तक स्त्रियाँ करने की आज्ञा है। इस वेदमन्त्र के आधार पर ही उपर्युक्त नियम स्वामीजी ने लिखा है कि नियोग से दश सन्तान किस प्रकार से पैदा करें। और एक नियोग में कितनी सन्तान पैदा की जा सकती हैं, इस विषय में मनुजी भी लिखते हैं कि—

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि। एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन॥६०॥
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः। अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः॥६१॥

—मनु० ९

भाषार्थ—विधवा में नियोग करनेवाला पुरुष शरीर में घी लगाकर, चुपचाप, रात्रि में एक पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा कभी भी न करे॥६०॥ स्त्रियों में सन्तान पैदा करने की इस विधि को जाननेवाले कई आचार्य दूसरी सन्तान का पैदा करना मानते हैं। स्त्री-पुरुष के धर्म को देखते हुए फिर नियोग की निवृत्ति कथन नहीं करते हैं॥६१॥

अब ख़याल करें कि स्त्री को अपने जीवन में दश तक पुत्र पैदा करने का अधिकार है और ग्यारह तक पति करने का, और प्रत्येक नियोग में कम-से-कम एक सन्तान और अधिक-से-अधिक दो सन्तान पैदा करने की आज्ञा है, ऐसी सूरत में प्रथम पक्ष में एक स्त्री एक अपने लिए तथा एक-एक-सन्तान अन्य नौ पुरुषों के लिए पैदा कर सकती है। दूसरे पक्ष में प्रत्येक स्त्री दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार पुरुषों के लिए सन्तान पैदा कर सकती है। चूँकि स्वामीजी द्वितीय पक्ष के पोषक हैं, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेद के अनुकूल है।

आप कोई ऐसा वेदमन्त्र पेश करें जिससे यह सिद्ध हो कि स्वामीजी का यह लेख वेद के विरुद्ध है।

हमें यह पता नहीं लगा कि आपको स्वामीजी के लेख में किस अंश में शंका है—(१) पतियों की गिनती में शंका है? (२) सन्तान की गिनती में शंका है? (३) सन्तान पैदा करने की विधि पर शंका है?

(१) यदि आपको पतियों की गिनती पर शंका है तो यह शंका निर्मूल है, क्योंकि स्वामीजी के उपर्युक्त लेख में तो विवाहित पतिसमेत छठे पति तक ही नियोग करनेकी नौबत आवेगी, किन्तु वेद ने स्त्री को ग्यारह पति तक नियोग की आज्ञा दी है, जैसाकि—

पतिमेकादशं कृधि। —ऋ० १०।८५।४५

उत यत् पतयो दश स्त्रिया पूर्वे अब्राह्मणाः। ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा॥८॥

—अथर्व० ५।१७।८

भाषार्थ—हे स्त्रि! तू ग्यारहवें तक पति कर सकती है॥४५॥ यदि स्त्री के पहले दश पति अब्राह्मण हों, उसके पश्चात् यदि ब्राह्मण उसका हाथ पकड़ ले तो वही एक प्रकार से पति गिना जावेगा॥८॥

वेद में तो स्त्री को केवल ग्यारह पति तक ही करने की आज्ञा है, किन्तु पुराणों में तो एक-एक स्त्री के इक्कीस-इक्कीस पति करने का भी इतिहास विद्यमान है, जैसाकि पद्मपुराण में दिव्या देवी के इक्कीस पतियों का वर्णन है—

एकविंशतिभर्तारः काले काले मृतास्तदा। ततो राजा महादुःखी संजातः ख्यातविक्रमः ॥ ७० ॥

—पद्म० भूमि० अ० ८५

वैधव्यं भुञ्जते सा तु दिव्या देवी सुपुत्रक ॥ ४४ ॥ —पद्म० भूमि० अ० ८६

भाषार्थ—इस प्रकार से उस दिव्या देवी के इक्कीस पति समय-समय पर मृत्यु को प्राप्त हुए। तब दिव्या देवी का पिता प्रसिद्ध बहादुर राजा दिवोदास महादुःखी हुआ ॥ ७० ॥ हे पुत्र! वह दिव्या देवी तो अब विधवापन का भोग कर रही है ॥ ४४ ॥

ये तो समय-समय पर इक्कीस पतियों का वर्णन है, किन्तु पुराणों में तो एक स्त्री को एक ही समय में दश तक पतियों का वर्णन विद्यमान है, जैसाकि—

तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः। संगताभूद्दश भ्रातॄनेकनाम्नः प्रचेतसः ॥ १५ ॥

—[गीता० सं० में अ० १९५।—सं०]—महा० आदि० अ० १९६

भाषार्थ—उसी प्रकार मुनि की पुत्री वार्क्षी भी तप से पवित्र आत्मावाले प्रचेतस नाम के दश भाइयों से एक ही समय में विवाहित थी ॥ १५ ॥

अतः पतियों की संख्या पर तो आप शंका कर ही नहीं सकते।

(२) अब रही बात सन्तान की तो वेद तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए सारी आयु में केवल दश सन्तान पैदा करने की आज्ञा देता है, जैसाकि—

दशास्यां पुत्रानाधेहि ॥ —ऋ० १०।८५।४५

भाषार्थ—हे पुरुष! तू इस स्त्री में दश तक सन्तान पैदा कर सकता है ॥ ४५ ॥

स्वामीजी ने भी इस वेद की आज्ञा के अनुकूल दश पुत्रों के पैदा करने की ही आज्ञा दी है, किन्तु पौराणिक साहित्य में तो सन्तानों की सेनाएँ वर्णित हैं, जैसाकि—

इति पुत्रशतं राजन् कन्या चैव शताधिकाः ॥ १५ ॥ —महा० आदि० अ० ११७

षष्टिः पुत्रसहस्त्राणि तुम्बभेदाद्विनिःसृता ॥ १७ ॥ —वाल्मी० बाल० स० ३८

शशविन्दोश्च भार्याणां सहस्त्राणि दशाच्युत। एकैकस्यां सहस्त्रन्तु तनयानामभूत्तदा ॥ ११ ॥

—महा० शान्ति० अ० २०८

भाषार्थ—राजा धृतराष्ट्र के इस प्रकार से सौ पुत्र और सौ से अधिक एक कन्या थी ॥ १५ ॥ राजा सगर के यहाँ तूंबे के फूटने से साठ हज़ार पुत्र पैदा हुए ॥ १७ ॥ राजा शशविन्दु के दश हज़ार स्त्रियाँ थीं और एक-एक स्त्री के एक-एक हज़ार पुत्र थे, गोया राजा शशविन्दु के एक करोड़ पुत्र थे ॥ ११ ॥ ऐसी अवस्था में आपको पुत्रों की संख्या पर क्या आपत्ति हो सकती है?

(३) अब रह गई केवल एक बात, और वह है पुत्रों के पैदा करने का तरीका, सो यह बात स्पष्ट है कि जब एक नियोग में दो से अधिक पुत्र पैदा नहीं किये जा सकते तो दश सन्तानों के लिए कम-से-कम पाँच पुरुषों से नियोग करना पड़ेगा। इस प्रकार से दो पुत्र अपने लिए तथा दो-दो अन्य चार पुरुषों के लिए स्वयं सिद्ध हो गये, जैसाकि इतिहासों में आता भी है—

(१) माद्री ने दो अश्विनीकुमारों से दो पुत्र नकुल तथा सहदेव उत्पन्न किये।

(२) कुन्ती ने चार पतियों सूर्य, धर्म, वायु और इन्द्र से चार पुत्र कर्ण, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को पैदा किया।

(३) सत्यवती ने दो पतियों पराशर तथा तथा शन्तनु से तीन पुत्रों व्यास, चित्रांगद और

विचित्रवीर्य को पैदा किया।

(४) द्रौपदी ने पाँच पतियों से पाँच पुत्र पैदा किये।

(५) आपके यहाँ तो इस प्रकार की कथा भी विद्यमान है कि—

'विश्वामित्र ने अपने शिष्य गालव से गुरुदक्षिणा में आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव घोड़ों की प्राप्ति के लिए राजा ययाति के पास गया। ययाति के पास घोड़े न थे। उसने अपनी कन्या माधवी को दे दिया कि इसके बदले श्यामकर्ण घोड़े मिल जावेंगे। तब दो सौ घोड़ों के बदले अयोध्या के राजा हर्यश्व ने माधवी से एक पुत्र वसुमना नामवाला पैदा किया। फिर माधवी से दो सौ घोड़ों के बदले काशी के राजा दिवोदास ने एक पुत्र प्रतर्दन नामवाला पैदा किया, उसके पश्चात् दो सौ घोड़ों के बदले भोजनगर के राजा उशीनर ने माधवी से एक पुत्र शिवी नाम का पैदा किया और कोई राजा न मिलने पर गालव ने छह सौ घोड़े लिये और साथ में माधवी को लेकर विश्वामित्र के पास आकर कहा कि महाराज! दो सौ घोड़ों के बदले इससे एक पुत्र आप पैदा कर लें। विश्वामित्र ने यह देखकर ठण्डी साँस ली और कहा कि हे गालव! तूने पहले मुझे पता क्यों न किया, वरना इस माधवी से आठ सौ घोड़ों के बदले मैं ही चार पुत्र पैदा कर लेता? तब विश्वामित्र ने माधवी से अष्टक नाम का एक पुत्र पैदा कर लिया।'

—महा० उद्योग० अ० १०५ से १२१

भला! जब इस प्रकार की कथाएँ आपके पाँचवें वेद महाभारत में मौजूद हैं तो फिर स्वामीजी के वेदानुकूल लेख पर आपका आपत्ति करना सर्वथा निर्मूल है, अत:—

'इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः', उत यत् पतयो दश स्त्रियः।

इन वेदमन्त्रों की विद्यमानता में कौन कह सकता है कि स्वामीजी का उपर्युक्त लेख वेदानुकूल नहीं है?

(४४८) प्रश्न—'उदीर्ष्व नारीति' स्वामी दयानन्दजी ने इस वेदमन्त्र के अर्थ में हिन्दूजाति की दया का छुरी से गला काटा है। जिसके आगे प्राणप्यारे पति की लाश पड़ी है उसको यह कौन कहेगा कि पहले तू इन आये हुए मनुष्यों में से किसी को नियोगी पति बनाले और लड़कों के बाँटने का फैसला कर ले, तब हम तेरे मरे हुए पति की लाश उठावेंगे?

—पृ० ४५, पं० ११

उत्तर—स्वामी दयानन्दजी ने इस मन्त्र का अर्थ करके आर्यजाति की विधवाओं पर पौराणिक पोपमण्डल से किये गये अत्याचार को मलियामेट कर डाला है और उनको पुरुषों की भाँति ही पति के मरने पर दूसरे पति का हक़ प्रदान किया है। स्वामीजी के अर्थ में यह कहीं भी नहीं लिखा कि पति की लाश के मौजूद होते हुए स्त्री को ऐसा कहा जाए और स्वामीजी इस मन्त्र को श्मशानभूमि में उच्चारण करने का विधान भी नहीं करते। देखिए, स्वामीजी का अर्थ इस प्रकार है—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ —ऋ० १०।१८।८

भाषार्थ—हे विधवे! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़के बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त हो। और इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो तुझ विधवा के पुन: पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिए नियोग होगा तो यह जना हुआ बालक उसी नियुक्त पति का होगा और जो तू अपने लिए नियोग करेगी तो यह सन्तान तेरी होगी, ऐसे निश्चययुक्त हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे॥ ८॥

इस वेदमन्त्र के अर्थ में 'इस' शब्द से वह मृतपति अभिप्राय है कि जिसको मरे हुए कुछ

समय व्यतीत हो चुका है और पति के मरने के कुछ समय पश्चात् पंचायत उस स्त्री को आकर कहती है कि हे स्त्रि! तू इस मृतक पति के शोक को छोड़कर अन्य पति को प्राप्त हो। **'वर्त्तमानसमीपे वर्त्तमानवद्वा'**—वर्त्तमान के समीपवाले समय का वर्त्तमान की भाँति ही प्रयोग किया जाता है, व्याकरण के इस नियम के अनुसार भूतकाल के वाचक 'इस' शब्द का वर्त्तमान की भाँति ही प्रयोग किया गया है, अतः यह मन्त्र पति की लाश की विद्यमानता में बोलने का वा स्त्री को पूछने का उपदेश नहीं करता, अपितु पति के मरने के कुछ समय पश्चात् (जैसीकि पंचायत की रस्म हो) विधवा स्त्री से पूछने का उपदेश करता है कि—

'तू ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है या दूसरा पति स्वीकार करना चाहती है?'

आपने यह नहीं बताया कि स्वामीजी ने कौन-से शब्द का अर्थ ग़लत किया है या कौन-सी कल्पना मन्त्र के अर्थों के विरुद्ध की है, अतः आपका स्वामीजी के अर्थ को कल्पित बतलाना और स्वामीजी के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना करके आक्षेप करना सर्वथा निर्मूल है।

(४४९) प्रश्न—इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—

हे नारि! मृतकपत्नी! जीवित पुत्र-पौत्रादि और निवास-घर को देखकर इस स्थान से उठ। तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा? इस मृतक के समीप जो तू पड़ी है यहाँ से उठ चल, कारण यह है कि विवाह-समय में हस्त ग्रहण करनेवाले तथा गर्भाधान करनेवाले इस पति के सम्बन्ध से प्राप्त हुए तुम्हारे इस पत्नीपन को देखकर पति के साथ मरने का जो निश्चय किया है, इस निश्चय को छोड़कर उठ। —पृ० ४७, पं० २२

उत्तर—आपने स्वामीजी के यथार्थ अर्थ को तो कल्पित बतला दिया और स्वयं मन्त्र का मनमाना कल्पित अर्थ कर डाला। क्या इसी का नाम ईमानदारी है? आपके अर्थ में निम्न प्रकार से मिथ्या कल्पना है—

(१) 'पुत्र-पौत्रादि और निवास-घर को देखकर' यह अर्थ मन्त्र के कौन-से पदों का है? निश्चय ही यह आपकी मनमानी निर्मूल कल्पना है।

(२) 'तेरे बिना पुत्रादिकों का पालन कौन करेगा' क्या इस अर्थ के कहनेवाले कोई पद मन्त्र में हैं? यदि नहीं तो मिथ्या कल्पना होने में क्या सन्देह है?

(३) **'दिधिषुः'** शब्द का अर्थ मृतक विवाहित पति करना सर्वथा आत्महत्या है, क्योंकि 'दिधिषुः' शब्द का अर्थ 'पुनर्विवाह में प्राप्त स्त्री का दूसरा पति है,' जैसाकि—

पुनर्भूर्दिधिषूरूढा द्विस्तस्या दिधिषूः पतिः। स तु द्विजोऽग्रेदिधिषूः सैव यस्य कटुम्बिनी॥ २३॥

—अमरकोश २६।२३

भाषार्थ—पुनर्भू, दिधिषू, ये दो नाम दो बार विवाही स्त्री के हैं। 'दिधिषूः, यह एक नाम दो बार विवाही स्त्री के पति का है। 'अग्रेदिधिषूः' यह एक नाम दो बार विवाही स्त्री के द्विज पति अर्थात् जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य हो उसका है॥ २३॥

सायणाचार्य ने भी तैत्तिरीयारण्यक में इसका ऐसा ही अर्थ किया है, जैसाकि—

हे नारि त्वं गतासुं गतप्राणमेतं पतिमुपशेष उपेत्य शयनं करोषि। उदीर्ष्वास्मात्पतिसमीपादुत्तिष्ठ। जीवलोकमभिजीवन्तं प्राणिसमूहमभिलक्ष्यैहि आगच्छ। त्वं हतस्तग्राभस्य पाणिग्राहवतो दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युरेतत् जनित्वम् जायात्वमभिसम्बभूवाऽऽभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि। —तैत्तिरीयारण्यक ६।१।१४

भाषार्थ—हे नारि! तू इस मृतपति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ। जीवित पुरुषों का विचार कर, आ और तू हाथ पकड़नेवाले पुनर्विवाह की इच्छा करनेवाले इस पति को जायाभाव (स्त्रीभाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो।

कहिए महाराज! अब यहाँ वह दयाभाव कहाँ गया जबकि आपके सायणाचार्य पति की लाश की विद्यमानता में ही स्त्री को पुनर्विवाह का उपदेश कर रहे हैं? क्यों न हो—**'गिला औरों का करते थे क़ुसूर अपना निकल आया'** योंहि व्यर्थ में स्वामी दयानन्दजी को बदनाम कर रहे थे। भला! यह कहाँ की ईमानदारी है कि अपने आचार्यों के अर्थ को स्वामीजी पर मढ़कर आर्यसमाज पर कीचड़ उछालना?

व्यासजी भी इस मन्त्र को नियोग का विधायक ही मानते हैं, जबकि वे लिखते हैं कि—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्॥ ६॥ —महा० आदि० अ० १०४

नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही गिना जाता है।

यहाँ व्यासजी ने ''हस्तग्राभस्य'' का अनुवाद ही ''पाणिग्राहस्य'' किया है।

अत: आपका 'दिधिषू:' शब्द का अर्थ ''विवाहित मृतपति'' करना सर्वथा वेद, इतिहास, कोश, सायण आदि के विरुद्ध है।

(४) ''पति के साथ मर जाने का जो निश्चय किया है इस निश्चय को छोड़कर उठ'' इस अर्थ के मन्त्र में कोई पद नज़र नहीं आते।

अत:सिद्ध हुआ कि स्वामीजी का अर्थ यथार्थ तथा आपका अर्थ सर्वथा निर्मूल और कपोलकल्पित ही है।

(४५०) प्रश्न—आश्वलायनगृह्यसूत्र का भी यही लेख है तथा इस मन्त्र का ''पितृमेध'' देवता और अन्त्येष्टिकर्म में विनियोग है। पृ० ४८, पं० १

उत्तर—यदि आप आश्वलायनगृह्यसूत्र की बात ढकी-ढकाई रहने देते तो उत्तम था, किन्तु आपको भी सनातनधर्म्म की पोल गुप्त रखनी स्वीकार नहीं है, तो लीजिए, हम बताये देते हैं कि आश्वलायन का इस मन्त्र का अन्त्येष्टि में विनियोग वेद के विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र का विनियोग श्मशान में टीक नहीं, अपितु विवाह, नियोग वा पुनर्विवाह में ठीक है। आश्वलायनगृह्यसूत्र आपके अर्थ की पुष्टि नहीं करता अपितु सनातनधर्म की नंगी तस्वीर जनता के सामने पेश करता है। तनिक ध्यान से पढ़िए—

दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत्पित्र्यं पृषदाज्यम्॥ १७॥ —४।१।१७

तेन नि:पुरीषमेके कृत्वा पृषदाज्यस्य पूरयन्ति।

इस प्रेतकर्म में दही और घी लाते हैं। इसी का नाम पृषदाज्य है। कई आचार्य कहते हैं कि मृतक के पेट को गन्दगी से खाली करके उसमें पृषदाज्य, अर्थात् दही और घी भर दिया-जावे।

पीठचक्रेण गोयुक्तेनेत्येके॥ ३॥ —४।२।३

कई आचार्य कहते हैं कि बैल जुते गड्डे (गाड़ी) से मृतक को श्मशान में ले-जाया जावे।

अनुस्तरणीम्॥ ४॥

प्रेतमनुस्तर्यते या स्त्रीपशु: सानुस्तरणी।

अनुस्तरणी का प्रोयग करे। मृतक के पीछे जाकर जो उसको पवित्र करती है वह स्त्री या पशु अनुस्तरणी कहाता है।

गाम्॥ ५॥

वह अनुस्तरणी गौ की प्रयोग की जावे।

सव्ये बाहुबध्वानु संकालयन्ति॥ ८॥

पशु के दायें बाहु में रस्सी बाँधकर लाश के पीछे-पीछे ले-जाते हैं, वेदी बनाकर मृतक को चिता में लिटाकर—

उत्तरतः पत्नीम्॥ १६॥

ततः प्रेतस्योत्तरतः प्रेतस्य पत्नीं संवेशयन्ति शाययन्तीत्यर्थः।

प्रेत के उत्तर की ओर प्रेत की पत्नी को सुलाते हैं।

धनुश्च॥ १७॥

प्रेतः क्षत्रियश्चेद्धनुरप्युत्तरतः संवेश्यन्ति।

प्रेत यदि क्षत्रिय हो तो धनुष को भी उसके उत्तर की तरफ़ लिटाते हैं।

तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमिति॥ १८॥

अनेन ज्ञायते पतिकर्तृकं कर्म पुंसवनादि पत्यसम्भवे देवरः कुर्यादिति॥

पति का स्थानी देवर या शिष्य या बूढ़ा नौकर उस स्त्री को उठावे (''उदीर्ष्व'' यह मन्त्र पढ़कर)। इससे जाना जाता है कि पति के करने के योग्य काम पुंसवनादि पति के अभाव में देवर करे।

कर्त्ता वृषले जपेत्॥ १९॥

यदि उठानेवाला नौकर हो तो मन्त्र का जप कार्यकर्त्ता करे।

अथैतानि पात्राणि योजयेत्॥ १॥ —४।३।१

उसके पश्चात् हवनपात्रों को लाश पर चिन दिया जावे।

अनुस्तरण्या वपामुत्खिद्य शिरो मुखं प्रच्छादयेदग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्वेति॥ १९॥

उस गौ की चरबी निकालकर उस लाश का मुख और शिर उस चरबी से ढक दिया जावे ''अग्नेर्वर्म'' यह मन्त्र पढ़कर।

वृक्का उद्धृत्य पाण्योरादध्यादतिद्रव सारमेयौ श्वानाविति दक्षिणे दक्षिणं सव्ये सव्यम्॥ २०॥

गौ के दोनों फेफड़े निकालकर मृतक के दोनों हाथों में देवे ''अति द्रव'' यह मन्त्र पढ़कर दायाँ फेफड़ा दायें हाथ में और बायाँ फेफड़ा बायें हाथ में।

हृदये हृदयम्॥ २१॥

मृतक के हृदय पर गौ का हृदय रखे।

सर्वां यथाङ्गं विनिक्षिप्य चर्मणा प्रच्छाद्येममग्ने चमसं माविजिह्वर इति प्रणीता प्रणयनमनुमन्त्रयते॥ २४॥

गौ के सम्पूर्ण अङ्गों को इस प्रकार से लाश के सम्पूर्ण अङ्गों पर रखकर और चमड़े से सारी चिता को ढककर ''इममग्ने'' इस मन्त्र से मृतक को जलावे।

स एवंविदा दह्यमानः सहैव धूमेन स्वर्गं लोकमेतीति ह विज्ञायते॥ ७॥ ४।४।७

वह मृतक इस प्रकार से जलाया हुआ धुएँ के साथ ही स्वर्गलोक में पहुँच जाता है, ऐसा जाना जाता है। (आश्वलायन अध्याय ४)

कहिए श्रीमान्जी! आश्वलायन का यही लेख तो है जिसे आपने आगे-पीछे से छोड़कर बीच में से अधूरा पेश कर दिया। कहिए, इसमें मन्त्र का अर्थ कहाँ किया है? हाँ, देवर को प्रत्येक गर्भाधानादि संस्कारों में पति का प्रतिनिधि मानकर हमारे ही अर्थ की पुष्टि की है, आपके अर्थ की नहीं। क्या आश्वलायन का उपर्युक्त लेख कभी वेदानुकूल माना जा सकता है? कदापि नहीं, अतः आपका यह प्रमाण पेश करना तथा मानना सर्वथा वेदविरुद्ध है।

(४५१) प्रश्न—प्रथम तो स्वामीजी का अर्थ सभ्यता के बाहर है; दूसरे, स्वामी दयानन्द ने 'शेषे' क्रिया का अर्थ बाकी किया, जो त्रिकाल में भी समाजी सिद्ध नहीं कर सकते और फिर उस 'शेषे' एकवचन का बहुवचन कर दिया जिसे किसी भी भाषा के विद्वान् मानने को तैयार

नहीं। तीसरे, यदि स्वामी दयानन्दजी का ही अर्थ ठीक मान लिया जावे तो फिर इन चार सूत्रों की क्या गति होगी, क्या धनुष को भी नियोग कराया जावेगा? चतुर्थ, सायणादि भाष्यकार स्वामी दयानन्द के विपरीत हमारे अर्थ को लिख रहे हैं। पंचम, यदि वेद के इस मन्त्र में यही अर्थ है तो क्या इस अर्थ का एक भी ऋषि को ज्ञान न हुआ? यदि उनको इस अर्थ का ज्ञान हुआ तो फिर बताओ कि इस अर्थ को किस-किस ऋषि ने समझकर किस-किस स्त्री के पति की लाश पड़ी रहते कौन-कौन स्त्री का नियोग कराया। —पृ० ४८, पं० २२

उत्तर—(१) पति के मरने के पश्चात् नियत समय व्यतीत होने पर पञ्चायत का स्त्री से इसकी इच्छा पूछना असभ्यता नहीं, अपितु सब लोगों के सामने स्त्री को चिता पर पति के साथ सुलाना और देवर का उसे उठाना और उसी समय दूसरे पति की बात कहना असभ्यता है, तथा पुरोहितों का यजमान की स्त्री को घोड़ के साथ जोड़ना तथा यजमान की स्त्री का घोड़े का लिङ्ग को स्वयं खैंचकर अपनी योनि में प्रविष्ट करना असभ्यता है।

(२) ''शेष'' शब्द का सप्तमी के एकवचन में ''शेषे'' बनता है और उसका अर्थ 'बाकी' नितान्त ठीक है। 'बाकी' शब्द एक और अनेक सबके लिए आ सकता है। बहुत-से शब्द ऐसे होते हैं जिनका एकवचन भी समूह अर्थात् बहुवचन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में इसी मन्त्र में ''जीवलोकम्'' शब्द एकवचन है, किन्तु आपने इसके अर्थ ''जीवित पुत्र-पौत्रादि'' बहुवचन के किये हैं। रही आपकी यह बात कि यह क्रिया है, सो क्रिया में भी 'शेषे' बनता है और शेष शब्द की सप्तमी के एकवचन में भी 'शेषे' बनता है। अब यह बुद्धि का काम है कि इस मन्त्र में कौन-सा प्रयोग उचित है, सो स्वामीजी ने ठीक समझा कि पति के साथ चिता पर सोना एक व्यर्थ एवं सभ्यता के विरुद्ध क्रिया है, अत: उन्होंने शेष शब्द की सप्तमी के एकवचन का अर्थ लगा दिया जो युक्तियुक्त ही है। मृतक पति के साथ सोने का काम अच्छा आपको भी नहीं लगा, अत: आपने ''**उत्तरत: पत्नीम्**'' का अर्थ करते हुए ''मृतक के उत्तर की ओर पत्नी को बिठलाया जावे'' कर दिया। यद्यपि टीकाकार ने स्पष्टरूप से सुलाना अर्थ किया है, और बिठलाने से आपके मतानुसार वेद का ''शेषे—सोती है'' कहना भी व्यर्थ हो जाता है, किन्तु पौराणिकों को मृतकों के साथ सुलाने और उनसे सन्तान पैदा करने का असाध्य रोग चिमटा हुआ है, जिसके चक्र से राम की माता कौसल्या भी कलंकित हुए बिना न रह सकी और पौराणिकों ने उसे मृतक घोड़े के साथ समागम करवाकर ही छोड़ा। शरम! शरम!! हज़ार शरम है ऐसे अर्थों पर!!!

(३) इन चार सूत्रों की वही गति होगी जो इनसे पहले और पिछले ''गौ को श्मशान में ले-जाकर उसे मारकर उसकी चरबी और मांस आदि को मृतक के साथ जलाने की आज्ञा देनेवाले'' सूत्रों की होनी चाहिए, अर्थात् इस प्रकार के सम्पूर्ण लेख वेदविरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हो सकते।

(४) हम तो धनुष को मृतक के साथ में रखना ही व्यर्थ समझते हैं, परन्तु आपके मतानुसार भी यज्ञपात्रों की भाँति धनुष को भी जलाने की आज्ञा है। रही धनुष को नियोग कराने की बात, सो पौराणिकों के यहाँ तो कोई बात असम्भव नहीं है, जैसाकि मित्र और वरुण ने घड़े से नियोग किया तो अगस्त्य तथा वसिष्ठ पैदा हुए और भरद्वाज मुनि ने डोने से नियोग किया तो द्रोणाचार्य पैदा हो गये तथा गोतम मुनि ने धनुषबाण से नियोग किया जिससे कृपाचार्य और कृपी पैदा हुए। जब आपके यहाँ धनुषबाण से सन्तानोत्पति सम्भव है तो फिर आपको अपने ही सिद्धान्त में शंका का पैदा होना आपके मिथ्यात्व का सूचक है।

(५) हम ऊपर लिख आये हैं कि यही मन्त्र तैत्तिरीयारण्यक में आया है और इसपर

सायणाचार्य का भाष्य है जो स्वामीजी के अर्थों का अनुमोदन करता है (न० ४४९)। सायण ने ऋग्वेद के भाष्य में इस मन्त्र का जो अर्थ किया है, हमारे विचार में तो वह अर्थ भी हमारे अर्थ के अनुकूल है, किन्तु यदि आपके विचार में सायण ने ऋग्वेद में इसका भाष्य आपके अनुकूल किया है तो जैसे आपका अर्थ कपोलकल्पित और मिथ्या है वैसे ही सायण का भाष्य भी कपोलकल्पित और मिथ्या है तथा सायण के अपने ही किये हुए दोनों अर्थों में परस्पर विरोध है। ऐसी सूरत में तैत्तिरीयारण्यक के भाष्य में सायण ने जो इस मन्त्र का अर्थ स्वामीजी के अनुकूल किया है, हमें वह वेदानुकूल होने से प्रमाण है, दूसरा नहीं, क्योंकि दूसरा अर्थ स्वयं वेद के ही विरुद्ध है।

(६) पति की लाश की विद्यमानता में स्त्री को दूसरे पति से नियोग करने को कहना, यह अर्थ स्वामीजी ने नहीं किया अपितु यह अर्थ आश्वलायनगृह्यसूत्र का है। स्वामीजी ने तो पति के मर जाने के पीछे कुछ समय के पश्चात् पंचायत द्वारा स्त्री से पूछने की आज्ञा दी है कि तू ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है या नियोग करना चाहती है और इस अर्थ का अनेक ऋषियों को ज्ञान हुआ। उन्होंने इस ज्ञान के अनुसार दूसरों को भी नियोग की आज्ञा दी और स्वयं भी नियोग किये। आप विचारपूर्वक पढ़ने की कृपा करें—

(१) वेद के इन अर्थों का ज्ञान ऋषि मनु को हुआ जिन्होंने अपने मनु धर्मशास्त्र में नियोग की आज्ञा दी, जैसाकि—

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥ ५९॥
यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि। समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥ १२०॥
हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः। क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः॥ १४५॥
धनं यो बिभृयाद् भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च। सोऽपत्त्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम्॥ १४६॥
यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ। यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद् गृह्णीत नेतरः॥ १६२॥

—मनु० अ० ९

भाषार्थ—सन्तान के क्षय हो जाने पर, देवर से वा सपिण्ड से विधिपूर्वक नियोग करके सन्तान प्राप्त कर लेनी चाहिए॥ ५९॥ छोटा भाई यदि बड़े भाई की स्त्री में पुत्र पैदा करे तो समान विभाग होगा, धर्म की यही व्यवस्था है॥ १२०॥ वहाँ नियोग करनेवाली में पैदा हुआ पुत्र औरस पुत्र के समान दायभागी है; वह खेतवाले का ही बीज गिना जावेगा और वह धर्म की सन्तान माना जावेगा॥ १४५॥ यदि कोई मनुष्य मरे हुए भाई के धन और स्त्री को धारण करे तो भाई के लिए सन्तान पैदा करके उस भाई का धन उस सन्तान को दे दे॥ १४६॥ यदि औरस तथा क्षेत्रजपुत्र एक ही जायदाद के वारिस हो जावें तो जो जिसके पिता का धन है, वही उसको ग्रहण करे, दूसरा नहीं॥ १६२॥

(२) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वायु ऋषि को हुआ जिसने केसरी की स्त्री अञ्जना से नियोग करके हनुमान् को पैदा किया। इसी कारण से हनुमान्‌जी को क्षेत्रज पुत्र लिखा है, जैसाकि—

स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः॥ २९॥
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः॥ ३०॥

—वाल्मी० किष्कं० स० ६६

भाषार्थ—वह तू बलवान् केसरी का क्षेत्रज पुत्र है॥। २९॥ और पवन का भी औरस पुत्र है और बहादुरी में भी उसके समान है॥ ३०॥

(३) वेद के इन अर्थों का ज्ञान सत्यवती, भीष्म और व्यास को हुआ, अतः सत्यवती और

भीष्मादि की सम्मति से व्यास ने अम्बिका, अम्बालिका और दासी से नियोग किया, जिनसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति हुई (महा० आदि० अ० १०६)।

(४) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वेदपारग ब्राह्मणों को हुआ जिन्होंने क्षत्राणियों से नियोग करके क्षत्रियवंश को फिर से स्थापित किया (महा० आदि० अ० १२० श्लोक ३६-३९)।

(६) वेद के इन अर्थों का ज्ञान वसिष्ठ को हुआ जिसने सौदास की स्त्री मदयन्ती से नियोग करके अश्मक नाम के पुत्र को पैदा किया (महा० आदि० अ० १२२ श्लोक २१-२२)।

(७) वेद के इन अर्थों का ज्ञान महात्मा वसु को हुआ जिसने शन्तनु की स्त्री गंगा से नियोग करके भीष्म को पैदा किया (महा० आदि० अ० ६३ श्लोक ८७)।

इत्यादि अनेक ऋषियों को वेद के इस अर्थ का ज्ञान हुआ और उन्होंने वेद की आज्ञानुसार नियोग करके सन्तान पैदा की।

(४५२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। —ऋ० १०।१०।१०

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि 'हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री! तू (मत्) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर, क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी।'

यह निर्लज्जता की बात है कि स्त्री का पति तो घर में बैठा रहे और दूसरा कोई बाहरी सण्डा मौज उड़ावे। —पृ० ४९, पं० ८

उत्तर—नियोग जैसा पवित्र सिद्धान्त मौज उड़ाने के लिए नहीं, अपितु आपत्तिकाल में सन्तान-उत्पत्ति करने के लिए है। न ही नियोग करनेवाले को बाहरी सण्डा कहा जा सकता है, क्योंकि वेद की आज्ञा के अनुकूल पक्षों की रज़ामन्दी से पंचायत के नियमों के अनुसार विधिपूर्वक उस स्त्री का नियुक्त पति नियत किया जाता है, फिर उसे बाहरी सण्डा कहना कहाँ की सभ्यता है! हाँ, यदि कोई स्त्री-पुरुष वेदशास्त्र के विरुद्ध गुप्त रूप से आपस में संयोग करें तो उसे व्यभिचार और उनको सण्डा कहा जा सकता है। पति के नपुंसक अथवा दीर्घरोगी होने आदि की अवस्थाओं में पति के जीते हुए स्त्री को नियोग करके सन्तान पैदा करने की आज्ञा वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि सम्पूर्ण शास्त्र देते हैं। ऊपर के मन्त्र में इसी विषय का प्रतिपादन है। इसके अतिरिक्त **'प्राता रत्नम्'** इत्यादि [ऋ० १।१२५।१] मन्त्र के सायणभाष्य में स्पष्ट लिखा है कि—

'यद्यप्यसौ कलिङ्गाख्यस्य राज्ञःपुत्रस्तथापि तेन कलिङ्गेन स्वयं वृद्धत्त्वादपत्योत्पादनाय सामर्थ्यमलभमानेन तदुत्पादनाय याचितो दीर्घतमा ऋषिः उशिग्नामिकाम्, अपत्योत्पादनाय प्रेषितया राजमहिष्या अतिजरठेन महर्षिणा सह रन्तुं लज्जमानया स्ववस्त्राभरणैरलंकृत्य स्वप्रतिनिधित्वेन प्रेषितामुशिग्नामिकां योषितं दासीमित्यवगत्य मन्त्रपूतेन जलेनाभिषिच्य ऋषिपुत्रीं कृत्वा तया सह रेमे। तदुत्पन्नः कक्षीवान्नाम ऋषिः। —सायणभाष्य

भाषार्थ—यद्यपि वह कक्षीवान् कलिंग देश के राजा बली का पुत्र था, तथापि उस कलिंग राजा ने अपने वृद्ध होने के कारण सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ न होने के कारण उससे पुत्र पैदा करने के लिए दीर्घतमा ऋषि के पास भेजी हुई सुदेष्णा रानी ने अति वृद्ध दीर्घतमा से समागम करने में लज्जा मानकर अपने कपड़े और गहनों से सजाकर अपने स्थान में उशिग् नाम की दासी को भेज दिया। दीर्घतमा ऋषि ने उसको दासी जानकर, मन्त्रों से पवित्र किये जल से उसको स्नान कराके और उसे ऋषिपुत्री बनाकर उसके साथ समागम किया, उससे कक्षीवान् नामवाला ऋषि पैदा हुआ। —सायणभाष्य

जब राजा को इस बात का पता लगा कि रानी स्वयं नहीं गई, अपितु दासी को भेजा है तो राजा ने फिर ऋषि को प्रसन्न करके अपनी रानी को उसके पास भेजा। ऋषि ने रानी से नियोग करके सन्तान पैदा की, इस प्रकार से राजा बली का वंश संसार में चला।

—महा० आदि० १०४।४६-५१

तब ऋषि ने कहा कि मेरे सारे शरीर के दही, नमक और शहद लगाकर यदि सुदेष्णा चाटे तो पुत्र हो सकता है। तब सुदेष्णा ने ऐसा ही किया, किन्तु ऋषि की गुदा नहीं चाटी और लिंग को खूब चाटा, इस कारण जो लड़का पैदा हुआ उसके गुदा न थी, किन्तु लिंग बड़ा सुन्दर और मोटा-ताज़ा था। —मत्स्य० अ० ४८

मनुस्मृति [९।१६७] में भी **'यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा'** इस श्लोक में स्त्री को पति के नपुसंक तथा दीर्घरोगी होने पर नियोग द्वारा सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा विद्यमान है।

महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि जब पाण्डु सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो गया तब पाण्डु की आज्ञा से कुन्ती तथा माद्री ने धर्म, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमारों से नियोग करके युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को पैदा किया। —महा० आदि० १२३

व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्यप्रभृति पातकम्। भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्॥ १७॥
भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्। पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि॥ १८॥
पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च। न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदेव हि॥ १९॥

[गीता० सं० में से ये श्लोक निकाल दिये, अन्यत्र हैं।—सं०]—महा० आदि० अ० १२२

भाषार्थ—आज से पति का उल्लघंन करके व्यभिचार करनेवाली स्त्री को गर्भपात के समान दुःखदायी पातक होगा॥ १७॥ और कुमार-अवस्थायुक्त ब्रह्मचारिणी पतिव्रता स्त्री को उल्लघंन करके व्यभिचार करनेवाले पुरुष को पृथिवी पर वही पातक होगा॥ १८॥ पुत्र के लिए जिस स्त्री को पति नियोग करने की आज्ञा दे और वह स्त्री इस आज्ञा का पालन न करे उसको भी वही पातक होगा॥ १९॥

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया। सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात्॥ १६॥

—गरुड० आचार० अ० ९५

शतहीनं कृतं राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत्। तस्मादशमकश्चैव मदयन्तया वशिष्ठजः॥ ४०॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० १, अ० १

दुर्गां निर्जनमाहूय तामुवाच हरः स्वयम्। बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम्॥ १६३॥
निवेदनं मदीयं च निबोध शैलकन्यके। शृंगारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने॥ १६४॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ६

भाषार्थ—बुजुर्गों की आज्ञानुसार सपिण्ड वा सगोत्र देवर पुत्र की कामना से पुत्ररहित स्त्री के पास ऋतुकाल में अपने शरीर के घी लगाकर जावे॥ १६॥ राजा सुदास ने सौ वर्ष के लगभग राज्य किया, उसका लड़का अशमक हुआ, जोकि सुदास की स्त्री मदयन्ती में वशिष्ठ से पैदा हुआ॥ ४०॥ दुर्गा अर्थात् पार्वती को एकान्त में बुलाकर शिव ने स्वयं कहा और विविध प्रकार से अखण्डित, हितकारी और सत्यवाक्यों का बोध करवाया॥ १६३॥ हे पर्वत की कन्या! मेरे निवेदन को सुन और समझ। तेरा कल्याण हो, इस परम आत्मावाले विष्णु के लिए शृंगार दान दे दे॥ १६४॥

क्या आपके विचार में ये सब निर्लज्ज थे?—कदापि नहीं। जो बात वेदादि शास्त्रों के

अनुकूल हो उसे मानने या करने में लज्जा मानना अज्ञानियों का काम है। हाँ, वेदविरुद्ध पाप की बात में प्रत्येक मनुष्य को लज्जा माननी चाहिए।

'यदि आपको इस बात के जानने का शौक है कि स्त्री का पति तो बाहर रहे और दूसरा कोई बाहरी सण्डा आकर मौज उड़ावे' तो हम आपको आपके पाँचवें वेद महाभारत से दिखाकर आपकी तृप्ति कर देते हैं। देखिए, 'युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि गृहस्थी मृत्यु को कैसे जीत सकता है?' भीष्म ने उसके उत्तर में एक इतिहास सुनाया कि 'सुदर्शन नाम का एक ब्राह्मण था, उसकी स्त्री का नाम औघवती था। उसने अपनी स्त्री से कहा कि—

अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यं कथंचन॥ ४२॥

येन येन तुष्येत नित्यमेव त्वयातिथिः। अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा॥ ४३॥

तुझे अतिथि के प्रतिकूल कभी भी कोई काम नहीं करना चाहिए॥ ४२॥ जिस-जिस उपाय से अतिथि नित्य सन्तुष्ट रहे, चाहे अपना शरीर ही दान क्यों न करना पड़े, तुझे इसमें विचार नहीं करना चाहिए॥ ४३॥

एक दिन सुदर्शन लकड़ियाँ लेने जंगल में चला गया, पीछे से एक ब्राह्मण अतिथि बनकर घर पर आया और उसने औघवती से कहा कि—

यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसम्मतः। प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम्॥ ५४॥

हे रानी! यदि तुझको गृहस्थधर्म प्रमाण है तो तू अपना शरीर प्रदान करके मुझे प्रसन्न कर सकती है॥ ५४॥

यह सुनकर औघवती ने और पदार्थों से उसे प्रसन्न करना चाहा, किन्तु उसने शरीर-प्रदान के बिना और वस्तु स्वीकार न की, तब—

सा तु राजसुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः। तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विजर्षभम्॥ ५६॥

ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवोपविवेश ह॥ ५७॥

वह राजा की पुत्री, सुदर्शन की पत्नी, प्रथम दिवस के पति के वचन को याद करके लज्जित हुई उस ब्राह्मण से कहने लगी, बहुत अच्छा॥ ५६॥ तब ब्राह्मण प्रसन्न होकर और वह औघवती दोनों एकान्त स्थान में प्रविष्ट हो गये॥ ५७॥

इतने में सदुर्शन लकड़ियाँ लेकर आ गया और उसने अपनी स्त्री को आवाजें दीं कि तू कहाँ है? किन्तु—

तस्मै प्रतिवचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा। कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रता सती॥ ६०॥

उच्छिष्टास्मीति मन्वाना लज्जिता भर्तुरेव च। तूष्णीं भूताभवत् साध्वी न चोवाचाथ किंचन॥ ६१॥

उसने अपने पति की बात का उत्तर नहीं दिया, क्योंकि उस विप्र ने उसको हाथों से स्पर्श कर लिया था॥ ६०॥ मैं उच्छिष्ट हूँ, यह समझकर लज्जित हुई, पति के सामने चुप साध गई और कुछ न बोली॥ ६१॥

तब कुटी के अन्दर से वह ब्राह्मण बोला कि यह तो मेरे पास है। यह सुनकर सुदर्शन बोला कि—

सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम। गृहस्थस्य हि धर्मोऽग्र्यः संप्राप्तोऽतिथिपूजनम्॥ ६९॥

निःसन्दिग्धं यथावाक्यमेतन्मे समुदाहृतम्। तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे॥ ७२॥

हे ब्राह्मण! तेरा विषयभोग सफल हो, मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अतिथि की पूजा गृहस्थ का मुख्य धर्म है॥ ६९॥ मैंने जो यह स्पष्ट शब्द इस समय उच्चारण किये, हे ब्राह्मण! मैं सत्य कहता हूँ कि मैं स्वयं अपने को इससे पापी समझता हूँ॥ ७२॥

तब आकाश में नाद हुआ कि—

विजितश्च त्वया मृत्युर्योऽयं त्वामनुगच्छति॥ ८०॥[१]

हे सुदर्शन! तूने उस मौत को जीत लिया जो तेरे पीछे-पीछे फिरती थी॥ ८०॥

अतः हे युधिष्ठिर! प्रत्येक प्रकार से अतिथि की पूजा करने से ही गृहस्थी मृत्यु को जीत लेता है।

इसे कहते हैं पति का बाहर बैठे रहना तथा बाहरी सण्डे का मौज उड़ाना।

(४५३) प्रश्न—वेद का कथन यह है कि **'आ घा ता'** इत्यादि—

'यह मन्त्र यम-यमी सूक्त का है। यमदेव कुछ बड़े थे, और यमी छोटी थी। उसको संसार के धर्मों से अनभिज्ञता थी। एक दिन एक बरात चली जा रही थी। उस बरात में घोड़े पर चढ़े हुए वर को देखकर यम से पूछा कि भय्या! यह जो घोड़े पर चढ़ा है, कौन है, और घोड़े पर क्यों चढ़ा है तथा ये बहुत-से लोग इसके साथ क्यों जा रहे हैं? इसके ऊपर यम ने कहा कि बहिन! यह दूल्हा है और इसका विवाह है, यह विवाह करने के लिए जाता है। यह सुनकर यमी ने कहा कि आओ भय्या! हमारा और तुम्हारा विवाह हो जाए। यम बोले कि **(आ घा आगाच्छानि आगमिष्यन्ति उत्तरा युगानि)** आगे को आवेंगे वे दुष्ट युग कि **(यत्र जामयः अजामि कृण्वत्)** जिसमें भाई अयोग्य कार्य बहिन से करेंगे **(हे सुभगे! मत् मत्तः अन्यं पतिं इच्छस्व)** हे सौभाग्यवती! तू मेरे से अन्य पति की इच्छा कर। मेरी इच्छा तो तू कभी अपने मन में नहीं करना। **(वृषभाय बाहुं उपबर्बृहि)** योग्य पति के वास्ते तू अपने हस्त को ग्रहण करवा ले।' वेदमन्त्र का असली अर्थ यह है। —पृ० ५०, पं० ६

उत्तर—बेशक यह मन्त्र ऋग्वेद के यम-यमी सूक्त का है, किन्तु यहाँ पर यम-यमी नाम किसी पौराणिक इतिहास-प्रतिपादित विशेष व्यक्तियों का नहीं है, अपितु संयमी पुरुष का नाम यम तथा यम की पत्नी का नाम यमी है। आपका यमी को यम की बहिन वर्णन करना सर्वथा निर्मूल कल्पना है—

(१) वेदों में किसी स्त्री वा पुरुष का इतिहास नहीं है, क्योंकि जिस पुस्तक में किसी का इतिहास हो वह पुस्तक उसके जन्म के पश्चात् बनी हुई मानी जावेगी, किन्तु वेद सृष्टि के आदि में प्रकाशित हुए, अतः दूल्हा, बरात आदि की कथा वेदों में बताना प्रमाण तथा युक्तिशून्य है।

(२) व्याकरण के अनुसार यम शब्द से पत्नी अर्थों में **'पुंयोगादाख्यायाम्'** ४।१।४८ सूत्र से ङीष प्रत्यय होकर यमी शब्द सिद्ध हो सकता है। बहिन के अर्थों में व्याकरण के किसी सूत्र से यमी शब्द सिद्ध नहीं हो सकता।

(३) पौराणिक इतिहास के अनुसार भी यम की बहिन का नाम यमी नहीं था, अपितु यमुना था, जैसाकि—

या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम्। कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत्॥ २६॥
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्। भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥ २७॥
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसम्भवः। विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत्॥ २८॥
सुताः कन्यास्तयोर्जाता मनुर्वैवस्वतस्तथा। यमश्च यमुना चैव दिव्यतेजोभिरन्विताः॥ २९॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८

भाषार्थ—जो ज्ञानवाली स्त्री हो, वह जिस भी शुभ पुरुष को वर ले, वह चाहे उसका पुत्र, पिता वा भ्राता भी क्यों न लगता हो, वही उसका पति बन जाता है॥ २६॥ ब्रह्मा अपनी पुत्री को, विष्णु अपनी माता को तथा महादेव अपनी बहिन को ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त हो

१. यह प्रसंग महा० अनुशासन पर्व अ० २ में है। —सं०

गया॥ २७॥ इस वेद-अनुकूल वाणी को सुनकर सूर्य ने भी अपनी भतीजी संज्ञा को ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया॥ २८॥ सूर्य से उस संज्ञा में यम और यमुना दिव्य तेजस्वी पुत्र तथा पुत्रियाँ पैदा हुईं॥ २९॥

यहाँ पर आपके मतानुसार भी पुराणों तथा वेदों में विरोध है, क्योंकि आप तो कहते हैं कि वेद बहिन-भाई आदि सभी निकट के रिश्तों में विवाह का निषेध करता है और पुराण कहते हैं कि वेद माता, बहिन तथा बेटी, भतीजी से विवाह की आज्ञा देता है। यह आपके घर की बात है, इसे सुलझाने का यत्न करें, किन्तु यह स्पष्ट है कि यम की बहिन का नाम यमी नहीं अपितु यमुना था, अतः वेदों में उनका वर्णन नहीं है।

(४) यदि आपको वेदमन्त्र में स्थित जामि पद से बहिन के अर्थों का भ्रम हुआ है तो वह निर्मूल है, क्योंकि जामि शब्द अनेक अर्थों का वाचक है, जैसाकि—

(अ) **जामि इति उदकनामसु पठितम्।** —निरुक्त अ० २ खं० २४

(आ) **जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा असमानजातीयस्य वा।** —निरुक्त० ४।३।२०

(इ) **न जामये भगिन्यै।** —निरुक्त अ० ३ खं० ६

(ई) **जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः।** —अमर० ३।१४२

(उ) **शोचन्ति जामयो यत्र।** —मनु० ३।५७

'जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः' इत्यभिधानिकाः। यस्मिन् कुले भगिनीगृहपतिसंवर्धनीयसन्निहितसपिण्डस्त्रियश्च पत्नीदुहितृस्नुषाद्याः परितापादिना दुःखिन्यो भवति। —कुल्लूकभट्ट

(ऊ) **जामयो यानि गेहानि।** —मनु० ३।५८

यानि गेहानि भगिनीपत्नीदुहितृस्नुषाद्या अपूजिताः सत्योऽभिशपन्ति। —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—जामि शब्द का अर्थ जल, मूर्ख, पुनरुक्त, असमान जातीय, बहिन, कुलस्त्री, गृहस्थी से पालन योग्य स्त्री, सपिण्ड स्त्री, पत्नी, पुत्री, पुत्रवधू है। इन अर्थों में से इस मन्त्र में जामि शब्द का 'पत्नी' अर्थ ही संगत हो सकता है, अन्य नहीं। मन्त्र का सत्यार्थ यह है—

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृंण्वन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥

—ऋ० १०।१०।१०

आगमिष्यन्ति तान्युत्तराणि युगानि यत्र जामयः करिष्यन्त्यजामिकर्माणि। जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वा। असमानजातीयस्य वोपजनः। उपधेहि वृषभाय बाहूमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम्। —निरुक्त अ० ४ खं० २०

भाषार्थ—आगे को वे युग आवेंगे जिनमें करेंगी, पत्नियाँ न पत्नियोंवाले काम (अर्थात् पति के सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर व्यभिचार करने में प्रवृत्त होंगी, अतः यह मर्यादा नियत की जाती है कि ऐसी अवस्था में पति पत्नी को व्यभिचार, गर्भपात से बचाने के लिए नियोग की आज्ञा दे) जामि नाम पुनरुक्त का है या मूर्ख का है। या पुरुष से असमान जाति अर्थात् स्त्री का है। इस जामि शब्द में 'मि' प्रत्यय है। हे सौभाग्य की इच्छा करनेवाली स्त्रि! तू मुझसे अन्य और पति की इच्छा कर और वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष के लिए अपना हाथ पकड़ा दे।

निरुक्तकार को इस मन्त्र में जामि शब्द का बहिन अर्थ करना इष्ट नहीं है, अतः उसने इस मन्त्र में बहिन अर्थ नहीं किया। हाँ, निरुक्त अ० ३ खं० ६ में 'न जामये' इस मन्त्र में बहिन अर्थ इष्ट था, अतः बहिन अर्थ कर दिया।

अतः स्वामीजी का अर्थ वेद, निरुक्त, स्मृति के अनुकूल तथा युक्तियुक्त है और आपका अर्थ

वेद, निरुक्त तथा स्मृति के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

(४५४) प्रश्न—'सत्यार्थप्रकाश पृ० ११८ में लिखा है कि—'**प्रोषितो धर्मकार्यार्थम्**' इत्यादि [मनु० ९।७६] विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिए गया हो तो छह और धनादि कमाने के लिए गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देखके पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे।' स्वामीजी आर्यसमाजियों का कल्याण चाहते हैं, इनकी इच्छा है कि हमारे शिष्यों को बिना मेहनत के लड़के मिल जावें। —पृ० ५१, पं० १

उत्तर—मनुस्मृति का यह प्रकरण आपद्धर्म का वर्णन करता है, जैसाकि—

अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥ से
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ १०३ ॥ तक-मनु० अ० ९
आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥
विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिकृतः ॥ २९ ॥ —मनु० ११
तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥ २५ ॥
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥ २६ ॥ —महा० आदि० अ० १०३
उत्तमाद्देवरात् पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३४ ॥
अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥ —महा० आदि० अ० १२०

भाषार्थ—इससे आगे मैं स्त्रियों के आपद्धर्म का वर्णन करूँगा॥ ५६ ॥ इस श्लोक से लेकर, मैंने आपत्तिकाल में सन्तान-प्राप्ति का वर्णन कर दिया, इससे आगे दायभाग का वर्णन करूँगा॥ १०३ ॥ यहाँ तक आपत्काल के धर्म का वर्णन है। विवादास्पद श्लोक इस प्रकरण के अन्दर आ जाता है, अतः यह आपद्धर्म का प्रतिपादक है। आपद्धर्म की विधि से जो मनुष्य बिना आपत्काल के काम लेता है वह इस लोक तथा परलोक में उसके फल को प्राप्त नहीं होता, यह निश्चित है॥ २८ ॥ आपत्काल किसे कहते हैं?—सब देवता, साध्य, ब्राह्मण और महर्षियों ने आपत्तिकाल में मरने से डरते हुए विधि को प्रतिनिधि बनाया है॥ २९ ॥ चूँकि व्यभिचार, गर्भपात भी एक प्रकार की नैतिक मौत है, अतः यदि किसी स्त्री का पति परदेश गया हो और उसके मरने-जीने का कोई पता न हो और ऐसी अवस्था में यदि स्त्री अपने-आपको काबू में न रख सके तो उस स्त्री को व्यभिचार तथा गर्भपातरूप मृत्यु से बचाने के लिए मनु आदि ने इस विधि का वर्णन किया है।

महाभारत भी इसका अनुमोदन करता है। हे रानी! मैं उस क्षत्रियों के सनातनधर्म का तेरे से वर्णन करता हूँ॥ २५ ॥ तू आपद्धर्म के जाननेवालों से परामर्श करके और लोकमर्यादा को देखकर इसपर आचरण कर॥ २६ ॥ लोग आपत्तिकाल में उत्तम देवर से पुत्र की इच्छा करते हैं॥ ३४॥ हे कुन्ति! मनुजी फ़रमाते हैं कि अपने वीर्य से पैदा हुए पुत्र से भी अधिक श्रेष्ठ फलदायक पुत्र को मनुष्य नियोगविधि से प्राप्त होते हैं॥ ३५ ॥ इतिहास में इस प्रकार की घटना भी विद्यमान है कि—"जब नल खोया गया और दमयन्ती को उसके मरने-जीने का कोई पता न लगा तो दमयन्ती ने दूतों के द्वारा पता लगाया। ऋतुपर्ण राजा को यह सन्देश दिया कि—

आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्तीस्वयंवरम्। तत्र गच्छन्ति राजानो राजपुत्राश्च सर्वशः॥ २४॥

यथा च गणितः कालः श्वोभूते स भविष्यति। यदि सम्भावनीयं ते गच्छ शीघ्रमरिन्दम॥ २५॥
सूर्योदये द्वितीयं सा भर्तारं वरयिष्यति। न हि सा ज्ञायते वीरो नलो जीवति वा न वा॥ २६॥

—महा० वन० अ० ७०

भाषार्थ—''भीम की पुत्री दमयन्ती फिर से स्वयंवर में बैठेगी। वहाँ पर सब राजा और राजपुत्र जा रहे हैं॥ २४॥ गिनती के अनुसार वह समय कल को होनेवाला है। यदि सम्भव हो सकता है तो आप शीघ्र पहुँचें॥ २५॥ वह दमयन्ती कल को सूर्य के उदय होते ही दूसरा पति स्वीकार करेगी, क्योंकि वह इस बात को नहीं जानती कि नल जीता है या नहीं॥ २६॥''

सन्देश के सुनते ही राजा ऋतुपर्ण अपने सारथि नल को साथ लेकर विदर्भ देश में गया और इस प्रकार से दमयन्ती ने नल को ढूँढ लिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दमयन्ती ने यह सब उपाय नल को ढूँढने के लिए रचा, किन्तु सवाल यह है कि उस समय में यदि ऐसी अवस्था में स्त्री को पुनः पति स्वीकार करने का अधिकार न होता तो न तो दमयन्ती इस प्रकार का सन्देश दे सकती थी और न ही अयोध्या का राजा ऋतुपर्ण इस सन्देश को सुनकर विदर्भ नगर में आ सकता था। इससे सिद्ध है कि पति के परदेश जाने तथा गुम होने पर स्त्री को दूसरे पति का अधिकार उस समय में माना जाता था, अतः स्वामीजी ने आर्यजाति के कल्याण के लिए वेद, मनुस्मृति तथा इतिहास में प्रतिपादित इस नियोग के विधान को सत्यार्थप्रकाश में लिखा है। स्वामीजी ने लिखा है कि—

''नियोग'' विवाह के पश्चात् पति वा पत्नी के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष का आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।'' —सत्यार्थ० मन्तव्य० नं० ४७

जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है; परन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिए (सत्यार्थ० चतुर्थ० नियोग०)। अतः इस प्रकार का नियोग वेदशास्त्रसम्मत है। रही बात बिना मेहनत के सन्तान प्राप्त करने की, सो यह व्यभिचार सत्यार्थप्रकाश में नहीं मिल सकता। वह देखना हो तो पौराणिक ग्रन्थों में भरा पड़ा है। देखिए और पढ़िए—

(१) त्रिपाठी नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम कामिनी था। त्रिपाठी एक बार बाहर कथा करने गया। अभी एक मास ही हुआ था कि कामिनी ने काम से व्याकुल होकर—

दृष्ट्वा निषादं सबलं काष्ठभारोपजीविनम्। तस्मै दत्त्वा पञ्च मुद्रा बुभुजे कामपीडिता॥ ७॥
तदा गर्भं दधौ सा च व्याधवीर्येण सञ्चितम्। पुत्रोऽभूद्दशमासान्ते जातकर्म पिताकरोत्॥ ८॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० १ अ० ३३

भाषार्थ—लकड़ियाँ बेचकर निर्वाह करनेवाले बलवान् निषाद को देखकर उसे पाँच रुपये देकर उससे भोग कर लिया॥ ७॥ तब उस कामिनी ने व्याध के वीर्य से गर्भ धारण किया, दश मास के अन्त में पुत्र पैदा हुआ, पिता ने उसका जातकर्म संस्कार किया॥ ८॥

कहिए, यह बिना मेहनत के पुत्र-प्राप्ति है या नहीं? स्त्री ने एक मास की अनुपस्थिति को भी सहन नहीं किया।

(२) गौतम मुनि घर से बाहर स्नान करने गये। इन्द्र ने उसके आश्रम में प्रवेश किया और कहा कि—

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः ससमाहिते। संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे॥ १८॥
मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन। मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात्॥ १९॥

अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना। कृतार्थाऽस्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो॥ २०॥

—वाल्मी० बाल० स० ४८

भाषार्थ—हे सुसमाहिते! अर्थी लोग ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। हे सुमध्यमे! मैं तेरे साथ समागम करना चाहता हूँ॥ १८॥ हे राम! अहल्या ने इन्द्र को गौतम के रूप में देखकर उस कुबुद्धिवाली ने इन्द्र को प्रसन्न करने का विचार किया॥ १९॥ और प्रसन्नचित्त होकर इन्द्र से बोली—हे श्रेष्ठदेव! मैं कृतार्थ हूँ, आप शीघ्र यहाँ से चले जावें॥ २०॥

यहाँ अहल्या ने गौतम को मेहनत से बचाने के लिए इन्द्र से समागम करके पुत्र-प्राप्ति की चेष्टा की और पति के बाहर जाने पर चन्द घण्टे भी सहन न कर सकी।

(३) बृहस्पति की स्त्री तारा को चन्द्रमा ले-गया, उससे समागम किया, तारा गर्भवती हो गई। ब्रह्मा के कहने से चन्द्रमा ने तारा को वापस देना स्वीकार किया तो बृहस्पति ने कहा कि गर्भस्थ पुत्र मुझे मिलना चाहिए, क्योंकि—

क्षेत्रे मदीये चोत्पन्नस्तस्मात्स मम पुत्रकः। उक्तं च वेदशास्त्रज्ञैर्ऋषिभिर्धर्मदर्शिभिः॥ ४०॥
उप्तं वाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति। क्षेत्रिणस्तस्य तद् बीजं न बीजी फलभाग्भवेत्॥ ४१॥

—भवि० उत्तर० अ० ९९

भाषार्थ—यह मेरे खेत में पैदा हुआ है, इसलिए मेरा पुत्र है और वेदशास्त्र के जाननेवाले धर्मदर्शी ऋषियों ने कहा भी है॥ ४०॥ कि बोया हुआ वा हवा से उड़ाया हुआ बीज जिसके खेत में उगता है वह बीज खेतवाले का ही कहाता है। बीजवाला फल का भागी नहीं होता॥ ५१॥

कहिए महाराज! यहाँ पर बृहस्पति ने बिना मेहनत किये ही पुत्र-प्राप्ति का यत्न किया, किन्तु सफल न हुए।

(४५५) प्रश्न—इस चालाकी में एक 'नई पकड़' पकड़ दें वह यह है—सत्यार्थप्रकाश के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में यह लिखा है कि हम वेदानुकूल मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं? यह तो वेदानुकूल है नहीं, क्योंकि वेद में कोई मन्त्र ऐसा नहीं जिससे परदेश जाने में नियोग सिद्ध होता हो।

—पृ० ५१, पं० १२

उत्तर—श्रीमान्‌जी! आपने पकड़ तो क्या पकड़नी थी उलटा पकड़ में आ गये, क्योंकि आपने मनु के उपर्युक्त लेख का कोई वेदमन्त्र देकर वेद से विरोध नहीं दिखाया। वेद स्त्री को दूसरे पति का और पुरुष को दूसरी स्त्री का हक़ प्रतिपादन करता है। मनुस्मृति इस बात की व्याख्या करती है कि स्त्री तथा पुरुष को वह हक़ किन-किन अवस्थाओं में है।

—मनु० ९।७६ से ८१-१६७

अतः मनुस्मृति का लेख वेदानुकूल है, जैसाकि वेद कहता है—

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना॥ १७॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥ १८॥

—अथर्व० का० १४ अनु० २

भाषार्थ—इन दोनों मन्त्रों में '**देवृकामा**' ''पति से सन्तान के अभाव में देवर को सन्तान-निमित्त चाहनेवाली'' विशेण स्त्री के लिए विद्यमान है। ''**देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते**'', देवर नाम ही दूसरे वर का है। ये दोनों मन्त्र स्त्री को दूसरे पति का हक़ प्रतिपादन करते हैं। निरुक्त ३।१५ में ''कुहस्विद्'' इस ऋग्वेद के मन्त्र में आये हुए ''विधवेव देवरम्'' पद की

व्याख्या की है। देवर शब्द की व्याख्या उपर्युक्त ही है। विधवा शब्द की व्याख्या यों की है कि **'अपि वा धव इति मनुष्यनाम तद् नियोगाद्विधवा'** धव नाम मनुष्य का है उसके वियोग होने से स्त्री विधवा कहाती है। वियोग कई प्रकार का है, जिनमें से यह भी वियोग ही है कि पति परदेश चला जावे, और कई वर्ष तक उसके जीने वा मरने का कोई पता न लगे। ऐसी अवस्था में निरुक्त के कथनानुसार वह एक प्रकार की विधवा ही है और वेद तथा निरुक्त उसे दूसरे पति की आज्ञा देते हैं, अतः मनु तथा स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल होने से सत्य है तथा आपकी शंका सर्वथा निर्मूल और असत्य है॥

(४५६) प्रश्न—मनु का प्रकरण यह है कि—

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः। अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि॥ ७४॥
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिा। प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः॥ ७५॥
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः। विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥ ७६॥

—मनु० ९

जब पति परदेश को जाए तो स्त्री के खान-पान का प्रबन्ध करके जाए, क्योंकि जीविका के प्रबन्ध के बिना नेक स्त्री भी दूषित हो जाती है॥ ७४॥ यदि पति खान-पान का प्रबन्ध कर जाए तो स्त्री पति के परदेश रहते उबटना, तेल, इत्र न लगावे, अधिक पुष्ट भोजन न खाए, इत्यादि नियमों में स्थिर होकर अपना कालक्षेप करे और यदि पति वृत्ति का कुछ प्रबन्ध न कर जावे तो फिर स्त्री को चाहिए कि अनिन्दित दस्तकारी से गुज़र करे, किन्तु कोई निन्दा का काम न करे॥ ७५॥ यदि पति धर्म के लिए प्रदेश गया हो तो आठ, विद्या और यश के लिए गया हो तो छह, किसी और काम को गया हो तो तीन वर्ष उसकी प्रतीक्षा करे॥ ७६॥ इसके बाद क्या करे, वसिष्ठस्मृति लिखती है कि **''अत ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छेत्''** इसके बाद फिर वह अपने पति के पास वहीं चली जावे कि जहाँ उसका पति है। —पृ० ५१, पं० २१

उत्तर—'या बेईमानी तेरा आश्रय!' प्रकरण तो वर्णन किया जा रहा है मनु का और नतीजा बतलाया जा रहा है वसिष्ठस्मृति से और वह भी मनघड़न्त, फरज़ी संस्कृत बना मनु के प्रकरण को श्राद्ध के लड्डू की भाँति गटक गये। लीजिए, हम मनु का प्रकरण बतलाते हैं—

(१) हम पीछे वर्णन कर आये हैं कि मनु में ९।५६ से १०३ तक स्त्रियों के आपद्धर्म्म का वर्णन है, अतः यह प्रकरण आपद्धर्म का है। स्त्री पति के पास उसी सूरत में जा सकती है जबकि पति का पता हो कि वह कहाँ है और इस अवस्था का नाम आपद्धर्म है नहीं। यह तो साधारण अवस्था है। आपद्धर्म तो यह है कि पति का पता ही न हो कि वह जीता है या मर गया; कहाँ है, कहाँ नहीं। ऐसी अवस्था में स्त्री क्या करे? जैसाकि दमयन्ती को नल के विषय में पता ही नहीं था कि वह जीता है वा मर गया। खैर, दमयन्ती ने तो तलाश की और नल मिल गया किन्तु यदि पर्याप्त खोज के पश्चात् भी पता न लगे और स्त्री युवती हो, रह न सके, और उसके चालचलन का खतरे में पड़ने का अन्देशा हो, तो ऐसी सूरत में वही करना पड़ेगा जो दमयन्ती ने तो नल को बुलाने के लिए किया, किन्तु ऋतुपर्ण राजा उसको सत्य समझकर शीघ्रतापूर्वक आया, अर्थात् स्वयंवर द्वारा दूसरे पति की प्राप्ति। इसके बिना और कोई उपाय हो भी नहीं सकता।

(२) मनु के प्रकरण में मनु ही प्रमाण हो सकता है। मनु ने इसी प्रकरण में जहाँ स्त्री के आपद्धर्म का वर्णन किया है, वहाँ पुरुष के विषय में भी आपद्धर्म का वर्णन किया है और जो उपाय पुरुष के लिए बतलाया है वही उपाय स्त्री के लिए भी समझना चाहिए। वह यह है कि—

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥

—मनु० ९।८१

यदि स्त्री वन्ध्या हो तो आठवें वर्ष, सन्तान मर जानेवाली हो तो दशवें वर्ष, कन्या-ही-कन्या पैदा करनेवाली हो तो ग्यारहवें वर्ष और यदि कटुभाषण करनेवाली हो तो तत्काल ही पुरुष को दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तान पैदा कर लेनी चाहिए॥८१॥

बस, स्त्री के लिए भी यही उपाय है कि उपर्युक्त अवस्था में अन्य पुरुष के साथ नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले और यही मनु की सम्मति है, जिसे स्वामीजी ने स्पष्ट लिख दिया है।

(३) वसिष्ठस्मृति ने भी स्वामीजी की पुष्टिकी है, जैसाकि—

''प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षा प्रवसेद्यद्यकामा यथा प्रेतस्य एवं च वर्तितव्यं स्यात्। एवं पञ्च ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्याप्रजाता त्रीणि वैश्याप्रजाता द्वे शूद्राप्रजाता। अत ऊर्ध्वं समानोदकपिण्डजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान्। न खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात्''॥ —[खेमराज कृष्णदास, बम्बई सं० १९८१।—सं०]—वसिष्ठस्मृति अध्याय १७

भाषार्थ—पति परदेश गये हुए की स्त्री यदि इच्छा को रोक सके तो पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करके जैसे मरे पति की स्त्री बर्ताव करती है वैसा बर्ताव करे। ऐसे ही पाँच वर्ष ब्राह्मणी को हो जाएँ और चार वर्ष क्षत्राणी को हो जाएँ, तीन वर्ष वैश्य की स्त्री को हो जाएँ तथा दो वर्ष शूद्रा को हो जाएँ तो उसके पश्चात् [नियोग से सन्तान उत्पन्न कर ले]। अपना निकटवर्ती खानदानी, अपना जातीय, अपना ऋषि, अपने गोत्रों में से पूर्व-पूर्व का अधिक अच्छा है। निश्चितरूप से खानदानी की विद्यमानता में दूसरे के साथ समागम करनेवाली न हो।

इसका नाम है प्रकरण तथा सत्य प्रमाण। भला! कभी संसार में बनावटी बातों से काम चला करता है? निश्चय समझिए दुनिया में सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं।

(४५७) प्रश्न—स्वमीजी स्त्री को पति के पास नहीं जाने देते हैं, यहाँ ही मौज उड़ाने की आज्ञा देते हैं। —पृ० ५२, पं० १४

उत्तर—नियोग करने को मौज उड़ाना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नियोग व्यभिचार नहीं है, अपितु नियोग आपद्धर्म है। वेद-शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध स्त्री-पुरुष के प्राइवेट सम्बन्ध का नाम व्यभिचार तथा वेद-शास्त्र की आज्ञा के अनुसार पंचायत द्वारा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का नाम आपद्धर्म है। चूँकि नियोग की रस्म वेद-शास्त्र के अनुकूल स्त्री-पुरुष तथा सम्बन्धियों की सम्मति में पंचायत द्वारा अदा की जाती है, अतः व्यभिचार या मौज उड़ाना नहीं कहा जा सकता, जैसेकि—

(१) नियोग धर्म—

धर्मं पुराणमनुपालयन्ती। —अथर्व० १८।३।१

इति धर्मो व्यवस्थितः। —मनु० ९।१२०

धर्मतः प्रसवश्च सः। —मनु० ९।१४५

स्वधर्मेण नियुक्तायाम्। —मनु० ९।१६७

धर्मं कर्तुमिहार्हसि॥ असंशयं परो धर्मः॥ —महा० आदि० १०३।१०, १३

धर्मश्च न पराभवेत्। —महा० आदि० १०३।२२

तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम्। —महा० आदि० १०३।२५

तदिदं धर्मयुक्तं च। —महा० आदि० १०५।२०[१]
पुत्रकामे च धर्मतः। —महा० आदि० १०५।३४
धर्ममुद्दिश्य कारणं दृष्टं ह्येतत् सनातनम्। —महा० आदि० १०५।३६
सा धर्मतोऽनुनीयैनाम्। —महा० आदि० १०५।४९
संयुक्ता सा हि धर्मेण। —महा० आदि० १२३।५

(२) नियोग का आज्ञा से होना तथा आप्त पुरुषों की सम्मति—

मन्नियोगान्महाबाहो। —महा० आदि० १०३।१०
सुहृदश्च प्रहृष्येरन्॥ २२॥ प्राज्ञैः सह पुरोहितैः॥ २६॥ —महा० आदि० १०३
भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा। —महा० आदि० १०५।४९
मन्नियोगाद्यत क्षिप्रम्। —महा० आदि० १२०।४० [गीता० सं० में से निकाल दिया गया]
मन्नियोगात् सुकेशान्ते। —महा० आदि० १२२।३०

हाँ, मौज उड़ाने की शिक्षा पौराणिक ग्रन्थों में विद्यान है, जैसाकि

अनावृत्ताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने। कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि॥ ४॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात् सुभगे पतीन्। नाधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मो पुराभवत्॥ ५॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः॥ ८॥
श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः। जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत्॥ ११॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः। मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव॥ १२॥
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमुवाच ह। मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः॥ १३॥
ऋतावृत्तौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते। नातिवर्त्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः॥ २५॥
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातन्त्र्यं स्त्री किलार्हति। धर्ममेव जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते॥ २६॥

—[गीता० सं० में से निकाले गये। महा० प्रकाशक मण्डल में हैं।—सं०]
—महा० आदि० अ० १२२

भाषार्थ—हे सुन्दरमुखी! निश्चय से पहले स्त्रियाँ बेपर्द थीं और हे सुन्दर हँसीवाली! वे आवारागर्द और स्वतन्त्र थीं॥ ४॥ हे सौभाग्यवती! कुमार अवस्था से ही पतियों का उल्लंघन करने से उन्हें कोई अधर्म न होता था। हे वरारोहे! यही धर्म पुराना था॥ ५॥ यह धर्म स्त्रियों पर दया करनेवाला है और यही सनातनधर्म है॥ ८॥

निश्चय जानो पुराने ज़माने में श्वेतकेतु की माता को उसके पिता के सामने ही एक ब्राह्मण ने हाथ से पकड़ा और कहा कि आओ चलें॥ ११॥ ऋषिपुत्र श्वेतकेतु यह देखकर कि उस मेरी माता को इस प्रकार से बलात् ले-जाया जा रहा है क्रोध में आ गये॥ १२॥ उसके पिता ने उसे क्रोध में देखकर श्वेतकेतु को कहा कि पुत्र! क्रोध मत कर, यह तो सनातनधर्म है॥ १३॥ हे राजपुत्री! प्रत्येक ऋतुकाल में अपने पति का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ऐसा धर्म के जाननेवाले कहते हैं॥ २५॥ और बाक़ी के समयों में निश्चयरूप से स्त्री स्वतन्त्र है, सन्त लोग इस प्रकार के धर्म को पुराना धर्म कहते हैं॥ २६॥

इसको कहते हैं कि ''पति के पास न जाने देना और ग़ैर मर्दों से मौज उड़ाने की आज्ञा देना''।

---

१. गीता० संस्करण में ये श्लोक एक-दो अध्यायों और श्लोकों के अन्तर से उपलब्ध हैं। आगे भी ऐसा ही समझें। —सं०

(४५८) प्रश्न—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २२४ में लिखा है कि—

'इमां त्वमिन्द्र' ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्यदान देके सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। हे वीर्यप्रद! पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तानपर्यन्त उत्पन्न कर, अधिक नहीं। तथा हे स्त्री! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर, अर्थात् एक तो उनमें विवाहित और दशपर्यन्त नियोग के पति कर, अधिक नहीं। यहाँ पर स्वामीजी ने स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिए पतियों का भण्डार खोल दिया। —पृ० ५२, पं० १८

उत्तर—प्रथम तो आपने स्वामीजी के अर्थ में कोई ग़लती नहीं बतलाई कि स्वामीजी ने वेदमन्त्र के कौन-से पद का अर्थ ग़लत किया है और यदि अर्थ ठीक है तो फिर स्वामीजी पर क्या आक्षेप हो सकता है जबकि वेद का लेख आपको भी स्वत:प्रमाण है?

दूसरे, आपने स्वामीजी के संस्कृत अर्थ के उस भाग को छोड़ दिया है जो स्वामीजी के अर्थ को स्पष्ट कर देता है, वह पाठ यह है—

'अर्थात् कस्यांचिदापत्कालावस्थायां प्राप्तायामेकैकस्याभावे सन्तानोपत्यर्थं दशम पुरुषपर्यन्तं नियोगं कुर्यात्। तथा पुरुषोऽपि विवाहितस्त्रियां मृतायां सत्यां सन्तानाभावे एकैकस्या अभावे दशम्या विधवया सह नियोगं करोत्विति, इच्छा नास्ति चेन्मा कुरुताम्।'

—ऋग्वेदादि० नियोगप्रकरण, इमां त्वमिन्द्रमन्त्रभाष्ये

भाषार्थ—अर्थात् किसी आपत्काल अवस्था के प्राप्त होने पर एक-एक के अभाव में सन्तानोत्पत्ति के लिए दशवें पुरुषपर्यन्त नियोग कर ले तथा पुरुष भी विवाहित स्त्री के मरने पर सन्तान के अभाव में एक-एक के अभाव में दशवीं विधवापर्यन्त के साथ नियोग करे। यदि इच्छा न हो तो न करे।

तीसरे, इस विषय में वेद का केवल एक ही मन्त्र नहीं है अपितु वेद के अनेक मन्त्र स्त्री को ग्यारह तक पति की आज्ञा देते हैं, जैसाकि—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ५॥

—ऋ० १०।८५।४०

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्ते परः पतिः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ३॥

—अथर्व० कां० १४ सू०२

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि॥ १॥ यदि द्विवृषोऽसि०॥ २॥ यदि त्रिवृषोऽसि०॥ ३॥ यदि चतुर्वृषोऽसि०॥ ४॥ यदि पञ्चवृषोऽसि०॥ ५॥ यदि षड्वृषोऽसि०॥ ६॥ यदि सप्तवृषोऽसि०॥ ७॥ यद्यष्टवृषोऽसि०॥ ८॥ यदि नववृषोऽसि०॥ ९॥ यदि दशवृषोऽसि०॥ १०॥ यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि॥ ११॥

—अथर्व० कां० ५ सू० १६

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः। ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा॥ ८॥

—अथर्व० कां० ५ सू० १७

भाषार्थ—हे स्त्री! तेरा पहला पति सोम है, गन्धर्व नाम का दूसरा पति प्राप्त होता है। तेरा तीसरा पति अग्नि है और चौथे से लेकर अधिक जितने पति हैं उनका नाम मनुष्य है॥ ५॥ हे स्त्री! तू पहले सोम की पत्नी बनती है, गन्धर्व तेरा दूसरा पति है, तीसरा पति अग्नि नामवाला है, चौथे से अधिक तेरे पतियों का नाम मनुष्य है॥ ३॥ हे पुरुष! यदि तू स्त्री में वीर्यसिंचन करनेवाला पहला पति है तो सन्तान पैदा कर, वरना निर्बल कहलावेगा॥ १॥ यदि दूसरा पति

है ॥ २ ॥ यदि तीसरा पति है ॥ ३३ ॥ यदि चौथा पति है ॥ ४ ॥ यदि पाँचवाँ पति है ॥ ५ ॥ यदि छठा पति है ॥ ६ ॥ यदि सातवाँ पति है ॥ ७ ॥ यदि आठवाँ पति है ॥ ८ ॥ यदि नौवाँ पति है ॥ ९ ॥ यदि दशवाँ वीर्यसिंचन करनेवाला पति है तो सन्तान पैदा कर, वरना निर्बल कहलावेगा ॥ १० ॥ यदि ग्यारहवाँ पति है तो वह तू दु:खों में तड़पने से बच सकता है ॥ ११ ॥ यदि स्त्री के पहले दश पति ब्राह्मण न हों, ग्यारहवाँ यदि ब्राह्मण हाथ पकड़ ले तो वही एक पति गिना जाएगा ॥ ८ ॥

यहाँ पर वेद में आपत्तिकाल में यदि सन्तान की इच्छा हो तो वेदानुकूल पंचायत द्वारा नियोग से एक-एक के अभाव में ग्यारहवें तक पति की प्राप्ति का वर्णन है। इसका नाम मौज उड़ाने के लिए पतियों का भण्डार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पुराणों में भी इसपर आचरण करने का वर्णन है।

अम्बिका अम्बालिका के दो-दो पति विचित्रवीर्य और व्यास—

अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे। भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ६५ ॥

—महा० आदि० अ० १०२

ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्त:सत्यवागृषि: ॥ ४ ॥
सम्बभूव तया सार्द्धं मातु: प्रियचिकीर्षया ॥ ६ ॥
ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत। अम्बालिकामथाभ्यगादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम् ॥ १५ ॥

—महा० आदि० अ० १०६

भाषार्थ—भीष्म ने वेदानुसार कर्म द्वारा अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य के लिए अम्बिका और अम्बालिका दो पत्नियाँ दीं ॥ ६५ ॥

उसके पश्चात् सत्य बोलनेवाले ऋषि व्यास ने पहले अम्बिका में नियोग किया और माता को प्रसन्न करने की इच्छा से उसके साथ समागम किया ॥ ४। ६ ॥ उसके पश्चात् उसी विधि से वह ऋषि व्यासजी उस अम्बालिका से समागम को प्राप्त हुए और वह भी उनको देखकर ॥ १५ ॥

(२) माद्री के तीन पति १ पाण्डु और दो अश्विनीकुमार—

ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाश्विनौ ॥ तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ ॥ १६ ॥

—महा० आदि० अ० १२४

भाषार्थ—उसके पश्चात् माद्री ने विचार करके मन से अश्विनीकुमारों को याद किया। उन्होंने आकर उसमें दो पुत्र पैदा किये, जोकि जौड़ले—निकुल और सहदेव थे ॥ १६ ॥

(३) कुन्ती के चार पति—१ पाण्डु, २ वायु, ३ धर्म, ४ इन्द्र—

संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह ॥ ५ ॥
युधिष्ठिर इति ख्यात: पाण्डो: प्रथमज: सुत: ॥ ९ ॥
ततस्तथोक्ता भर्त्रा तु वायुमेवाजुहाव सा ॥ ११ ॥
तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रम: ॥ १४ ॥
एवमुक्ता तत: शक्रमाजुहाव यशस्विनी। अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम् ॥ ३४ ॥

—महा० आदि० अ० १२३

भाषार्थ—उस कुन्ती ने योगमूर्ति धारण करनेवाले धर्म से समागम किया ॥ ५ ॥ जिससे पाण्डु का पहला पुत्र प्रसिद्ध युधिष्ठिर पैदा हुआ ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् पति के कहने से कुन्ती ने वायु को बुलाया ॥ ११ ॥ उससे कुन्ती ने भयंकर बलवाला भीम पैदा किया ॥ १४ ॥ इसी प्रकार से पाण्डु के कहने पर यशस्विनी कुन्ती ने इन्द्र को बुलाया। तब इन्द्र आया और उसने कुन्ती में अर्जुन को पैदा किया ॥ ३४ ॥

(४) द्रौपदी के पाँच पति—

पाण्डवेभ्यो हि पाञ्चाल्यां द्रौपद्यां पञ्च जज्ञिरे। कुमारा रूपसम्पन्नाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ११७ ॥
प्रतिविन्ध्यो युधिष्ठिरात् सुतसोमो वृकोदरात्। अर्जुनात् श्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ ११८ ॥
तथैव सहदेवाच्च श्रुतसेनः प्रतापवान्॥ ११७॥ —महा० आदि० अ० ६३

भाषार्थ—पाँच पाण्डवों से द्रौपदी में रूपवान् सर्वशास्त्रसम्पन्न पाँच कुमार पैदा हुए॥ ११७॥ युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकीर्ति तथा नकुल से शतानीक और॥ ११८॥ सहदेव से प्रतापी श्रुतसेन पैदा हुआ॥ ११९॥

(५) गौतम की पुत्री जटिला के सात पति थे—

श्रूयते ही पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी। ऋषीनध्यासितवती सप्तधर्मभृतां वरा॥ १४॥

भाषार्थ—पुराणों में सुना जाता है कि गौतम की पुत्री जटिला ने सात ऋषियों को पतिरूप से ग्रहण किया॥ १४॥

(६) वृक्ष की पुत्री मुनिजा के दश पति थे—

तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः। सङ्गताभूद्दशभ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः॥ १५॥
[गीता० सं० में अ० १९५।—सं०]—महा० आदि० अ० १९८

भाषार्थ—वैसे ही वृक्ष की पुत्री मुनिजा ने भी तप से पवित्र आत्मावाले दश भाई प्रचेताओं से समागम किया॥ १५॥

(७) दिव्यादेवी के इक्कीस पति थे—

एकविंशतिभर्तारः काले काले मृतास्तदा। ततो राजा महादुःखी संजातः ख्यातविक्रमः॥ ६५॥
—[वैंकटेश्वर प्रेस द्वारा मुद्रित संस्करण में श्लोक सं० ७० है]—पद्म० भूमि० अ० ८५

भाषार्थ—दिव्यादेवी के इक्कीस पति समय-समय पर मर गये, तब प्रसिद्ध कीर्तिवाला दिवोदास राजा महादुःखी हो गया॥ ६६॥

अब क्या आप कह सकते हैं कि यह व्यासजी ने स्त्रियों के मौज उड़ाने के लिए पतियों का भण्डार खोल रक्खा है? कदापि नहीं। हाँ, पौराणिक ग्रन्थों में स्त्रियों को मौज उड़ाने के लिए पतियों के सैकड़ों भण्डार मौजूद हैं (देखो नं० ४५७)।

(४५९) प्रश्न—वेद का असली अभिप्राय यह है कि—

'विवाह के समय में दूल्हा देवराज इन्द्र से प्रार्थना करता है कि कल्याणकारक वृष्टि करनेवाले हे इन्द्र! स्त्री को तू सुपुत्र और सुभाग करना। किस प्रकार? इसमें दश पुत्र उत्पन्न हों और ग्यारहवाँ मैं पति बना रहूँ।'

उत्तर—इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥ —ऋ० अ० ८ अ० ३ व० २८

(१) आपने इस मन्त्र में आये हुए '**आधेहि**' पद का अर्थ 'उत्पन्न हों' तथा '**कृधि**' पद का अर्थ 'मैं पति बना रहूँ' किस व्याकरण के आधार पर किया है। '**आधेहि**' मध्यम पुरुष का प्रयोग है जिसके अर्थ; हैं 'इसमें दश पुत्रों को धारण कर'। आपने इसके प्रथम पुरुष के अर्थ 'इसमें दश पुत्र उत्पन्न हों' कर दिये तथा '**कृधि**' भी मध्यम पुरुष का प्रयोग है जिसके अर्थ होते हैं 'ग्यारहवें तक पति कर', आपने इसके उत्तम पुरुष के अर्थ 'ग्यारहवाँ मैं पति बना रहूँ' कर मारे जोकि व्याकरण से अत्यन्त विरुद्ध हैं।

(२) यदि आपके अर्थों को ठीक मान भी लिया जाए तो इसके यह अर्थ होंगे कि स्त्री को दूसरे पति का भी अधिकार प्राप्त नहीं है और यह अर्थ स्वयं वेदों के ही विरुद्ध हैं, क्योंकि

स्त्री को दूसरे पति का हक़ प्रतिपादन करनेवाले वेदों में अनेक मन्त्र हैं, जैसाकि—

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम्।
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः॥ —अथर्व० ९।५।२७-२८
विधवेव देवरम्। —ऋ० १०।४०।२
इयं नारी पतिलोकं वृणाना। —अथर्व० १८।३।१
देवृकामा। —ऋ० १०।८५।४४
प्राता रत्नम्। —ऋ० १।१२५।१
उत यत् पतयो दश स्त्रियः —अथर्व० ५।१७।८
उदीर्ष्व नारि। —ऋ० १०।१८।८
सोमः प्रथमो विविदे। —ऋ० १०।८५।४० इत्यादि-इत्यादि।

अतः स्वामीजी का अर्थ वेदानुकूल तथा युक्तियुक्त है और आपका अर्थ वेद, व्याकरण तथा युक्ति के अत्यन्त विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल है।

जैसेकि लिखा भी है कि—

नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम्। पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम्॥ २२॥
—महा० अनु० अ० ८

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने। तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः॥ १९१॥
—मनु० ९

पत्यन्तर्विधान और स्वामी दयानन्द

(४६०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० १११ में लिखा है कि—

'किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में' इत्यादि से लेकर 'नष्ट होना' इत्यन्त तक पाठ देकर लिखा है कि—'इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह व अनेक विवाह कभी न होना चाहिए'।

यहाँ पर स्वामीजी द्विजों में अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष का तो पुनर्विवाह होना लिखते हैं, किन्तु क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष के विवाह का निषेध करते हैं।
—पृष्ठ २१, पंक्ति ७

उत्तर—यदि स्वामीजी ने द्विजों में क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के लिए विवाह का निषेध किया है तो नियोग का तो विधान किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुनर्विवाह और नियोग में कुछ-एक शर्तों का अन्तर है, किन्तु स्त्री को दूसरे पति की प्राप्ति दोनों में विद्यमान हैं। आपने स्वामीजी के लेख को आगे और पीछे से चुराकर और अधूरा लेख लिखकर जनता को धोखे में डालने का यत्न किया है। देखिए, स्वामीजी का पूरा लेख इस प्रकार है—

"**प्रश्न**—स्त्री और पुरुष का बहुविवाह होना योग्य है वा नहीं?

उत्तर—युगपत् न, अर्थात् एक समय में नहीं।

प्रश्न—क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिएँ?

उत्तर—हाँ, जैसे—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥
—मनु० ९।१७६

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो, अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और

अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए, किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री, क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिए।

प्रश्न—पुनर्विवाह में क्या दोष है?

उत्तर (पहला)—स्त्री-पुरुष में प्रेम का न्यून होना, क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़कर दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले। (दूसरा)—जब स्त्री वा पुरुष पति वा स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्वपति के पदार्थों को उड़ा ले-जाना और उनके कुटुम्बवालों का उनसे झगड़ा करना। (तीसरा)—बहुत-से भद्रकुलों का नाम वा चिह्न भी न रहकर उसके पदार्थ छिन्न-भिन्न हो जाना। (चौथा)—पतिव्रत और स्त्रीव्रतधर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के कारण द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिए।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जाए तब भी उसका कुल नष्ट हो जाएगा और स्त्री-पुरुष व्यभिचार आदि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे, इसलिए पुनर्विवाह का होना अच्छा है।

उत्तर—नहीं-नहीं, क्योंकि जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य में रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिए किसी स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी नहीं होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।''

अब इस लेख से स्पष्टरूप से सिद्ध है कि स्वामीजी ने द्विजों में अक्षतयोनि स्त्री तथा अक्षतवीर्य पुरुष के लिए पुनर्विवाह तथा क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के लिए नियोग की आज्ञा दी है। पुनर्विवाह तथा नियोग दोनों में स्त्री के लिए दूसरे पति की प्राप्ति विद्यमान है, अतः आपका आक्षेप सर्वथा निरर्थक है। स्त्री को दूसरे पति के अधिकार के बारे में वेदों और शास्त्रों में प्रमाण भरे पड़े हैं, जैसाकि—

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये। रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥ ४॥

—अथर्व० १४।२।४

भाषार्थ—सोम ने पहले गन्धर्व के लिए दिया। गन्धर्व ने अग्नि के लिए और अग्नि ने भी इस स्त्री, धन और पुत्रों को मुझे दिया॥ ४॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः। राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः॥ १०॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्। ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते॥ ११॥

—अथर्व० ५।१७

भाषार्थ—विद्वान् लोग स्त्री का पुनः दान कर देते हैं। विचारशील मनुष्य भी विधवा का पुनः दान करते हैं। राज्यकर्त्ता व्यवस्थापक लोग भी यथार्थ का निर्णय करके ब्राह्मण की पत्नी को भी पुनः दान करने की आज्ञा देते हैं॥ १०॥

विद्वान् लोग ब्राह्मण की पत्नी को पुनः निर्दोष, निष्पाप करके और उसे योग्य पति के हाथों पुनः दान करके भूमि के बल को विभाग करके उस महान् यशस्वी परमात्मा की उपासना करते हैं॥ ११॥

यहाँ जाया नाम कन्या का नहीं अपितु पत्नी का है, जैसाकि—

पतिर्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते। जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥

—मनु० ९।८

भाषार्थ—पति पत्नी में प्रवेश करके गर्भ होकर इस संसार में पैदा होता है। जाया का यही जायापन है कि इसमें पति पुनः पैदा होता है॥ ८॥

पुत्र पति के सदृश होता है यह इस श्लोक का अभिप्राय है।

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृत्तासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम्॥

—अथर्व० १८।३।३

भाषार्थ—मृतपतियों के पास से जीवित युवती=जवान स्त्री को ले-जाई गई और पुनः विवाह करती हुई को मैं गृह का व्यवस्थापक देखूँ। जब वह अन्धकार, शोक-मोह से ढकी हुई हो तो उसको आगे के कष्टदायक दृश्य से हटाकर दूसरी ओर ले-जाऊँ॥६॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३०॥

—पराशरस्मृति अ० ४

भाषार्थ—पति के खोने, मरने, संन्यासी, नपुंसक, या पतित होने आदि पाँच आपत्तियों में स्त्रियों को दूसरा पति करने की विधि है॥३०॥

'पतौ' पद पर आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यह प्रयोग ग्रन्थों में आता है, जैसाकि—

नो अस्मिन् रमसे पतौ॥ ३॥ —अथर्व० ३।१८

तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कृतकृत्यः पतौ सुखम्॥ ८७॥ —भविष्य० उत्तर० अ० २०५

शंकरो बहुधा देवी विहर्तुं सम्प्रतीक्षते। एवं पतौ सुकामार्ते गम्यतां गिरिनन्दिनि॥ ४३॥

—शिव० रुद्र० युद्ध० अ० ५१

नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च। भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ॥ २४॥

—वाल्मी० युद्ध० स० ४८

अतः **'पतौ'** प्रयोग आर्ष होने से ठीक है।

(४६१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ११४ में लिखा है कि 'द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय बार नहीं। इस लेख में पीछे लिखे अक्षतवीर्य पुरुष और अक्षतयोनि स्त्री के विवाह का भी खण्डन किया है। —पृ० २१, पं० २१

उत्तर—यहाँ पर अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष के पुनर्विवाह का प्रकरण ही नहीं है, अपितु यहाँ पर क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के नियोग का प्रकरण चल रहा है। यहाँ पर विधुर पुरुष को कुमारी कन्या से तथा विधवा स्त्री को कुमारे पुरुष से विवाह का निषेध किया है। आपने अपने स्वभाव के अनुसार यहाँ भी आगे-पीछे के पाठ को चुराकर, अधूरा पाठ पेश करके, वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना करके आत्मघात का पाप ही किया है। देखिए, पूरा पाठ इस प्रकार है—

प्रश्न—पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि वह दूसार विवाह करेगा?

उत्तर—हम लिख आये हैं कि द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय बार नहीं। कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमारे पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष का विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता वैसे ही विवाहित और स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा, तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिए।

कहिए महाराज! यहाँ पुनर्विवाह का खण्डन है या विधुर पुरुष के साथ कुमारी कन्या के

विवाह का खण्डन करके विधुर और विधवा के नियोग का मण्डन वर्णन किया है? परमात्मा आपको सचाई प्रकाशित करने का बल दें, ताकि आप स्त्रियों को दूसरे पति के हक़ का विरोध करना छोड़ दें, क्योंकि आपके ग्रन्थों में उसके अनेक प्रमाण विद्यमान हैं, जैसेकि—

(१) सीता के कथनानुसार राम की सहायतार्थ लक्ष्मण के न जाने पर सीता ने कहा कि—

इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते॥ ६॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्॥ ७॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत्॥ २३॥
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥ २४॥
कथमिन्दीवरश्यामं रामं पद्मनिभेक्षणम्॥ २५॥
उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्॥ २६॥
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे॥ ३७॥ —वाल्मी० अरण्य० स० ४५

भाषार्थ—हे लक्ष्मण! तू मेरे कारण राम की मौत चाहता है॥ ६॥ तू मेरे लोभ के कारण ही राम की सहायतार्थ नहीं जाता॥ ७॥ हे लक्ष्मण! यदि सपत्न पुरुषों में यह पाप हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है॥ २३॥ तू मेरे कारण से छिपा हुआ राम के पीछे फिर रहा है, या तुझे भरत ने भेजा है॥ २४॥ मैं कैसे कमलनयन घनश्याम राम पति का आश्रय लेकर दूसरे पुरुष की कामना कर सकती हूँ॥ ३५॥ मैं राम के बिना किसी पुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती॥ ३७॥

सीता का लक्ष्मण को यह उलाहना देना इस बात को सिद्ध करता है कि उस समय में स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त था।

(२) रावण ने सीता से कहा कि—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते॥ ३४॥
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति॥ ३५॥ —वाल्मी० अरण्य० स० ५५

भाषार्थ—हे सीते! बस, तू शरम न कर और यह विचार न कर कि पाप होगा। यह विधि है। हे देवि! यह आर्ष विवाह कहाता है, जिससे मैं तुझे ग्रहण करूँगा॥ ३४, ३५॥

रावण का यह उपदेश उस समय में स्त्री के दूसरे पति के हक़ को सिद्ध करता है।

(३) जब सीता को राम के सामने लाया गया तो राम ने सीता से कहा कि—

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता। दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा॥ १७॥
तदद्य व्याहृतं भद्रे मयैतत्कृतबुद्धिना। लक्ष्मणे वाथ भरते कुरु बुद्धिं यथासुखम्॥ २२॥
शत्रुघ्ने वाथ सुग्रीवे राक्षसे वा विभीषणे। निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः॥ २३॥
—वाल्मी० युद्ध० स० ११५

भाषार्थ—मुझे तेरे चरित्र में सन्देह है, किन्तु तू मेरे सामने खड़ी है। निश्चत ही तू मेरे लिए ऐसे ही प्रतिकूल है जैसे नेत्ररोगी के लिए दीपक॥ १७॥ सो आज मैं हे कल्याणी! सोच-विचारकर ही तुझे कहता हूँ कि तू सुखपूर्वक लक्ष्मण वा भरत में बुद्धि को स्थिर कर ले॥ २२॥ या शत्रुघ्न या सुग्रीव में या राक्षस विभीषण में हे सीते! अपने मन को लगा ले या जहाँ तुझे सुख प्रतीत हो वहाँ रह॥ २३॥

राम का सीता को यह कहना सिद्ध करता है कि उस समय ऐसी अवस्था में स्त्रियों को दूसरे पति का हक़ था।

(४) जब हनुमान्‌जी ने सीता को अशोकवाटिका में देखा तो उसकी क्या अवस्था थी, वाल्मीकिजी कहते हैं कि—

पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले॥ १०॥ —वाल्मी० सुन्दर० स० १९

भाषार्थ—जैसेकि पुनः संस्कार को प्राप्त हुई हो और दुःखित कुल में पैदा हुई हो॥ १०॥ वाल्मीकि का यह उपमा देना पुनर्विवाह के रिवाज को सिद्ध करता है।

(५) जाम्बवान् ने हनुमान्‌जी से कहा कि—

स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः॥ २९॥

मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः॥ ३०॥ —वाल्मी० किष्किं० स० ६६

भाषार्थ—हे हनुमन्! तू भयंकर बलवाला केसरी का क्षेत्रज पुत्र है॥ २९॥ और पवन का औरस पुत्र है और तेज में भी उसके समान है॥ ३०॥

हनुमान् को क्षेत्रज पुत्र लिखना इस बात को सिद्ध करता है कि उस समय नियोग का रिवाज विद्यमान था।

(६) जब शूर्पणखा ने राम से विवाहार्थ प्रार्थना की तो वह विधवा थी—

ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत्॥ १॥

ददौ तां कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम्। स्वसां शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः॥ २॥

—वाल्मी० उत्तर० स० १२

शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत्तदा। श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम्॥ १८॥

—वाल्मी० उत्तर० स० २३

कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्॥ २७॥

राजन् वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतं ह्यहम्॥ ३०॥ —वाल्मी० उत्तर० स० २४

अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी। चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि॥ २५॥

—वाल्मी० अरण्य० स० १७

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम। त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता॥ २॥

—वाल्मी० अरण्य० स० १८

भाषार्थ—तब रावण अपनी बहिन के विवाह का विचार करने लगा॥ १॥ तब राक्षस रावण ने अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखा का विवाह कालकेय विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से कर दिया॥ २॥ इसके पश्चात् रावण ने एक युद्ध में शूर्पणखा के पति अपने बहनोई बलवान् शूरवीर विद्युज्जिह्व को तलवार से क़त्ल कर दिया॥ १८॥ तब शूर्पणखा ने रावण से कहा कि हे राजन्! बलवान् आपने अपने बल से मुझे विधवा बना दिया॥ १७॥ हे राजन्! अब तेरे कारण से मैं विधवा शब्द का भोग करूँगी॥ ३०॥ उसके पश्चात् रावण के कहने से शूर्पणखा अपने भाई खरदूषण के पास रहने लगी। उन्हीं दिनों में राम उधर आये तो शूर्पणखा ने राम से कहा कि मैं प्रभाव से सम्पन्न और स्वतन्त्र गतिवाली हूँ। आप मेरे चिर काल तक पति बनें, सीता से आप क्या करेंगे॥ २४॥ इसपर राम ने उत्तर दिया कि मैं विवाहित हूँ और यह सीता मेरी प्यारी पत्नी है और आप-जैसी नारी के लिए सपत्नीपन का दुःख असह्य होगा॥ २॥

शूर्पणखा का विधवा ब्राह्मणी होते हुए विवाह की प्रार्थना करना तथा राम का यह उत्तर देना कि "मेरे पास स्त्री विद्यमान है, इसलिए मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता", जिसके दूसरे अर्थ यह हैं कि "यदि मेरे पास स्त्री न होती तो मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लेता" इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि उस समय में स्त्री को दूसरे पति का अधिकार था।

(७) बाली के मरने पर सुग्रीव ने तारा को रानी बना लिया, जैसाकि लिखा है—

स्वां च पत्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम्। विहरन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम्॥ ४॥

—वाल्मी० किष्किं० स० २९

तारया सहितः कामी सक्तः कपिवृषस्तदा॥ २२॥ —वाल्मी० किष्किं० स० ३१

तं कामवृत्तं मम संनिकृष्टं कामाभियोगाच्च विमुक्तलज्जम्।
क्षमस्व तावत् परवीरहन्तस्त्वद्भ्रातरं वानरवंशनाथम्॥ ५६॥

—वाल्मी० किष्किं० स० ३३

रामान्मृते बालिसंज्ञे पतौ हि सुग्रीवसङ्गं सा चकार तारा।
अतो नागात्स्वर्गलोकं च तारा क्व वा यायादन्तरिक्षं च पापा॥ ५२॥

—गरुड० उत्तर० अ० २८

प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्दिश्य सोऽब्रवीत्॥ ३०॥
प्रिये त्वं सह नारीणां वानराणां महात्मनाम्॥ ३१॥

—वाल्मी० युद्ध० स० १२३

अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम वानरम्॥ १॥
तारायाः पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम्॥ २॥

—वाल्मी० किष्किं० स० ४२

लहत न प्रभु चित्त चूक किये की, करत सुरत सौ बार हिये की।
जिहिं अघ वध्यो व्याध जिमि बाली, फिर सुकंठ सोई कीन्ह कुचाली।
सोई करतूत विभीषण केरी, सुपनेहु सो न राम हिये हेरी।
ते भरतहिं भेटत सनमाने, राजसभा रघुवीर बखाने।

—तुलसीरामा० बाल० दोहा नं० ३४

भाषार्थ—अपनी प्यारी पत्नी रुमा और तारा के साथ दिन-रात मनोवांच्छित विहार करते हुए सुग्रीव को कृतार्थ और दुःखरहित देख॥ ४॥ वह बलवान् कपि सुग्रीव तारा के साथ काम में मोहित था॥ २२॥ तारा ने लक्ष्मण से कहा कि उस काम में मस्त मेरे पास काम के योग से स्थित, निर्लज्ज, शूरवीर अपने भाई वानरवंश के राजा सुग्रीव को क्षमा करो॥ ५६॥ राम से बाली नाम के पति के मारे जाने के पश्चात् उस तारा ने सुग्रीव से समागम किया, इसलिए तारा स्वर्गलोक को नहीं गई, वह पापिनी स्वर्ग को कैसे जा सकती थी?॥ ५२॥ जब सुग्रीव राम के साथ पुष्पकविमान पर अयोध्या को जा रहे थे तो रास्ते में किष्किन्धापुरी में विमान उतारा, तब उस सुग्रीव ने महल में प्रवेश करके तारा को बुलाकर कहा हे प्यारी! तू भी वानरों की तमाम स्त्रियों के साथ तैयार हो जा॥ ३०॥ सुग्रीव ने तारा के बाप तथा अपने श्वसुर भयंकर बलवान्, मेघ-सदृश गर्जनेवाले सुषेण नामक वानर को कहा॥ १-२॥

इन तमाम प्रमाणों से सिद्ध है कि सुग्रीव ने तारा को पत्नी बना लिया था। इसपर तुलसीदास-जी कहते हैं कि—राम भक्तों की ग़लती की ओर ध्यान नहीं देते, अपितु उनके हृदयों को सौ बार टटोल लेते हैं कि वे मेरी ओर हैं। जिस पाप के कारण राम ने शिकारियों की भाँति बाली को मारा (अर्थात् सुग्रीव की स्त्री रुमा को बाली ने घर में डाल लिया था), फिर सुग्रीव ने वही कुचाल की (अर्थात् बाली के मरने पर तारा को रानी बना लिया) वही करतूत विभीषण ने की (अर्थात् रावण के मरने पर मन्दोदरी को रानी बना लिया) किन्तु राम ने स्वप्न में भी उनको दण्ड देने का ख़्याल नहीं किया। उनकी भरत के साथ मानपूर्वक भेंट करवाई और भरे दरबार में राम ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

इन चौपाइयों का सारांश यह है कि जिस पाप के कारण राम ने बाली को शिकारियों की भाँति मारा वही पाप सुग्रीव और विभीषण ने किया, किन्तु राम ने उनको कोई दण्ड नहीं दिया बल्कि उनका उत्साह बढ़ाया। हमारे विचार में यह राम की स्तुति नहीं अपितु राम पर अन्याय का दोष है, जिसको हम ठीक नहीं मानते, क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी एक न्यायकारी राजा थे। वास्तव में बात यह है कि गुसाईं तुलसीदासजी ने बात को समझा नहीं। वास्तव में जो पाप बाली ने किया था वह सुग्रीव और विभीषण ने नहीं किया। बाली ने सुग्रीव के जीते हुए उसकी स्त्री रुमा को बलात्कार से अपने घर में डाला। चूँकि राम यह समझते थे कि पति के जीते हुए उसकी स्त्री रुमा को बलात्कार से अपने घर में डालना पाप है, अतः राम ने बाली को शिकारियों की भाँति मारा, किन्तु सुग्रीव ने बाली के मरने के पीछे उसकी स्त्री तारा को उसकी इच्छा से अपनी रानी बनाया, और विभीषण ने भी रावण के मरने के पीछे उसकी स्त्री मन्दोदरी को उसकी इच्छा से अपनी रानी बनाया। चूँकि राम यह समझते थे कि पति के मरने के पीछे उसकी स्त्री को उसकी इच्छा से रानी बनाना कोई पाप नहीं है, अतः इतना ही नहीं कि राम ने उनको दण्ड नहीं दिया अपितु उनकी उत्साह-वृद्धि की।

इन दोनों घटनाओं से सिद्ध है कि उस समय स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त था।

(४६२) प्रश्न—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २२२ में लिखा है कि—

''कुमारयोः स्त्रीपुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात् पुनरेवं नियोगश्च। नैव द्विजेषु द्वितीयवारं विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधीयते। तस्य विद्याव्यवहाररहितत्त्वात्।''

'कुमार स्त्री-पुरुष का एक ही बार विवाह विधान किया है, फिर विवाह नहीं होता, नियोग होता है। द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) में द्वितीय बार विवाह का विधान नहीं; पुनर्विवाह का तो शूद्रवर्ण में ही विधान है, क्योंकि उसको विद्याव्यवहार की शून्यता है।'

[आर्यसमाजियों को स्वामी दयानन्दजी का यह लेख साधु जान पड़ता है वा असाधु?]

उत्तर—यहाँ पर भी आपने स्वामीजी के पाठ को चुराकर अधूरा ही पाठ पेश किया है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यहाँ पर प्रकरण ही नियोग का है, पुनर्विवाह का प्रकरण ही नहीं है। चूँकि पुनर्विवाह द्विजों में अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष का ही होना सत्यार्थप्रकाश में वर्णन कर आये हैं, अतः नियोग का प्रकरण होने के कारण यहाँ क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष का ही वर्णन है। और क्षतयोनि स्त्री तथा क्षतवीर्य पुरुष के पुनर्विवाह का निषेध करके नियोग का विधान सत्यार्थप्रकाश में ही कर आये हैं, अतः यहाँ पर उसी का वर्णन किया गया है। यहाँ पर भी स्वामीजी ने इसी बात को स्पष्ट करने के लिए यह पाठ दिया है कि विधुर पुरुष की कुमारी कन्या से तथा विधवा स्त्री की कुमार पुरुष से जोड़ी न मिलाई जाए, अपितु कुमार की कुमारी तथा विधुर की विधवा से ही जोड़ी मिलाना उचित है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का पूरा पाठ इस प्रकार है—

''विधवाया द्वितीयपुरुषेण सह नियोगकरणे आज्ञास्ति, तथा पुरुषस्य च विधवया सह। विधवास्त्री मृतस्त्रीकपुरुषेण सहैव सन्तानार्थं नियोगं कुर्यान्न कुमारेण सह तथा कुमारस्य विधवया सह च, अर्थात् कुमारयोः स्त्रीपुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात्, पुनरेवं नियोगश्च। नैव द्विजेषु द्वितीयवारं विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्ण एव विधियते, तस्य विद्याव्यवहाररहितत्त्वात्।''

'विधवा को विधुर पुरुष के साथ नियोग करने की आज्ञा है तथा विधुर पुरुष को विधवा के साथ। विधवा स्त्री मृतस्त्रीक पुरुष के साथ ही सन्तानार्थ नियोग करे कुमार के साथ नहीं तथा

कुमार का कुमारी से ही विवाह हो विधवा से नहीं, अर्थात् कुमार स्त्री-पुरुष का एक बार ही विवाह हो, और फिर नियोग हो, द्विजों में दूसरी बार विवाह का विधान नहीं है। पुनर्विवाह का तो निश्चय से शूद्रवर्ण में ही विधान है, उसके विद्याव्यवहार से रहित होने के कारण।'

प्रथम तो हमारे उपर्युक्त लेख के अनुसार आपका दिया हुआ पाठ ऊपर के पाठ का अभिप्राय है, जोकि अर्थात् शब्द से ही स्पष्ट है।

दूसरे, यदि आपकी बात को भी ठीक मान लिया जावे तो भी इस पाठ से पुनर्विवाह का निषेध करके नियोग का विधान किया गया है, जिससे हमारे पक्ष की कोई हानि नहीं है, क्योंकि पुनर्विवाह और नियोग दोनों में ही स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त है, अतः आपका आक्षेप सर्वथा निर्मूल है। हम हैरान हैं कि आप स्त्री को दूसरे पति के हक़ का निषेध कैसे कर सकते हैं जबकि सनातनधर्म के ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से उसका विधान विद्यमान है, जैसाकि—

१. **विवाहो जायते राजन् कन्यायास्तु विधानतः।**
पतिर्मृत्युं प्रयात्यस्या नो चेत् सङ्गं करोति च॥ ५९॥
महाव्याध्यविभूतश्च त्यागं कृत्वा प्रयाति वा।
प्रव्राजितो भवेद्राजन् धर्मशास्त्रेषु दृश्यते॥ ६०॥
उद्वाहितायां कन्यायामुद्वाहः क्रियते बुधैः।
न स्याद्रजस्वला यावदन्येष्वपि विधीयते। विवाहं तु विधानेन पिता कुर्यान्न संशयः॥ ६१॥

[वैंकटेश्वर-संस्करण में ये श्लोक कुछ पाठभेद से ६२ से ६५ तक हैं। —सं०]

—पद्म० भूमि० अ० ८५

भाषार्थ—हे राजन्! कन्या का विवाह विधिपूर्वक हो सकता है यदि उसका पति मर गया हो, यदि उसने पति से समागम न किया हो॥ ५९॥ पति दीर्घरोगी हो या छोड़कर चला गया हो अथवा संन्यासी हो गया हो तो धर्मशास्त्रों में देखा जाता है॥ ६०॥ बुद्धिमान् लोग विवाही हुई कन्या का विवाह कर देते हैं, जबतक वह रजस्वला न हो तबतक वह औरों को भी दी जा सकती है। उसका विवाह विधिपूर्वक उसका पिता ही करे, इसमें संशय नहीं है॥ ६१॥

२. **पुरा सत्ययुगे नारी चोत्तमा च पतिव्रता। त्रेतायां मध्यमा जाता निकृष्टा द्वापरे पुनः॥ २८॥**
अधमा हि कलौ नारी परपुंसोपभोगिनी। अतस्तु कलिकाले वै विवाहो विधवास्त्रियाः॥ २९॥

—भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ३ अ० ३१

भाषार्थ—पहले सत्ययुग में स्त्री उत्तम पतिव्रता होती थी, त्रेता में मध्यम हो गई और द्वापर में निकृष्ट हो गई॥ २८॥ कलियुग में स्त्री परपुरुष के साथ भोग करनेवाली अधम हो गई। इसलिए कलियुग में विधवा स्त्री का विवाह होना चाहिए॥ १९॥

३. **उद्वाहिता तु या कन्या न च प्राप्ता तु मैथुनम्। पुनरभ्येति भर्तारं यथा कन्या तथैव सा॥ ४९॥**

—भविष्य० ब्राह्म० अ० १८२

भाषार्थ—जो कन्या विवाहिता हो गई हो, किन्तु वह समागम को प्राप्त नहीं हुई वह फिर से दूसरे पति को प्राप्त हो सकती है, क्योंकि जैसी कन्या होती है, वैसी वह है॥ ४९॥

४. **यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥ ६९॥**
यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्। मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ॥ ७०॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ १७६॥

—मनु० अ० ९

भाषार्थ—जिस कन्या का वाणी से मन्त्र पढ़नेमात्र से विवाह होने पर पति मर जावे उसको इस विधान से उसका देवर प्राप्त हो॥ ६९॥ उस श्वेतवस्त्र धारण की हुई शुद्ध, ब्रह्मचर्यव्रत धारण की हुई को विधिपूर्वक प्राप्त होकर सन्तान होने तक प्रत्येक ऋतु में एक-एक बार उसके साथ परस्पर समागम करे॥ ७०॥

यहाँ पर वाग्दानवाली कन्या का वर्णन नहीं है, क्योंकि प्रथम तो वाग्दान कोई संस्कार ही नहीं है, दूसरे वाग्दानवाली के साथ यह विधि नहीं बताई जा सकती अपितु यह विधि विधवा के साथ ही की जा सकती है। वह यदि अक्षतयोनि हो और जाकर भी वापस आ गई हो तो वह पुनर्विवाह की विधि के अनुसार पुनः होनेवाले पति के साथ पुनः संस्कार को प्राप्त हो सकती है॥ १७६॥

(४६३) प्रश्न—संस्कारविधि पृ० १६५ में लिखा है कि—'एक स्त्री के लिए एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिए भी एक स्त्री से एक ही बार विवाह करने की आज्ञा है।' इन लेखों से स्वामीजी द्विजों में विधवा-विवाह का निषेध लिखते हैं।

उत्तर—आपको पाठ चुराकर अधूरा पाठ पेश करने की असाध्य बीमारी है और आप विधवा-विवाह के निषेध में स्वामीजी का वह पाठ पेश कर रहे हैं कि जो स्वामीजी ने स्त्री को दूसरे पति के अधिकार के पक्ष में लिखा है। संस्कारविधि में उपर्युक्त पाठ स्वामीजी ने विवाहप्रकरण में **'इमां त्वमिन्द्र'** इत्यादि मन्त्र के भाष्य में दिया है कि—'अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा ने की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे-करावे। वैसे ही एक स्त्री के लिए एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिए भी एक स्त्री से एक ही बार विवाह करने की आज्ञा है। जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगतस्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे।'

अब देखिए, यहाँ पर आपके दिये हुए पाठ से पूर्व और पश्चात् तीन बार स्त्री और पुरुष को नियोग करने की आज्ञा विद्यमान है। नियोग और पुनर्विवाह दोनों में ही स्त्री को दूसरे पति का अधिकार प्राप्त है, अतः आपका यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है।

आपके ग्रन्थों में स्त्री को दूसरे पति के अधिकार के प्रतिपादक अनेक प्रमाण मौजूद हैं, जैसेकि—

(१) **अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान्नाम वीर्यवान्। स्नुषायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता॥ ७॥**
ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना। पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना॥ ८॥
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम्। एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः॥ ९॥
—महा० भीष्म० अ० ९०

भाषार्थ—इरावान् नामवाला लड़का श्रीमान् बड़ा बहादुर, अर्जुन का पुत्र था जोकि बुद्धिमान् अर्जुन ने नागराज की पुत्रवधू में पैदा किया था॥ ७॥ गरुड़ के हाथ से पति के मारे जाने पर महात्मा नागराज ऐरावत ने सन्तानहीन होने के कारण उस बिचारी अनाथा को अर्जुन के सुपुर्द कर दिया॥ ८॥ अर्जुन ने उस कामातुरा को धर्म्मपत्नी बनाने के लिए ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से यह अर्जुन का पुत्र परक्षेत्र में उत्पन्न हुआ॥ ९॥

(२) राक्षस उवाच—**क्व ते निवासः कल्याण किं गोत्रा ब्राह्मणी च ते॥ ४॥**
गौतम उवाच—**मध्यदेशप्रसूतोऽहं वासो मे शबरालये।**
शूद्रा पुनर्भूर्भार्या मे सत्यमेतद् ब्रवीमिति॥ ५॥ —महा०शान्ति०अ० १७४
[गीता० सं० में आ० १७१]

भाषार्थ—राक्षस ने पूछा हे श्रीमान्‌जी! आपका निवासस्थान कहाँ है और आपके घर में कौन गोत्र की ब्राह्मणी है॥४॥ गौतम ने उत्तर दिया कि मैं मध्यदेश में पैदा हुआ हूँ और शबरालय में रहता हूँ। मेरी स्त्री शूद्रा है और वह पुनर्भू है, मैं यह सत्य कहता हूँ॥५॥

गौतम ब्राह्मण ने एक शूद्रा विधवा से शादी की थी।

साहित्य की रक्षा

(४६४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि 'पुराणादिक ग्रन्थ विषसंपृक्तान्नवत्' त्याज्य हैं। जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने के योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं। पुराणों में झूठ मिला है, आप यह कहते हैं। पुराणों में क्या-क्या झूठ है, इसका प्रमाण नहीं देते।

—पृ० ५८, पं० ९

उत्तर—स्वामीजी ने यह लेख लिखकर साहित्य पर छुरा नहीं चलाया अपितु साहित्य पर छुरा चलानेवालों के हाथ से साहित्य की रक्षा की है, क्योंकि लोग व्यासादि ऋषियों के नाम से कपोलकल्पित ग्रन्थ संस्कृत में बनाकर सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, वेश्यागमनादि पापकर्मों को उनमें धर्म बताकर ऋषि और महर्षियों को भी उन दोषों से दूषित बताकर जनता को पाप के मार्ग पर चला रहे थे। ऋषि दयानन्दजी को आर्यजाति की इस अवस्था पर दया आई और उन्होंने कहा भाई! **'संस्कृतवाक्यं प्रमाणम्'** धर्म का लक्षण नहीं है अपितु **'वेदप्रतिपादितो धर्मः'** धर्म का लक्षण है, अतः जो वेद तथा वेदानुकूल शास्त्रों के विरुद्ध अनार्ष भागवतादि अष्टादश पुराण हैं, विषयुक्त अन्न के समान त्यागने योग्य हैं। उनका पूर्ण लेख इस प्रकार है—

''**प्रश्न**—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु उसके साथ बहुत-सा असत्य भी है इससे **'विषसम्पृक्तान्नवत्त्याज्याः'**—जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है, वैसे ये ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण, इतिहास को नहीं मानते?

उत्तर—हाँ, मानते हैं, परन्तु सत्य को मानते हैं, मिथ्या को नहीं मानते।

प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है?

उत्तर—ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥

—आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।३।१

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पाँच नाम हैं। श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं।

प्रश्न—जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है, उसको ग्रहण क्यों नहीं करते?

उत्तर—जो-जो उनमें सत्य है, सो-सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे, इसलिए **'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति'** असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिए जैसे विषयुक्त अन्न को।

प्रश्न—तुम्हारा मत क्या है?

उत्तर—वेद, अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस-उसका हम यथावत् करना-छोड़ना मानते हैं। जिसलिए वेद हमको मान्य हैं, इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिए। —सत्यार्थ०समु० ३

रहा इस बात का प्रमाण कि भागवतादि पुराणों में क्या-क्या झूठ है, सो स्वामीजी ने वह तीसरे समुल्लास में वर्णन नहीं किया, क्योंकि यहाँ पर पठन-पाठन का विषय होने से इतना ही बतलाना प्रयोजन था कि ये भागवतादि अष्टादश पुराण विद्यार्थियों को पढ़ाने के योग्य नहीं हैं। यदि आपको पुराणों में झूठ देखने की इच्छा है तो वह स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में अष्टादश पुराणसमीक्षा में संक्षेप से वर्णन की है, वहाँ पर देखने की कृपा करें।

(४६५) प्रश्न—इस विषय में महाभारत लिखता है कि—

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्। आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

पुराण, मनु के कहे धर्म, अंगोंसहित वेद और वैद्यक—ये चारों ग्रन्थ आज्ञासिद्ध हैं, इनको दलीलों से नहीं काटना चाहिए। —पृ० ५८, पं० १५

उत्तर—वाह-वाह! वह बात सच निकली जो हम कह रहे थे कि आप लोगों की अक़्ल पर ताला लगाकर '**संस्कृतवाक्यं प्रमाणं**—जो कुछ संस्कृत में लिखा जावे वही प्रमाण है'। '**ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्**—जो कुछ ब्राह्मण के मुख से निकल जावे सोई प्रमाण है' का पाठ पढ़ाकर उनको निरा बुद्धू बनाना चाहते हैं। तभी तो यह पाठ पढ़ा रहे हैं कि 'धर्म के विषय में दलील से काम नहीं लेना चाहिए', ताकि लोग इस सिद्धान्त को मानकर बिना सोचे-समझे प्रत्येक किताब की बात को मान लिया करें। इस सिद्धान्त ने आर्यजाति को नष्ट कर दिया। आर्यजाति की इस कमज़ोरी से लाभ उठाने के लिए विधर्मियों ने संस्कृत में वेदविरुद्ध ग्रन्थ बनाकर जनता में पाप का प्रचार कर डाला। यह ऋषि दयानन्दजी की ही कृपा है कि उन्होंने हमें वैदिक कसौटी बतलाकर आर्यजाति के साहित्य को सुरक्षित कर दिया, अतः ऋषि दयानन्द की कसौटी के अनुसार आपके प्रमाण में निम्न दोष हैं—

(१) आपने इस प्रमाण को महाभारत के नाम से दिया है, किन्तु यह नहीं बतलाया कि यह श्लोक महाभारत के कौन-से पर्व, कौन-से अध्याय का कौन-सा श्लोक है। आपके इस श्लोक का तो हमारा निम्न श्लोक ही युक्तिपूर्वक खण्डन कर देता है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यां हीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

जिसके पास स्वयं सदसद्विवेकिनी बुद्धि नहीं है उसका शास्त्र क्या उपकार कर सकता है? जैसेकि जिस पुरुष के दोनों नेत्र न हों उसका दर्पण क्या उपकार करेगा? अतः तर्क और दलील के बिना मनुष्य पशु समान ही है।

(२) इस श्लोक में भी 'पुराण' शब्द से भागवतादि अष्टादश कपोलकल्पित ग्रन्थ अभिप्रेत नहीं है, अपितु शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों का नाम ही पुराण है, क्योंकि भागवतादि ग्रन्थ पुराण नहीं हैं, जैसाकि

रविवारे च सण्डे च फाल्गुन चैव फर्वरी। षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहरमीदृशम्॥ ३७॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग खं० १ अ० ५

रविवार को सण्डे, फाल्गुन को फरवरी तथा साठ को सिक्सटी जानना चाहिए, यह ऐसा उदाहरण है॥ ३७॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि यह पुराण तब बनाया गया जबकि अंग्रेजीभाषा भारतवर्ष में आ गई थी, वरना व्यासजी कोई एम०ए० पास थोड़े ही थे, अतः भागवतादि ग्रन्थ नवीन हैं, इनका नाम पुराण नहीं है।

(३) इसमें वास्तव में मीमांसा और न्याय के हेतुवाद का विरोध नहीं अपितु इसमें हेत्वाभास, कुतर्क, अर्थात् वेदशास्त्र के विरुद्ध तर्कवाद का खण्डन है, वरना—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना। यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

—मनु० १२।१०६

ऋषिदृष्टत्वादार्षं वेदं धर्मोपदेशं च तन्मूलस्मृत्यादिकं यस्तदविरुद्धेन मीमांसादिन्यायेन विचारयति स धर्मं जानाति न तु मीमांसानभिज्ञः॥ —कुल्लूकभट्ट

भाषार्थ—वेद और तदनुकूल स्मृति आदि ग्रन्थों को जो मनुष्य मीमांसा तथा न्याय आदि 'वेदशास्त्र से अविरोधी' तर्क से विचारता है वही धर्म को जानता है, दूसरा नहीं॥ १०६॥ अतः मनु के प्रमाण के सामने आपका प्रमाण सर्वथा असत्य है।

(४) वेद स्वयं तर्क, दलील तथा वादविवाद की आज्ञा देते हैं, जैसाकि—

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

—ऋ० १०।१९१।२

हे मनुष्यो! तुम धर्म की प्राप्ति के लिए इकट्ठे होकर संवाद करो, जिससे सचाई और धर्म को जानकर तुम्हारे मन विज्ञानयुक्त हो जावें। जैसे तुम्हारे अध्यापक लोग धर्म का सेवन कर रहे थे, वैसा तुम भी करो॥ २॥

अतः आपका प्रमाण सर्वथा वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध होने से त्याज्य ही है।

(४६६) प्रश्न—मनुजी लिखते हैं कि—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

—मनु० २।१२

वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार, और आत्मप्रेम—इन चार प्रकार से धर्म जाना जाता है॥ १२॥

उत्तर—धर्मशास्त्र, सदाचार, तथा आत्मप्रेम धर्म के जानने में वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक वे वेद के विरुद्ध न हों, अन्यथा प्रमाण नहीं, जैसाकि—

(१) वेद—

स्तुता मया वरदा वेदमाता। —अथर्व० १९।७१।१

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि। —ऋ० १०।१३४।७

वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्। —अथर्व० १९।७२।२

भाषार्थ—मैं सम्पूर्ण धर्म-उपदेश कर, वर देनेवाली वेदरूप माता की स्तुति करता हूँ॥ १॥ हम वेदमन्त्रों के अनुसार आचरण करते हैं॥ ७॥ इसलिए वेदरूप कसौटी को सँभालकर रक्खें।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। —मनु० २।६

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। —मनु० २।१३

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः। —मनु० २।१०

भाषार्थ—वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है॥ ६॥ धर्म की जिज्ञासा करनेवालों के लिए परम प्रमाण वेद है॥ १३॥ श्रुति नाम वेद का है॥ १०॥

(२) स्मृति—

धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। —मनु० २।१०

स्मृतिशीले च तद्विदाम्। —मनु० २।६

या वेदबाह्याः स्मृत्यो याश्च काश्च कुदृष्टः।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥ ९५॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानि चित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥ ९६॥ —मनु० अ० १२

भाषार्थ—धर्मशास्त्र नाम स्मृति का है॥ १०॥ वेद के जाननेवाले की स्मृति और आचार प्रमाण है॥ ६॥ जो वेद के विरुद्ध स्मृतियाँ हैं और जो कोई वेद की दृष्टि के विरुद्ध हैं, वे सब निष्फल हैं, क्योंकि वे परलोक में भी अज्ञान प्राप्त करानेवाली हैं॥ ९५॥ वेद के विरुद्ध स्मृतियाँ पैदा होती हैं और नष्ट हो जाती हैं, और भी जो कोई वेद के विरुद्ध हैं, वे नवीन कालीन होने के कारण निष्फल और झूठ हैं॥ ९६॥

(३) आचार—

स्मृतिशीले च तद्विदाम्। —मनु० २।६

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। —मनु० २।१०८

भाषार्थ—वेद के जाननेवालों का आचार प्रमाण है॥ ६॥ आचार परम धर्म है यदि वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार है॥ १०८॥

(४) आत्मप्रेम अथवा युक्ति—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केनानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

—मनु० १२।१०६

भवार्थ—आर्षधर्मोपदेश जिसे मनुष्य वेद-शास्त्र के अनुकूल तर्क से निश्चय करता है वही धर्म को जानता है दूसरा नहीं॥ १०६॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि 'धर्मशास्त्र, सदाचार और आत्मप्रेम तभी धर्म के जानने में प्रमाण हो सकेंगे यदि वे वेद के अनुकूल हों, वेद के उपदेश के विरुद्ध होने पर धर्मशास्त्र, आचार और आत्मप्रेम भी धर्म में प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि वेद ही धर्म का मूल कारण है।

(४६७) प्रश्न—सदाचार के ऊपर मनुजी लिखते हैं कि—

प्रश्न— तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ —मनु० २।१८

जिस देश में आचार समस्त जातियों में परम्परा से चला आया हो, वह सदाचार ही धर्म हो जाता है।

उत्तर—इस श्लोक को मनु के निम्न श्लोक से मिलाकर पढ़ें—

श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। —१।१०८

यदि वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो तभी वह धर्म में प्रमाण माना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

(४६८) प्रश्न—सदाचार का ज्ञान पुराणों से होता है। मनु ने सदाचार को लेकर पुराणों की सत्यता सिद्ध की है। —पृ० ५९, पं० ३

उत्तर—सदाचार शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है—सत्+आचार=सदाचार, सत् के अर्थ हैं सत्य और सत्य है ईश्वरीय ज्ञान वेद, अतः जो वेद के अनुकूल आचार हो वही सदाचार कहा जा सकता है। भागवतादि ग्रन्थों से वेदानुकूल आचार का ज्ञान नहीं होता, जैसाकि—

कृष्ण का सुरापान

तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तःपुरिकैर्जनैः। अनुभूय जलक्रीडां पानमासेवते रहः॥ १७॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ७३

मांस खाने की आज्ञा

प्राणात्यये प्रोक्षितं च श्राद्धे च द्विजकाम्यया।
पितॄन्देवाँश्चार्पयित्वा भुंजन् मांसं न दोषभाक्॥ २९॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० १८६

वेश्यागमन की आज्ञा

इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता।
शृङ्गिना च महाप्राज्ञ वेश्यासङ्गः कृतः पुरा। न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीम्॥ ४६॥
—भविष्य० प्रति० खं० ३ अ० २८

कृष्ण का कुब्जा-गमन

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च॥ ६२॥ —ब्रह्मवैवर्त० कृ० अ० १५५

पर-स्त्री-गमन

रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः। गात्रलोमप्रमाणाब्दं कुंभीपाके वसेद् ध्रुवम्॥ ७७॥
—ब्रह्मवैवर्त० कृष्ण० अ० ३०

इत्यादि ऋषि-मुनियों को कलङ्कित करनेवाले अनेक वेदविरुद्ध, दुराचारप्रवर्तक इतिहास भागवतादि ग्रन्थों में विद्यमान हैं, अतः भागवतादि ग्रन्थ न पुराण कहाने के योग्य हैं, और न ही मनु ने इनकी सत्यता को सिद्ध किया है।

(४६९) प्रश्न—पुराण सत्य और माननीय हैं। इसपर शतपथ लिखता है कि—

'स यथार्द्रैधाग्नेरिति' यहाँ पर पुराणों का ईश्वर से प्रकट होना लिखा है।
—पृ० ५९, पं० ४

उत्तर—प्रथम तो आपका यह प्रमाण वेद का नहीं है, अपितु शतपथब्राह्मण का है, शतपथ वेद नहीं है। दूसरे यहाँ पुराण भागवतादि ग्रन्थों का नाम नहीं है अपितु यहाँ पर पुराण शब्द विद्या शब्द का विशेषण है और अभिप्राय यह है कि इतिहास, उपनिषद्, श्लोक, सूत्रादि सब प्राचीन विद्याएँ वेदों के साथ ही ईश्वर से प्रकट हुई हैं। इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार है—

स यथार्दैधाग्नेरभ्याहितस्य। पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि—व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि॥
—शतपथ० १४।५।४।१०

भाषार्थ—वह जैसी गीले ईंधन के संयोग से अग्नि से नाना प्रकार के धुएँ प्रकट होते हैं, इस प्रकार से उस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद द्वारा ये इतिहास, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि सब-की-सब पुरानी विद्याएँ वेदो द्वारा संसार में प्रकट की हैं। —शतपथ

इसी बात को आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० २४५, पं० १० में इस प्रकार से स्वीकार किया है कि ''ब्रह्माजी ने वह वेदविद्या जिसके आश्रय सब विद्या हैं, अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा ऋषि को पढ़ाई।''

वेद स्वयं भी इस बारे में साक्षी देते हैं कि—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
—अथर्व० १०।८।१

अर्थ—जो भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान जगत् में सम्पूर्ण विद्याओं का स्वामी है और जो केवल सुखस्वरूप है, उस महान् ब्रह्म के लिए नमस्कार है॥ १॥

इसकी पुष्टि मनुजी भी करते हैं कि—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥

—मनु० १२।९७

भाषार्थ—चारों वर्ण, तीनों लोक और चारों पृथक् आश्रम तथा भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सब विद्याएँ वेद से ही प्रकट हुई हैं, होती हैं और होंगी॥ ९७॥

इससे सिद्ध है कि शतपथ में भी यहाँ पर सम्पूर्ण विद्याओं का ही वर्णन है। आप इस प्रमाण द्वारा रामायण, महाभारत, भागवतादि अष्टादश पुराण, १०८ उपनिषद्, श्लोकों में रचे सम्पूर्ण तन्त्रादि ग्रन्थ, सूत्रों में रचे सम्पूर्ण छह दर्शन, श्रौत-स्मार्त-गृह्यसूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान से सम्पूर्ण भाष्य तथा भाषाग्रन्थों को भी वेदों की भाँति ईश्वरकृत मानकर उनको स्वतः-प्रमाण का दर्जा देकर आर्यजाति के साहित्य को नष्ट-भ्रष्ट करके आर्यजाति की गर्दन पर छुरा चलाना चाहते हैं, किन्तु अब ऋषि दयानन्द का ज़माना है; अब आप ऐसी धोखेबाज़ी में सफल नहीं हो सकते।

(४७०) प्रश्न—छान्दो० प्र० ७ खं० १ **'स होवाच ऋग्वेदम् इति'** में इतिहास-पुराण को पाँचवाँ वेद लिखा है। —पृ० ५९, पं० १६

उत्तर—यद्यपि आपका यह प्रमाण भी वेद का नहीं है, क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् वेद नहीं है, तथापि छान्दोग्य का अर्थ भी आप खूब समझते हैं। जहाँ पुराण शब्द देखा, झट बह गये कि यहाँ तो भागवतादि अष्टादश पुराणों का ही वर्णन है। श्रीमान्‌जी! यहाँ पर भी पुराण शब्द इतिहास शब्द का विशेषण है जिसके अर्थ हैं पुराना इतिहास, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास मैं जानता हूँ, यहाँ पर इतिहास को पाँचवाँ वेद नहीं बतलाया अपितु चार वेद तथा पाँचवें पुराने इतिहास को मैं जानता हूँ, ऐसा वर्णन है, जैसेकि—

स होवाच। ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥ २॥ —छान्दोग्योपनिषद् अ० ७ खं० १

भाषार्थ—वह प्रसिद्ध नारद बोले कि हे भगवन्! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चतुर्थ अथर्ववेद को मैं जानता हूँ; पाँचवें इतिहास पुराण तथा उपनिषद् शास्त्र, कला-कौशलादि की विद्या, गणितविद्या, अनुमान द्वारा वृष्टि आदि का ज्ञान, खानों की विद्या, तर्कशास्त्र, निरुक्त, अध्यात्मविद्या, तत्त्वों की विद्या, शस्त्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पों के विषों का ज्ञान तथा उनके वश करने के उपायों की विद्या, नृत्य, गीत, वाद्यादि विद्या, प्राकृत जनों की विद्या, इन सब विद्याओं को हे भगवन्! मैं जानता हूँ॥ २॥

आप यहाँ पर इतिहास पुराण से अठारह पुराणों को भी पाँचवाँ वेद सिद्ध करके सारी दुनिया के दुराचार, खुराफ़ात को भी ईश्वर का ज्ञान सिद्ध करके आर्यजाति के साहित्य को गन्दगी का पुलन्दा बनाना चाहते हैं, किन्तु अब प्रकाश के युग में यह असम्भव ही है।

(४७१) प्रश्न—**'अरेऽस्य महतो भूतस्येति'**—बृहद्० अ० ४ कण्डि० ११ ब्राह्म० ५ में लिखा है कि इतिहास, पुराणविद्या ईश्वर का निःश्वास है। —पृ० ५९, पं० २५

उत्तर—आपने यहाँ पर भी वेद का प्रमाण नहीं दिया, क्योंकि बृहदारण्यक उपनिषद् वेद नहीं है तथापि इस प्रमाण में भी पुराण नाम भागवत आदि अठारह ग्रन्थों का नहीं है, अपितु यहाँ भी पुराण शब्द विद्या शब्द का विशेषण है और उसके अर्थ हैं पुरानी विद्या, जैसाकि—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि॥ ११॥

—बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ ब्राह्म० ५ कं० ११

भाषार्थ—जिस प्रकार गीली लकड़ियों की अग्नि से नाना प्रकार के धूम और चिंगारे निकलते हैं, इसी प्रकार हे मैत्रेयि! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के द्वारा इतिहास, उपनिषत्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान, और व्याख्यान, यज्ञ, होम, खाद्य पदार्थ, यह लोक, परलोक और प्राणिसम्बन्धी सब पुरानी विद्याएँ उसी परमात्मा से प्रकट हुई हैं॥ ११॥

आप यहाँ पर भी पुराण, श्लोक, सूत्रादि से भागवतादि अठारह पुराण, तन्त्रादि ग्रन्थों को ईश्वरोक्त सिद्ध करके उनको वेदों के समान स्वतःप्रमाण मानकर आर्यजाति के साहित्य तथा सिद्धान्तों पर कुल्हाड़ा चलाना चाहते हैं, किन्तु अब ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित वैदिक आर्यसमाज की विद्यमानता में आप ऐसा करने में समर्थ नहीं हो सकते।

(४७२) प्रश्न—'स बृहती दिशमिति' [अथर्व० १५।६।१०] इस मन्त्र में लिखा है कि वेद के साथ ही इतिहास, पुराण दिशाओं में फैले। —पृ० ६०, पं० ८

उत्तर—इस मन्त्र में 'पुराण' इतिहास शब्द का विशेषण है, जिसके अर्थ हैं ''पुराना इतिहास'' अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का इतिहास, जैसेकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋ० १०।१९०।३

परमेश्वर ने जैसे पूर्वकल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि को बनाया था वैसे ही अब बनाया है॥ ३॥ इत्यादि का नाम ही इतिहास पुराण, अर्थात् पुराना इतिहास है। इस मन्त्र के वास्तविक अर्थ इस प्रकार हैं—

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत्॥ १०॥ तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानु-व्यचलन्॥ ११॥ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १२॥ —अथर्व० १५।६

भाषार्थ—वह वेद बृहती दिशा को चला, अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से प्रकट हुआ॥ १०॥ उसके पीछे-पीछे पुराण, इतिहास, गाथा और नाराशंसी ये भी चलीं, अर्थात् वेद के प्रकाश से ये सब विद्याएँ भी प्रकाशित हुईं॥ ११॥ जो मनुष्य इस प्रकार से जानता है, वह निश्चित ही इतिहास, पुराण अर्थात् सृष्टिविषयक पुरातन ऐतिह्य, गाथा और नाराशंसी का भी प्रिय आश्रय हो जाता है॥ १२॥

आप इस मन्त्र से अठारह पुराण तथा तत्सम्बन्धी कथाओं को भी ईश्वरकृत सिद्ध करके आर्यसभ्यता का गला घोंटना चाहते हैं, किन्तु आपको ऐसा करने की इस समय आज्ञा न दी जावेगी, क्योंकि अब ऋषि दयानन्दजी का वैदिक युग है। वेदों, शास्त्रों में जहाँ कहीं पुराण शब्द आता है वहाँ पर अष्टादश पुराणों के अर्थों में नहीं आता, क्योंकि आपके मतानुसार भी भागवतादि अष्टादश पुराणों का कर्त्ता व्यास है। इससे सिद्ध हुआ कि ये ग्रन्थ नवीन हैं, प्राचीन या पुराण नहीं हैं।

(१) प्रत्नम्। प्रदिवः। प्रवयाः। सनेमि। पूर्व्यम्। अह्नायेति षट् पुराणनामानि॥ २७॥ पुराणनामान्युत्तराणि षट्॥ २३॥ पुराणं कस्मात् पुरा नवं भवति॥ २४॥

—निघण्टु ३।२७, निरुक्त अ० ३ खं० २०

भाषार्थ—ये ऊपर के छह नाम पुराण, अर्थात् प्राचीन के हैं॥ २७॥ पुराण के नाम ऊपरवाले छह हैं॥ २३॥ पुराण किसलिए कहा जाता है कि वे पहले नया था अब नहीं॥ २४॥

इस प्रमाण से सिद्ध है कि पुराण शब्द प्राचीन अर्थ का वाची है।

(२) द्वापरान्ते च भगवान् व्यासः सत्यवतीसुतः। तान्येव जनयामास लोकमंगलहेतवे॥ २२२॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० २५

भाषार्थ—द्वापर युग के अन्त में सत्यवती के पुत्र व्यास ने उन अठारह पुराणों को संसार के कल्याणार्थ बनाया॥ २२२॥

जब पुराण इस द्वापर के अन्त में व्यास ने बनाये तो फिर वेदों में उनका वर्णन सिद्ध करना पागलपन नहीं तो और क्या है? भागवतादि पुराणों को कहीं पर अठारह लिखा है तो कहीं पर २६ लिखा है जैसेकि—

(३) अष्टादश पुराणानि निर्मितानि शिवात्मना॥ २२१॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० २५

षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽत्येकंश्रृणोति यः। पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः॥ ४१॥

—शिव० उमा० अ० १३

(४) अठारह में भी कहीं श्रीमद्भागवत को माना है कहीं देवीभागवत को, जैसाकि—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्॥ १२०॥
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लिंगं वाराहमेव च। वामनाख्यं ततः कौर्मं मात्स्यं गारुडमेव च॥ १२१॥
स्कान्दं तथैव ब्रह्माण्डाख्यं पुराणं च कीर्तितम्॥ १२२॥
भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते। तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवीपुराणकम्॥ १२९॥

—शिव० उमा० अ० ४४

यहाँ पर देवीभागवत को अठारह पुराणों में गिना गया है, श्रीमद्भागवत को नहीं। भविष्यपुराण ने श्रीमद्भागवत को अठारह पुराणों में गिना है, देवीभागवत को नहीं!

(५) ये अष्टादश पुराण वास्तविक नहीं, जैसाकि—

सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ। द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः॥ १०३॥
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप॥ १०४॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० १

भाषार्थ—सारे पुराण केवल १२००० श्लोक के थे, पीछे से इनमें वृद्धि हो गई, इत्यादि।

अनेक परस्पर विरुद्ध बातें भगवतादि ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं, अतः ये ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं।

(४७३) प्रश्न—'ऋचः सामानि छन्दाँसि' [अथर्व० ११।७।२४] में लिखा है कि परमात्मा से पुराण उत्पन्न हुए। —पृ० ६०, पं० १४

उत्तर—यहाँ भी पुराण नाम भागवतादि ग्रन्थों का नहीं है अपितु सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय आदि के वर्णन करनेवाले मन्त्रों को पुराना इतिहास वर्णन करनेवाले होने के कारण पुराण कहा है, जैसेकि—

ऋचः सामानि छन्दाँसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २४॥

—अथर्व० ११।७

भाषार्थ—ऋग्वेद के मन्त्र, सामवेद और उसके सहस्रों सामगान के भेद, गायत्री आदि छन्द अथवा अथर्व के मन्त्र, यजुर्वेद के कर्मप्रवर्तक मन्त्रों के साथ-साथ सृष्टि-उत्पत्ति, प्रलय आदि

के वर्णन करनेहारे मन्त्र और आकाशस्थ सूर्य आदि समस्त दिव्यलोक उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं॥ २४॥

कहिए महाराज! इसमें भागवतादि ग्रन्थों का वर्णन कहाँ है? आप जिन पुराणों को प्राचीन सिद्ध करने की धुन में हैं वे तो आपका साथ नहीं देते। वे कहते हैं ये ग्रन्थ शूद्रों के लिए हैं, जैसाकि—

विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः। अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च॥ ५४-५५॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० १

भाषार्थ—मुनि लोगों ने अठारह पुराण तथा रामचन्द्रजी का जीवन विशेष करके शूद्र लोगों को पवित्र करने के लिए बनाये हैं॥ ५५॥

कहीं पर यही लिख मारा कि पुराण वेदों से पूर्व हुए हैं, जैसाकि—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥ ३१॥
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥ ३२॥

—शिव० वायु० खं० १ अ० १

कहिए महाराज! आपका कहना सत्य है वा आपके शिवपुराण का कहना सत्य है?

(४७४) प्रश्न—शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ कभी पुराण हो ही नहीं सकते, जिसको हम आगे लिखेंगे। दयानन्द के मत में वेद पहले बने और ब्राह्मणग्रन्थ बाद में, फिर बाद में बने हुए ब्राह्मणों का वेद में कैसे ज़िक्र आया? गोपथब्राह्मण, ब्राह्मणग्रन्थों को पृथक् लिखता है और पुराणों को ब्राह्मणों से भिन्न मानता है। इसको देखिए—**'एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिता'** इत्यादि (गोपथ० पू० भा० प्र० २) —पृ० ६०, पं० २५

उत्तर—शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों का नाम ही पुराण, गाथा, नाराशंसी आदि है—यह हम पूर्व सप्रमाण सिद्ध कर आये हैं। आगे भी आप जो कुछ लिखेंगे उसकी पड़ताल की जावेगी। वेदों में ब्राह्मणादि ग्रन्थों का ज़िक्र नहीं है, अपितु पुराण, इतिहास, ब्राह्मण, कल्प, सूत्र, श्लोक आदि विद्याओं का वर्णन है, क्योंकि वेद सम्पूर्ण विद्याओं का आदिमूल है। आपने यह प्रमाण वेद का नहीं दिया अपितु गोपथब्राह्मण का प्रमाण दिया है। ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु वेदों का ऋषिकृत भाष्य हैं, तथापि इस प्रमाण में भी ब्राह्मण से शतपथादि का तथा पुराण से भागवतादि का वर्णन नहीं है, अपितु यहाँ भी यही वर्णन है कि परमात्मा ने वेदों द्वारा अनेक प्रकार की विद्याओं को प्रकट किया है। जैसे यहाँ पर इतिहास तथा पुराण को एक होते हुए भी विशेष विज्ञानार्थ दो स्थानों में वर्णन कर दिया, वैसे ही ब्राह्मण, कल्प, पुराण इनको एक होते हुए भी विशेष विज्ञानार्थ अनेक बार वर्णन कर दिया। जैसे भिन्न-भिन्न वर्णन करने पर भी इतिहास तथा पुराण एक ही हैं, वैसे ही भिन्न-भिन्न वर्णन करने पर भी कल्प, ब्राह्मण, पुराण एक ही हैं। यहाँ पर ग्रन्थों का वर्णन नहीं, अपितु विद्याओं का वर्णन है, इस पाठ का अर्थ इस प्रकार है—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवाचक्षते॥

—गोपथ पू० भा० प्र० २।१०

भाषार्थ—इस प्रकार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, वाकोवाक्य, इन विद्याओं के सहित चार वेदों को ईश्वर ने प्रकट किया। उनके यज्ञ में प्रयुक्त होने के कारण पृथक्-पृथक् नाम रक्खे गये वरना ये चार वेद ही पूजनीय कहे जाते हैं॥ २॥